

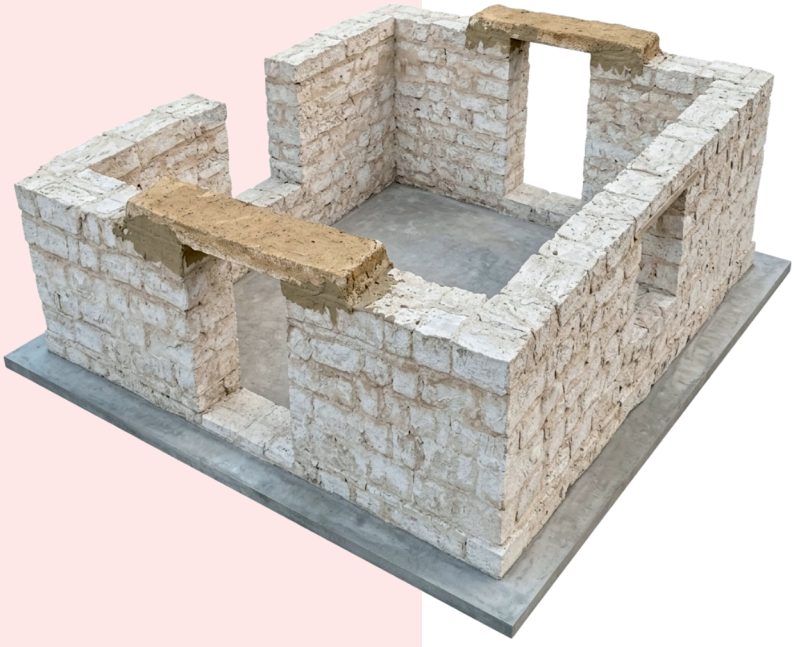
जिज्ञासा+

विज्ञान जर्नल

वर्ष 2026 अंक 40







ISSN 2349-560X

संरक्षक
प्रो. रंगन बनर्जी
निदेशक

संपादक
डॉ. नीरज चौरसिया

संपादन मण्डल
प्रो. सौरभ तिवारी
डॉ. हर्ष सत्या
डॉ. शिवानी चतुर्वेदी

डिज़ाइन
प्रो. सौरभ तिवारी
(DeSH Lab, डिज़ाइन विभाग, भा. प्रौ. सं. दिल्ली)

जिज्ञासा

विज्ञान जर्नल
वर्ष 2026 अंक 40
ISSN 2349-560X

हिंदी कक्ष
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
hindi.iitd.ac.in

जिज्ञासा+

विज्ञान जर्नल

वर्ष 2026 अंक 40

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
INDIAN INSTITUTE OF TECHNOLOGY DELHI
हौज़ खास, नई दिल्ली – 110016
Hauz Khas, New Delhi – 110 016
Tel. : +91-11- 26582020, 26591701 (O)
Tel. : +91-11- 26582022, 26591801 (R)
Fax : +91-11- 26582659 (O)
E-mail : director@iitd.ac.in
rangan@iitd.ac.in

रंगन बॅनर्जी
निदेशक एवं
प्रोफ़ेसर, ऊर्जा विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग
Rangan Banerjee
Director and
Professor, Department of Energy Science & Engineering



शुभकामना संदेश

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और संतोष का विषय है कि संस्थान का हिंदी कक्ष 'जिज्ञासा' के माध्यम से विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अनुसंधान और नवाचार से संबंधित ज्ञान को हिंदी में निरंतर पाठकों तक पहुँचाने का कार्य कर रहा है। 'जिज्ञासा' का 40वाँ अंक इस सतत ज्ञान-यात्रा की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। देश में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते महत्त्व के साथ वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार में हिंदी की भूमिका भी निरंतर सशक्त हो रही है। 'जिज्ञासा' इस दिशा में एक प्रभावी एवं प्रेरणादायी प्रयास है।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली अकादमिक उत्कृष्टता और अनुसंधान के साथ-साथ ज्ञान के समाजोपयोगी प्रसार के लिए प्रतिबद्ध है। 'जिज्ञासा' के माध्यम से संस्थान के संकाय सदस्यों, विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा देश के विभिन्न संस्थानों से जुड़े वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों को अपने शोध एवं विचार हिंदी में प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हो रहा है। यह पहल हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में उल्लेखनीय योगदान दे रही है।

'जिज्ञासा' के इस अंक के सफल प्रकाशन पर सभी लेखकों, संपादकीय मंडल तथा हिंदी कक्ष के समस्त सदस्यों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ। मेरी कामना है कि 'जिज्ञासा' अपनी ज्ञानपरक यात्रा को निरंतर आगे बढ़ाते हुए विज्ञान, प्रौद्योगिकी, समाज और हिंदी के बीच संवाद का सशक्त सेतु बने तथा आने वाले वर्षों में और व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचे।

'जिज्ञासा' की निरंतर प्रगति, सफलता और उज्ज्वल भविष्य के लिए हार्दिक शुभकामनाओं सहित।

रंगन बॅनर्जी

प्रो. रंगन बनर्जी



संपादकीय

ज्ञान के सृजन, अभिव्यक्ति और व्यापक प्रसार में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के निरंतर विकास के इस दौर में यह आवश्यक है कि अनुसंधान, नवाचार और वैज्ञानिक उपलब्धियों से संबंधित ज्ञान सहज, सरल और बोधगम्य हिंदी में भी उपलब्ध हो। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए संस्थान हिंदी कक्ष 'जिज्ञासा' के माध्यम से विज्ञान, प्रौद्योगिकी और समकालीन सामाजिक सरोकारों से जुड़े विषयों को हिंदी में प्रस्तुत करने का प्रयास निरंतर कर रहा है। 'जिज्ञासा' का 40वाँ अंक इसी सतत प्रयास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

इस अंक में कुल 16 शोध-पत्र दो खंडों में संकलित किए गए हैं-'विज्ञान एवं तकनीक' तथा 'टेक्नॉलजी, समाज व सस्टेनेबिलिटी'। प्रथम खंड में गोबर आधारित हरित ईंटों एवं तापीय दक्ष भवनों, ग्रामीण क्षेत्रों में अपशिष्ट प्रबंधन, प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा में योग, काली अदरक की औषधीय संभावनाओं तथा भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान जैसे विविध विषयों को शामिल किया गया है। ये अध्ययन पर्यावरण, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता और ऊर्जा से जुड़े समकालीन प्रश्नों तथा उनके संभावित समाधानों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

द्वितीय खंड में प्रौद्योगिकी के सामाजिक एवं मानवीय आयामों पर केंद्रित विषयों को स्थान दिया गया है। मध्यस्थ दर्शन, चेतना और संधारणीयता, एग्री स्टैक एवं डिजिटल कृषि, दिव्यांगजन समावेशन, मुद्राक्षर-अभिकल्प, दिल्ली की मरम्मत संस्कृति एवं लोक-ज्ञान तथा भारत की विविध शिल्प परंपराओं पर आधारित शोध-पत्र इस खंड को विशिष्ट बनाते हैं। सवाई माधोपुर की ब्लैक पॉटरी परंपरा, कोयनगुड़ा के ढोकरा कारीगरों और मैसूरु की जीवित होयसला शिल्प परंपरा से जुड़े अध्ययन स्थानीय ज्ञान, कौशल, संस्कृति और आजीविका के महत्त्व को रेखांकित करते हैं।

इस अंक की विषय-विविधता यह दर्शाती है कि आधुनिक विकास को केवल तकनीकी उपलब्धियों के संदर्भ में देखना पर्याप्त नहीं है। पर्यावरणीय संतुलन, सामाजिक समावेशन, सांस्कृतिक विरासत, स्थानीय ज्ञान और मानवीय मूल्यों को साथ लेकर चलना भी उतना ही आवश्यक है। इस दृष्टि से 'जिज्ञासा' का यह अंक विज्ञान, तकनीक और समाज के बीच एक सार्थक संवाद स्थापित करने का प्रयास करता है।

इस अंक में संस्थान के संकाय सदस्यों एवं शोधार्थियों के साथ-साथ देश के विभिन्न संस्थानों से जुड़े शोधकर्ताओं और विशेषज्ञों की सहभागिता रही है। उनके शोध एवं चिंतन ने अंक की विषय-विविधता को व्यापकता प्रदान की है। सभी लेखकों ने अपने शोध-पत्र समयबद्ध रूप से उपलब्ध कराकर प्रकाशन प्रक्रिया को सुचारु बनाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। उनके इस योगदान के लिए मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

'जिज्ञासा' का उद्देश्य केवल वैज्ञानिक एवं तकनीक विषयों को हिंदी में प्रस्तुत करना ही नहीं, बल्कि हिंदी में शोधपरक अभिव्यक्ति और ज्ञान-सृजन की संस्कृति को प्रोत्साहित करना भी है। इसके माध्यम से विद्यार्थियों, शोधार्थियों, शिक्षकों और विषय-विशेषज्ञों को अपने अध्ययन, अनुसंधान और विचार हिंदी में साझा करने का अवसर मिलता है। यह पहल हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीक साहित्य को समृद्ध करने तथा ज्ञान को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाने में सहायक है।

इस अंक के प्रकाशन में प्रो. संतोष सत्या, पूर्व अध्यक्ष, हिंदी कक्ष एवं प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केंद्र (सी.आर.डी.टी.), आई.आई.टी. दिल्ली का मार्गदर्शन एवं सहयोग विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण रहा। उनके बहुमूल्य मार्गदर्शन और निरंतर सहयोग के लिए मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। संस्थान के हिंदी कक्ष की हिंदी अधिकारी डॉ. स्वाती ठाकुर का इस अंक के प्रकाशन में विशेष एवं उल्लेखनीय योगदान रहा। प्रकाशन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों, विशेषकर प्रूफरीडिंग, में उनके सक्रिय सहयोग, सतत सहभागिता और समर्पित प्रयासों ने इस अंक को सुव्यवस्थित, त्रुटिरहित एवं समयबद्ध रूप से प्रकाशित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके योगदान के लिए मैं उनका हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। हिंदी कक्ष के स्टाफ सदस्यों - श्रीमती इन्द्रमणि, श्रीमती दीपिका शर्मा, श्री पी.डी. कुकरेती, श्री सुमित कुमार एवं श्रीमती सुनीता को भी विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने 'जिज्ञासा' के इस अंक के प्रकाशन के विभिन्न चरणों में अपने दायित्वों का कुशलतापूर्वक निर्वहन करते हुए महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया।

अंक की रूपरेखा एवं डिज़ाइन को आकर्षक और आधुनिक स्वरूप प्रदान करने में संस्थान के डिज़ाइन विभाग के प्रो. सौरभ तिवारी एवं उनकी टीम का योगदान भी उल्लेखनीय रहा। उनके सहयोग से 'जिज्ञासा' को यूनिकोड फॉन्ट में सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जा सका, जिससे इसकी पठनीयता और तकनीकी उपयोगिता में वृद्धि हुई।

संपादकीय मंडल के सभी सदस्यों तथा इस अंक की तैयारी में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से योगदान देने वाले सभी सहयोगियों के प्रति भी मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

मुझे विश्वास है कि 'जिज्ञासा' का 40वाँ अंक पाठकों को विज्ञान, प्रौद्योगिकी, समाज, पर्यावरण और संस्कृति से जुड़े विविध विषयों पर नई जानकारी एवं नए दृष्टिकोण प्रदान करेगा तथा हिंदी में वैज्ञानिक एवं शोधपरक लेखन को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करेगा। आगामी अंकों के लिए शोधार्थियों, शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों और विषय-विशेषज्ञों की सक्रिय सहभागिता की अपेक्षा है। पाठकों के सुझाव और प्रतिक्रियाएँ पत्रिका को निरंतर बेहतर बनाने में हमारे लिए महत्त्वपूर्ण प्रेरणास्रोत रहेंगी।

मेरी कामना है कि 'जिज्ञासा' आने वाले समय में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, समाज, पर्यावरण और संस्कृति के बीच ज्ञान का सशक्त सेतु बनकर हिंदी में वैज्ञानिक लेखन और ज्ञान-सृजन की परंपरा को और अधिक समृद्ध करे तथा अधिकाधिक पाठकों तक पहुँचे।

डॉ. नीरज चौरसिया
अध्यक्ष, हिंदी कक्ष

ISSN 2349-560X

जिज्ञासा+
विज्ञान जर्नल
वर्ष 2026 अंक 40

भाग 1: विज्ञान एवं तकनीक

गोबर आधारित हरित ईंटें: प्रयोगशाला से तापीय दक्ष भवन तक एक वैज्ञानिक अध्ययन नम्रता अग्रहरी, प्रो. वी. के. विजय एवं प्रो. सुरेश भल्ला	3
हरियाणा के ग्रामीण इलाकों में अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब (Waste Stabilisation Pond) का तकनीकी मूल्यांकन शुभांजली कोरी, प्रो. पूजा घोष एवं प्रो. विवेक कुमार	9
भारतीय प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के लिए समग्र योग शिक्षा एकीकरण मॉडल (SYPIM): एक वैचारिक रूपरेखा रोहित पाण्डेय एवं प्रो. ज्योति कुमार	17
काली अदरक की जड़ की शक्ति (कैम्फेरिया पार्विफ्लोरा): इसके फाइटोकेमिस्ट्री, बायोएक्टिविटी का एक समग्र अवलोकन माधुरी गुप्ता एवं डॉ. शिवानी चतुर्वेदी	26
गंगा नदी प्रदूषण: स्रोत, स्वास्थ्य प्रभाव, एवं पारिस्थितिक क्षरण मारुत जैन एवं प्रो. कमल किशोर पंत	35
भारत में नवीकरणीय ऊर्जा (Renewable Energy) अनुसंधान: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन डॉ. नीरज चौरसिया	45

भाग 2: टेक्नॉलजी, समाज एवं सस्टेनेबिलिटी

मानवीय समाज एवं सतत मानव-विकास के लिए मध्यस्थ दर्शन की अस्तित्वगत रूपरेखा डॉ. गोपाल बाबू, डॉ. हर्ष सत्या एवं प्रो. संतोष सत्या	55
चेतना की पारिस्थितिकी: भारतीय समाज और संधारणीयता (सस्टेनेबिलिटी) नंदिता शाह	63
एग्री स्टैक: भारत की डिजिटल कृषि क्रांति (सहयोग और समावेश पर आधारित डिज़ाइन) डॉ. देवेश चतुर्वेदी	70
भारत में दिव्यांगजन समावेशन से मानवीय समाज की ओर एक क़दम (आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एन.डी.एफ.डी.सी की भूमिका) डॉ. विनीत राणा	75
देशज अक्षरों से वैश्विक मुद्राक्षर - अभिकल्प तक आशीष कुमार	80
क्या जुगाड़ भी डिज़ाइन है? दिल्ली की मरम्मत संस्कृति और लोक-ज्ञान गरिमा भारद्वाज एवं प्रो. सौरभ तिवारी	90
सवाई माधोपुर की ब्लैक पॉटरी (Black Pottery) परम्परा में कुम्हार का चाक: कारीगरों की परम्पराओं एवं सांस्कृतिक अर्थों का नृवंशविज्ञानात्मक (ethnographic) अध्ययन शची त्रिपाठी	97
गरिमा का शिल्प : कोयनगुड़ा के ढोकरा कारीगरों संग सह-सृजन से समावेशी और सशक्त आजीविका की पुनर्कल्पना जय जगद	105
मैसूरु की जीवित होयसला शिल्प परंपरा तनीमा चंदा	114
भारत के परिप्रेक्ष्य में समाज और शाश्वतता (सस्टेनेबिलिटी) डॉ. अक्षया आप्टे	119

यह पृथ्वी रहेगी

मुझे विश्वास है
यह पृथ्वी रहेगी

यदि और कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में
यह रहेगी जैसे पेड़ के तन में
रहते हैं दीमक
जैसे दाने में रह लेता है घुन

यह रहेगी प्रलय के बाद भी मेरे अंदर
यदि और कहीं नहीं तो मेरी ज़बान
और मेरी नश्वरता में
यह रहेगी

और एक सुबह मैं उठूँगा
मैं उठूँगा पृथ्वी-समेत

जल और कच्छप-समेत मैं उठूँगा
मैं उठूँगा और चल दूँगा उससे मिलने

जिससे वादा है
कि मिलूँगा।

— केदारनाथ सिंह

भाग 1

विज्ञान एवं तकनीक

गोबर आधारित हरित ईंटें: प्रयोगशाला से तापीय दक्ष भवन तक एक वैज्ञानिक अध्ययन

नम्रता अग्रहरी[1]
प्रो. वी. के. विजय[2]
प्रो. सुरेश भल्ला[3]

[1,2] ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केंद्र
[3] सिविल इंजीनियरी विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल:
[1]namrata.agrahari@rdat.iitd.ac.in
[2]vkvijay@rdat.iitd.ac.in
[3]sbhalla@civil.iitd.ac.in

सारांश

तेजी से बढ़ते शहरीकरण, भवनों में ऊर्जा की बढ़ती मांग तथा पारंपरिक निर्माण सामग्री के उत्पादन से होने वाले पर्यावरणीय प्रभावों ने टिकाऊ निर्माण सामग्री के विकास की आवश्यकता को और अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। भारत जैसे कृषि एवं पशुधन प्रधान देश में गोबर एक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध जैव-संसाधन है, जिसका उपयोग परंपरागत रूप से ग्रामीण भवनों में लेपन तथा फर्श निर्माण के लिए किया जाता रहा है। प्रस्तुत शोध में इसी पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षणों से जोड़ते हुए गोबर आधारित हरित ईंटों (Cow-Dung-Composite Bricks) का विकास किया गया तथा उनकी यांत्रिक और तापीय विशेषताओं का प्रयोगशाला एवं वास्तविक प्रोटोटाइप भवनों के माध्यम से मूल्यांकन किया गया।

अध्ययन में गोबर, काओलिनाइट मृदा तथा चूने के विभिन्न अनुपातों से 20 मिश्रण विकसित किए गए। प्रयोगात्मक परीक्षणों के आधार पर 50% गोबर, 45% काओलिनाइट मृदा तथा 5% चूना युक्त मिश्रण को मजबूती, तापीय व्यवहार और न्यूनतम चूना उपयोग के संतुलन की दृष्टि से उपयुक्त पाया गया। इसके बाद आई.आई.टी. दिल्ली परिसर में दो प्रोटोटाइप भवन निर्मित कर जनवरी से जुलाई 2025 तक उनके तापीय व्यवहार का अध्ययन किया गया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि गोबर आधारित हरित संरचना ने ग्रीष्मकाल में पारंपरिक संरचना की तुलना में अधिक शीतल तथा शीतकाल में अपेक्षाकृत गर्म आंतरिक वातावरण प्रदान किया। यह अध्ययन भारतीय पारंपरिक ज्ञान, जैव-संसाधनों और आधुनिक अभियांत्रिकी के समन्वय द्वारा कम-ऊर्जा तथा पर्यावरण-अनुकूल भवन निर्माण की संभावनाओं को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द: गोबर आधारित ईंट, हरित भवन, तापीय दक्षता, टिकाऊ निर्माण, जैव-संसाधन, चक्रीय अर्थव्यवस्था, कचरे से संपदा

1. भूमिका: परंपरा से आधुनिक विज्ञान की ओर

भवन क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों और ऊर्जा का एक बड़ा उपभोक्ता है। ईंट, सीमेंट, इस्पात जैसी पारंपरिक निर्माण सामग्रियों के उत्पादन में बड़ी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। विशेष रूप से पकी हुई मिट्टी की ईंटों के निर्माण में उच्च तापमान पर भट्टियों का उपयोग किया जाता है। अतः ऐसी स्थानीय निर्माण सामग्रियों का विकास आवश्यक है जिनमें कम ऊर्जा लगे और जो भवन के भीतर तापीय आराम प्रदान करने में भी सहायक हों।

भारत में गोबर को केवल पशु अपशिष्ट के रूप में नहीं देखा गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में सदियों से मिट्टी और गोबर के मिश्रण का उपयोग दीवारों एवं फर्श के लेपन में किया जाता रहा है। आधुनिक अनुसंधान भी गोबर को मिट्टी आधारित निर्माण सामग्री के स्थिरीकरण में उपयोगी जैव-सामग्री के रूप में देखने लगा है। हाल के अध्ययनों में गोबर-मिश्रित मृदा ब्लॉकों की जल-प्रतिरोधकता तथा गोबर आधारित ईंटों के तापीय एवं यांत्रिक गुणों पर वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं (Kulshreshtha *et al.*, 2026; Sugandhi et al., 2026)।

इसी पृष्ठभूमि में आई.आई.टी. दिल्ली में किए गए इस शोध का मूल प्रश्न था-क्या भारत में आसानी से उपलब्ध गोबर को आधुनिक वैज्ञानिक विधियों द्वारा ऐसी निर्माण सामग्री में बदला जा सकता है जो पर्याप्त मजबूती के साथ भवनों की तापीय दक्षता भी बढ़ाए?

2. गोबर से हरित ईंट बनाने का वैज्ञानिक प्रयास

इस अध्ययन में ताजा गोबर, काओलिनाइट मृदा तथा हाइड्रेटेड चूना [$Ca(OH)_2$] मुख्य कच्चे पदार्थों के रूप में उपयोग किए गए। गोबर एक लिग्नोसेल्यूलोसिक जैव-पदार्थ है तथा इसमें प्राकृतिक रेशेदार अवयव उपस्थित होते हैं। प्राकृतिक रेशों का उपयोग मृदा आधारित निर्माण सामग्री के यांत्रिक व्यवहार को प्रभावित कर सकता है और इस दिशा में विभिन्न प्राकृतिक रेशों पर किए गए अध्ययनों ने भी उत्साहजनक परिणाम दिखाए हैं।

गोबर की मात्रा को 50%, 60%, 70%, 80% तथा 90% रखते हुए कुल 20 अलग-अलग मिश्रण तैयार किए गए। प्रत्येक मिश्रण की पाँच प्रतिकृतियाँ बनाई गईं; इस प्रकार प्रयोगशाला अध्ययन में कुल 100 नमूनों का निर्माण किया गया। ईंटों को 230 × 110 × 75 मिमी आकार के साँचे में बनाया गया। मिश्रण में कोई अतिरिक्त पानी नहीं मिलाया गया; ताजे गोबर में उपस्थित प्राकृतिक नमी ही मिश्रण एवं साँचे में ढलाई के लिए पर्याप्त थी। तैयार नमूनों को आई.आई.टी. दिल्ली के महात्मा गांधी ग्रामोदय परिसर में लगभग 30 दिनों तक प्राकृतिक रूप से धूप में सुखाया गया। यह प्रक्रिया पारंपरिक पकी ईंट से मूलतः भिन्न है क्योंकि इसमें ईंटों को उच्च तापमान वाली भट्टी में पकाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिए भविष्य में बड़े स्तर पर विकसित किए जाने पर यह निर्माण सामग्री की embodied energy कम करने की दिशा में उपयोगी हो सकती है।



चित्र 1: विभिन्न संघटनों वाले नमूनों की दृश्य तुलना

3. मजबूती और तापीय चालकता का मूल्यांकन

किसी भी नई निर्माण सामग्री के लिए केवल पर्यावरण-अनुकूल होना पर्याप्त नहीं है; उसके इंजीनियरिंग गुणों का वैज्ञानिक परीक्षण भी आवश्यक है। अतः विकसित ईंटों की संपीड़न क्षमता, तापीय चालकता, जल अवशोषण, एफ्लोरेसेंस तथा सुदृढ़ता जैसे गुणों का मूल्यांकन किया गया। परीक्षणों के लिए प्रासंगिक मानक विधियों में IS 3495 (Part 1), IS 3495 (Part 3), IS 1077, IS 3346 तथा ASTM C518 शामिल हैं (BIS, 1980, 1992; ASTM International, n.d.)।

20 मिश्रणों में संपीड़न क्षमता लगभग **0.30 से 2.48 MPa** के बीच पाई गई। पाँच बेहतर मिश्रणों की संपीड़न क्षमता 2.17–2.48 MPa की अपेक्षाकृत संकीर्ण सीमा में रही, जिसका औसत लगभग 2.34 MPa था।

एक रोचक व्यवहार यह देखा गया कि गोबर आधारित ईंटें पारंपरिक पकी हुई मिट्टी की ईंटों की तरह अचानक भंगुर रूप से नहीं टूटीं। उनमें अपेक्षाकृत अधिक विकृति सहने की क्षमता दिखाई दी। इसी कारण उनके संपीड़न व्यवहार के मूल्यांकन में 5% विकृति आधारित मानदंड अपनाया गया।

तापीय चालकता भवन की ऊर्जा दक्षता से जुड़ा एक महत्त्वपूर्ण गुण है। कम तापीय चालकता वाली सामग्री दीवार के आर-पार ऊष्मा के प्रवाह को कम करने में सहायक हो सकती है। विकसित मिश्रणों की तापीय चालकता में उल्लेखनीय अंतर पाया गया। गोबर जैसे जैविक तथा रेशेदार पदार्थों की उपस्थिति से बनने वाली छिद्रयुक्त संरचना ऊष्मा संचरण को प्रभावित कर सकती है। हाल के स्वतंत्र शोध में भी गोबर आधारित ईंटों में कम तापीय चालकता दर्ज की गई है (Sugandhi *et al.*, 2026)।

सभी परिणामों के समग्र विश्लेषण के पश्चात 50% गोबर + 45% काओलिनाइट मृदा + 5% चूना वाले मिश्रण को आगे के अध्ययन के लिए चुना गया। इस मिश्रण ने लगभग 2.39 MPa की संपीड़न क्षमता प्रदर्शित की। चयन का आधार केवल अधिकतम मजबूती नहीं था, बल्कि यांत्रिक प्रदर्शन, तापीय व्यवहार तथा चूने की न्यूनतम मात्रा के बीच संतुलन था। इसके अतिरिक्त, ईंटों के दीर्घकालिक यांत्रिक व्यवहार के अध्ययन में यह पाया गया कि **प्रत्येक छह माह के अंतराल पर समान संरचना वाली ईंटों की संपीड़न क्षमता में लगभग 0.5 MPa की वृद्धि हुई। यह वृद्धि मिश्रण में उपस्थित चूने की समय के साथ जारी रहने वाली अभिक्रियाओं एवं क्रमिक सुदृढ़ीकरण (long-term strengthening)** से संबंधित मानी गई, जो विकसित गोबर आधारित ईंटों की दीर्घकालिक मजबूती की संभावना को दर्शाती है।

इस चयनित ईंट में औसत जल अवशोषण लगभग 23% पाया गया। एफ्लोरेसेंस परीक्षण में ईंटों की सतह पर उल्लेखनीय सफेद अथवा धूसर लवणीय धब्बे नहीं दिखाई दिए।

4. प्रयोगशाला से वास्तविक भवन तक

निर्माण सामग्री पर किए गए अधिकांश शोध प्रयोगशाला परीक्षणों तक सीमित रह जाते हैं। परंतु किसी सामग्री की वास्तविक उपयोगिता जानने के लिए उसे भवन के रूप में प्रयोग करके मौसम की वास्तविक परिस्थितियों में परखना आवश्यक है।

इसी उद्देश्य से आई.आई.टी. दिल्ली के महात्मा गांधी ग्रामोदय परिसर में लगभग 2 m × 2 m × 2 m आकार के दो प्रोटोटाइप भवन बनाए गए। पहला भवन विकसित गोबर आधारित हरित ईंटों से बनाया गया, जबकि दूसरा पारंपरिक पकी हुई मिट्टी की ईंटों और प्रबलित सीमेंट-कंक्रीट छत वाला नियंत्रण भवन था।

हरित भवन में केवल दीवारों तक ही जैव-आधारित सामग्री का उपयोग सीमित नहीं रखा गया। बाँस तथा गोबर-मृदा-चूना आधारित मिश्रित सामग्री का उपयोग छत संबंधी घटकों में भी किया गया। इस प्रकार प्रोटोटाइप ने स्थानीय जैव-संसाधनों पर आधारित एक समग्र हरित भवन अवधारणा प्रस्तुत की।

इस चरण का उद्देश्य यह देखना था कि प्रयोगशाला में दिखाई देने वाले तापीय गुण वास्तविक दिल्ली जलवायु में भवन के अंदर तापमान को किस सीमा तक प्रभावित करते हैं।

5. सात महीनों तक वास्तविक तापीय परीक्षण

दोनों प्रोटोटाइप भवनों की तापीय निगरानी जनवरी से जुलाई 2025 तक की गई। प्रत्येक माह लगातार 72 घंटे तक प्रत्येक घंटे परिवेश तथा दोनों भवनों के तापमान एवं सापेक्ष आर्द्रता का मापन किया गया। इस प्रकार शीत ऋतु से ग्रीष्म और वर्षा ऋतु तक अलग-अलग मौसमी परिस्थितियों में दोनों भवनों की प्रतिक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन संभव हुआ। परिणाम विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे।

जनवरी में परिवेश का औसत तापमान लगभग 11.8°C था। इस अवधि में पारंपरिक भवन का औसत आंतरिक तापमान लगभग 10.1°C, जबकि गोबर आधारित हरित भवन का तापमान लगभग 15.2°C दर्ज किया गया। अर्थात् अत्यधिक ठंड की परिस्थिति



चित्र 2: दीवारों पर स्थापित बाँस-प्रबलित मिश्रित लिंटल स्लैब



चित्र 3: गोबर-आधारित हरित संरचना एवं नियंत्रण संरचना



चित्र 4: आई.आई.टी. दिल्ली के ग्रामोदय परिसर में एक संपूर्ण हरित भवन

में हरित भवन पारंपरिक भवन की तुलना में लगभग 5.1°C अधिक गर्म रहा।

इसके विपरीत, मई में जब परिवेश का औसत तापमान लगभग 35.9°C था, पारंपरिक भवन के अंदर औसत तापमान लगभग 34.9°C रहा, जबकि हरित भवन का तापमान केवल 28.1°C दर्ज किया गया। इस प्रकार हरित भवन लगभग 6.8°C अधिक शीतल रहा।

जून में भी हरित भवन का औसत आंतरिक तापमान लगभग 27.3°C रहा, जबकि पारंपरिक भवन में यह लगभग 33.2°C था। जुलाई में क्रमशः लगभग 26.3°C तथा 30.0°C तापमान दर्ज किया गया।

ये परिणाम दर्शाते हैं कि विकसित गोबर आधारित भवन आवरण बाहरी तापमान के उतार-चढ़ाव को कम करके भवन के अंदर अपेक्षाकृत स्थिर तापीय वातावरण उपलब्ध कराने की क्षमता रखता है।

6. कचरा नहीं, एक स्थानीय जैव-संसाधन

भारत में बड़ी पशुधन आबादी के कारण गोबर ग्रामीण क्षेत्रों में आसानी से उपलब्ध जैव-संसाधन है। यदि इसका वैज्ञानिक रूप से सुरक्षित एवं व्यवस्थित उपयोग निर्माण सामग्री के रूप में किया जाए तो यह चक्रीय अर्थव्यवस्था (Circular Economy) की अवधारणा को मजबूत कर सकता है—अर्थात् एक क्षेत्र से निकलने वाला जैव-अवशेष दूसरे क्षेत्र के लिए उपयोगी कच्चा पदार्थ बन जाए।

गोबर आधारित निर्माण सामग्री के क्षेत्र में हाल के वैज्ञानिक अध्ययन भी इसकी संभावनाओं की पुष्टि कर रहे हैं। Kulshreshtha et al. (2026) ने गोबर-स्थिरीकृत compressed earth blocks में जल-प्रतिरोध व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया है। वहीं Sugandhi et al. (2026) ने गोबर आधारित ईंटों में तापीय चालकता लगभग 0.18–0.28 W/mK दर्ज करते हुए इनके तापीय इन्सुलेशन की संभावनाओं को रेखांकित किया है।

7. निष्कर्ष: भारतीय ज्ञान और आधुनिक अभियांत्रिकी का संगम

इस शोध का सबसे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष केवल यह नहीं है कि गोबर से ईंट बनाई जा सकती है, बल्कि यह है कि भारत में सदियों से उपयोग किए जा रहे एक पारंपरिक जैव-संसाधन को आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षणों, सामग्री अभियांत्रिकी और वास्तविक भवन परीक्षण के माध्यम से नई उपयोगिता दी जा सकती है।

प्रयोगशाला में 20 मिश्रणों और 100 नमूनों से प्रारंभ हुआ यह अध्ययन अंततः दो वास्तविक प्रोटोटाइप भवनों और सात महीने के तापीय परीक्षण तक पहुँचा। परिणामों ने दर्शाया कि गोबर आधारित हरित भवन ने दिल्ली की जलवायु में गर्मियों में पारंपरिक भवन की तुलना में बेहतर शीतलन प्रभाव तथा सर्दियों में बेहतर तापीय संरक्षण प्रदान किया।

भविष्य में यदि इस तकनीक को दीर्घकालिक टिकाऊपन परीक्षण, जीवन-चक्र आकलन, मानकीकरण और बड़े पैमाने के निर्माण परीक्षणों से जोड़ा जाए, तो गोबर आधारित निर्माण सामग्री विशेष रूप से ग्रामीण एवं कम-ऊर्जा भवनों के लिए एक उपयोगी विकल्प बन सकती है।

इस प्रकार, जिसे सामान्यतः "अपशिष्ट" समझा जाता है, वही वैज्ञानिक दृष्टिकोण और उचित तकनीकी विकास के साथ स्थानीय संसाधन, हरित निर्माण सामग्री और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए मूल्यवान उत्पाद बन सकता है।

टिप्पणी: प्रस्तुत लेख में गोबर आधारित ईंटों के मिश्रण, प्रयोगशाला परिणाम, प्रोटोटाइप भवन तथा जनवरी–जुलाई 2025 के तापीय प्रदर्शन से संबंधित मूल आँकड़े लेखिका के पीएच.डी. शोध से लिए गए हैं (Agrahari, 2026)।

संदर्भ

1. Kulshreshtha, Y., Vardon, P. J., Meesters, G. M. H., van Loosdrecht, M. C. M., Mota, N. J. A., & Jonkers, H. M. (2026). Cow-dung stabilised compressed earth blocks: A mechanistic approach to understand its water resistance behaviour. Materials and Structures, 59, Article 122. https://doi.org/10.1617/s11527-025-02882-9
2. Sugandhi, N., Patil, S., Reddy, S., G, A., & Kumar, S. (2026). Sustainable cow dung bricks: An innovative approach to eco-friendly masonry with enhanced thermal and mechanical performance. Journal of Sustainable Construction Materials and Technologies, 11(1), Article 8. https://doi.org/10.29187/2458-973X.1208
3. ASTM International. (n.d.). ASTM C518: Standard test method for steady-state thermal transmission properties by means of the heat flow meter apparatus. ASTM International.
4. Bureau of Indian Standards. (1992). IS 3495 (Part 1): Methods of tests of burnt clay building bricks—Determination of compressive strength. New Delhi: BIS.
5. Bureau of Indian Standards. (1992). IS 3495 (Part 3): Methods of tests of burnt clay building bricks—Determination of efflorescence. New Delhi: BIS.
6. Bureau of Indian Standards. (1992). IS 1077: Common burnt clay building bricks—Specification. New Delhi: BIS.
7. Bureau of Indian Standards. (1980). IS 3346: Method for determination of thermal conductivity of thermal insulation materials. New Delhi: BIS.
8. Walker, P. J. (1995). Strength, durability and shrinkage characteristics of cement stabilised soil blocks. Cement and Concrete Composites, 17(4), 301–310. https://doi.org/10.1016/0958-9465(95)00019-9

9. Binici, H., Aksogan, O., & Shah, T. (2005). Investigation of fibre reinforced mud brick as a building material. Construction and Building Materials, 19(4), 313–318. https://doi.org/10.1016/j.conbuildmat.2004.07.013
10. Reddy, B. V. V., & Gupta, A. (2008). Influence of sand grading on the characteristics of mortars and soil–cement block masonry. Construction and Building Materials, 22(8), 1614–1623. https://doi.org/10.1016/j.conbuildmat.2007.06.014
11. Cagnon, H., Aubert, J. E., Coutand, M., & Magniont, C. (2014). Hygrothermal properties of earth bricks. Energy and Buildings, 80, 208–217. https://doi.org/10.1016/j.enbuild.2014.05.024
12. Giuffrida, G., Caponetto, R., & Nocera, F. (2019). Hygrothermal properties of raw earth materials: A literature review. Sustainability, 11(19), 5342. https://doi.org/10.3390/su11195342
13. Minke, G. (2006). Building with Earth: Design and Technology of a Sustainable Architecture. Birkhäuser. https://doi.org/10.1007/978-3-7643-7873-8
14. Nshimiyimana, P., Messan, A., & Courard, L. (2020). Physico-mechanical and hygro-thermal properties of compressed earth blocks stabilized with industrial and agro by-product binders. Materials, 13(17), 3769. https://doi.org/10.3390/ma13173769
15. Gharbage, I., Benmahiddine, F., & Sebaibi, N. (2025). Mechanical, thermal and hydric properties of compressed earth blocks: A review. Journal of Building Engineering, 104, 112387. https://doi.org/10.1016/j.jobe.2025.112387
16. Agrahari, N. (2026). Lab and Field Investigations on Cow-Dung Based Bricks for Thermally Efficient Sustainable Construction [Ph.D. thesis]. Indian Institute of Technology Delhi.

हरियाणा के ग्रामीण इलाकों में अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब (Waste Stabilisation Pond) का तकनीकी मूल्यांकन

शुभांजली कोरी[1]
प्रो. पूजा घोष
प्रो. विवेक कुमार[2]

ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केंद्र,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल:
[1]Shubhanjali.binkar08@gmail.com
[2]vivekk@rdat.iitd.ac.in

सारांश

ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों में घरेलू तथा औद्योगिक अपशिष्ट जल, सेप्टेज और मल-कीचड़ के उपचार के लिए अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब (Waste Stabilization Pond (WSP)) तथा निर्मित आर्द्रभूमि (constructed wetlands) जैसी विकेन्द्रीकृत उपचार प्रणालियों को केंद्रीकृत अथवा अर्ध-केंद्रीकृत सीवरेज व्यवस्था के विकल्प के रूप में अपनाया गया है। ये प्रणालियाँ कम निर्माण लागत, सरल संचालन, न्यून ऊर्जा आवश्यकता तथा अपेक्षाकृत कम रखरखाव के कारण विशेष रूप से उपयोगी मानी जाती हैं। उपचार के पश्चात प्राप्त जल का उपयोग सिंचाई, हरित क्षेत्र विकास, सड़कों पर जल छिड़काव, वाहन धुलाई तथा अन्य गैर-पेय प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है, जिससे मीठे जल पर निर्भरता कम करने में भी सहायता मिलती है। इसी संदर्भ में हरियाणा राज्य में अपशिष्ट जल प्रबंधन प्रणालियों के प्रदर्शन का आकलन किया गया। अध्ययन में उपचार प्रणालियों की कार्यक्षमता एवं स्थिरता का मूल्यांकन करने के लिए भौतिक, रासायनिक और जैविक जल-गुणवत्ता मापदंडों का विश्लेषण किया गया तथा 153 परिवारों का सर्वेक्षण किया गया। उपचार प्रणाली के प्रवेश और निर्गम बिंदुओं पर pH, जैवरासायनिक ऑक्सीजन मांग, रासायनिक ऑक्सीजन मांग, कुल घुलित ठोस, लवणता, नाइट्रेट तथा फॉस्फेट जैसे प्रमुख मापदंडों की जांच की गई। कुल छह अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाबों के मूल्यांकन से पाया गया कि उनमें से केवल चार प्रणालियाँ संतोषजनक रूप से कार्य कर रही थीं, जबकि शेष प्रणालियों की कार्यक्षमता अपर्याप्त रखरखाव और नियमित निगरानी के अभाव से प्रभावित थी। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि तकनीकी सुधारों और नवीन व्यवस्थाओं के समावेशन से उपचार प्रणालियों की डिज़ाइन क्षमता और दक्षता में सुधार की संभावना है। हालांकि, अपशिष्ट जल प्रबंधन की प्रभावशीलता केवल तकनीकी पक्षों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि सामाजिक

स्वीकृति, नियमित संचालन एवं रखरखाव, संस्थागत सहयोग तथा स्थानीय समुदाय में जागरूकता भी इसकी दीर्घकालिक सफलता के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

मुख्य शब्द: अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब; ग्रामीण अपशिष्ट जल प्रबंधन; जल गुणवत्ता; सामुदायिक सहभागिता

1. प्रस्तावना

अमेरिकी भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार, पृथ्वी पर लगभग 1.386 अरब घन किलोमीटर कुल जल उपलब्ध है (U.S. Geological Survey [USGS], 2019), किंतु इसका बहुत छोटा भाग ही मानव उपयोग के लिए मीठे जल के रूप में उपलब्ध है। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण और जल की बढ़ती मांग के कारण मीठे जल की उपलब्धता सुनिश्चित करना तथा उपयोग के पश्चात उत्पन्न अपशिष्ट जल का सुरक्षित उपचार करना वैश्विक स्तर पर एक महत्त्वपूर्ण चुनौती बन गया है। विशेष रूप से वर्षाजल और घरेलू अथवा अन्य गतिविधियों से उत्पन्न अपशिष्ट जल का पर्यावरण में निस्तारण करने से पूर्व उचित उपचार आवश्यक है, क्योंकि अनुपचारित जल भूमि में रिसकर भूजल की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है। इस कारण प्रभावी, सरल और किफ़ायती जैविक तथा उन्नत अपशिष्ट जल उपचार प्रणालियों की आवश्यकता लगातार बढ़ रही है। जैविक उपचार प्रक्रियाएँ सूक्ष्मजीवों की सहायता से अपशिष्ट जल में उपस्थित कार्बनिक प्रदूषकों को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनमें Trickling Filter, Rotating Biological Contactor (RBC), Constructed Wetland, Anaerobic Reactor, Waste Stabilization Pond (WSP), तथा Sequencing Batch Reactor (SBR) जैसी तकनीकें प्रमुख रूप से शामिल हैं। अपनी अपेक्षाकृत सरल संरचना, कम ऊर्जा आवश्यकता तथा प्रभावी प्रदूषक निष्कासन क्षमता के कारण ये तकनीकें विकेन्द्रीकृत और कम लागत वाली अपशिष्ट जल प्रबंधन प्रणालियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हो सकती हैं (Mahapatra *et al.*, 2022)।

अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब, अपशिष्ट जल उपचार की एक प्रचलित और प्रभावी प्राकृतिक प्रणाली है (Kapilesh & Indrani, 2015)। ये मानव-निर्मित जलाशय होते हैं, जिनमें अपशिष्ट जल का उपचार प्राकृतिक भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रक्रियाओं के माध्यम से किया जाता है। यह प्रणाली विशेष रूप से उन ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है, जहाँ आवासीय और सार्वजनिक क्षेत्रों से पर्याप्त दूरी पर भूमि उपलब्ध हो तथा स्थानीय स्तर पर अपशिष्ट जल संग्रहण व्यवस्था विकसित की जा सके। सामान्यतः अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब प्रणाली में अवायवीय तालाब (Anaerobic Pond), वैकल्पिक तालाब (Facultative Pond) और परिपक्वन तालाब (Maturation Pond) शामिल होते हैं (Mahapatra *et al.*, 2022)। Gopolang और Letshwenyo (2018) के अनुसार, कई परिस्थितियों में जैवरासायनिक ऑक्सीजन मांग के निष्कासन के लिए अवायवीय और वैकल्पिक तालाब पर्याप्त हो सकते हैं, विशेषकर तब जब उपचारित जल का उपयोग सीमित फसल सिंचाई, मत्स्यपालन अथवा पोषक स्रोत के रूप में किया जाना हो। वहीं, उपचारित जल के निर्बाध सिंचाई उपयोग अथवा अधिक प्रभावी रोगजनक निष्कासन की आवश्यकता होने पर परिपक्वन तालाब को उपचार शृंखला में शामिल किया जाता है।

वैकल्पिक तालाब (Facultative Pond) में अवायवीय तालाब (Anaerobic Pond) से प्राप्त आंशिक रूप से उपचारित एवं अवसादित अपशिष्ट जल प्रवेश करता है। इसे सामान्यतः 20–25°C तापमान की परिस्थितियों में जैवरासायनिक ऑक्सीजन मांग के प्रभावी निष्कासन के लिए अभिकल्पित किया जाता है (Ghangrekar, 2022)। इसमें कार्बनिक पदार्थों के ऑक्सीकरण में वायवीय जीवाणु मुख्य भूमिका निभाते हैं, जबकि शैवाल प्रकाश-संश्लेषण द्वारा ऑक्सीजन उत्पन्न कर इस प्रक्रिया को सहारा देते हैं। शैवाल की सक्रियता बढ़ने पर जल के पीएच में भी वृद्धि हो सकती है। परिपक्वन तालाब सामान्यतः 1–1.5 मीटर गहरे होते

हैं तथा इनमें वैकल्पिक तालाब से निकला आंशिक रूप से उपचारित जल प्रवेश करता है। इनके अभिकल्पन में जलधारण अवधि और तापमान महत्त्वपूर्ण कारक हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य रोगजनक सूक्ष्मजीवों, विशेष रूप से मलजनित कोलीफॉर्म, की संख्या को कम करना तथा अंतिम जल गुणवत्ता में सुधार करना है। इस प्रकार, परिपक्वन तालाब उपचारित अपशिष्ट जल के सुरक्षित पुनः उपयोग और सतही जल स्रोतों में निस्तारण से पूर्व अतिरिक्त उपचार प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (Buchanan *et al.*, 2018; Ham *et al.*, 2007; Kapilesh & Indrani, 2015)।

हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्रों में अपशिष्ट जल के अपर्याप्त प्रबंधन के कारण नालियों का अवरोध, जलभराव तथा मानसून के दौरान वर्षाजल और सीवेज के मिश्रण जैसी समस्याएँ गंभीर रूप ले रही हैं, जिससे पर्यावरणीय एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी जोखिम बढ़ते हैं। इन चुनौतियों के समाधान के लिए *हरियाणा तालाब एवं अपशिष्ट जल प्रबंधन प्राधिकरण अधिनियम, 2018* के अंतर्गत तालाबों के संरक्षण, पुनर्जीवन तथा उपचारित अपशिष्ट जल के पुनः उपयोग को संस्थागत आधार प्रदान किया गया है। इसी व्यवस्था के अंतर्गत अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब कम लागत और अपेक्षाकृत सरल संचालन वाली उपचार प्रणाली के रूप में उपयोग किए जा रहे हैं। इनमें अवायवीय, वैकल्पिक तथा परिपक्वन तालाबों की क्रमिक शृंखला के माध्यम से कार्बनिक प्रदूषकों और रोगजनक सूक्ष्मजीवों का निष्कासन किया जाता है। इस अध्ययन में करनाल ज़िले में स्थापित छह अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब प्रणालियों का मूल्यांकन केवल जल-गुणवत्ता अथवा उपचार दक्षता तक सीमित न रखकर, तकनीकी प्रदर्शन, संचालन एवं रखरखाव संबंधी चुनौतियों, पर्यावरणीय परिस्थितियों तथा स्थानीय समुदाय की धारणा और व्यवहार को एकीकृत रूप से विश्लेषित किया गया है। इसके लिए प्रवेश एवं निर्गम जल की गुणवत्ता का परीक्षण तथा घरेलू सर्वेक्षण किया गया। यह समग्र दृष्टिकोण ग्रामीण परिस्थितियों में इन प्रणालियों की वास्तविक कार्यक्षमता, प्रमुख कमियों तथा दीर्घकालिक स्थिरता को समझने और उनके बेहतर प्रबंधन के लिए व्यावहारिक रणनीतियाँ विकसित करने में सहायक है।

2. कार्यविधि

2.1 डेटा संग्रह

इस अध्ययन में डेटा संग्रह की प्रक्रिया को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया गया। पहले भाग में, क्षेत्रीय मापन तथा द्वितीयक स्रोतों से मात्रात्मक आंकड़े एकत्र किए गए। दूसरे भाग में, साक्षात्कार और फोकस समूह चर्चा के माध्यम से गुणात्मक जानकारी प्राप्त की गई। इस संयुक्त प्रक्रिया का उद्देश्य चयनित अपशिष्ट जल उपचार प्रणालियों के तकनीकी प्रदर्शन के साथ-साथ उनके सामाजिक, संचालनात्मक और प्रबंधन संबंधी पहलुओं का समग्र आकलन करना था।

2.2 मात्रात्मक आंकड़ों का विश्लेषण

जल गुणवत्ता से संबंधित प्रमुख मापदंडों, जैसे जैवरासायनिक ऑक्सीजन मांग, रासायनिक ऑक्सीजन मांग, कुल निलंबित ठोस तथा पोषक तत्त्वों के स्तर का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकी के माध्यम से किया गया। प्रत्येक उपचार प्रणाली की औसत प्रदूषक निष्कासन दक्षता की गणना की गई तथा चयनित अध्ययन क्षेत्रों के बीच तुलनात्मक विश्लेषण किया गया। इसके अतिरिक्त, संचालन लागत, रखरखाव की आवृत्ति तथा प्रणाली की कार्यशीलता से संबंधित आंकड़ों का विश्लेषण कर लागत-प्रभावशीलता और दीर्घकालिक स्थिरता का आकलन किया गया। प्राप्त परिणामों की व्याख्या प्रचलित राष्ट्रीय अपशिष्ट जल उपचार मानकों और निर्धारित प्रदर्शन मानदंडों के संदर्भ में की गई।

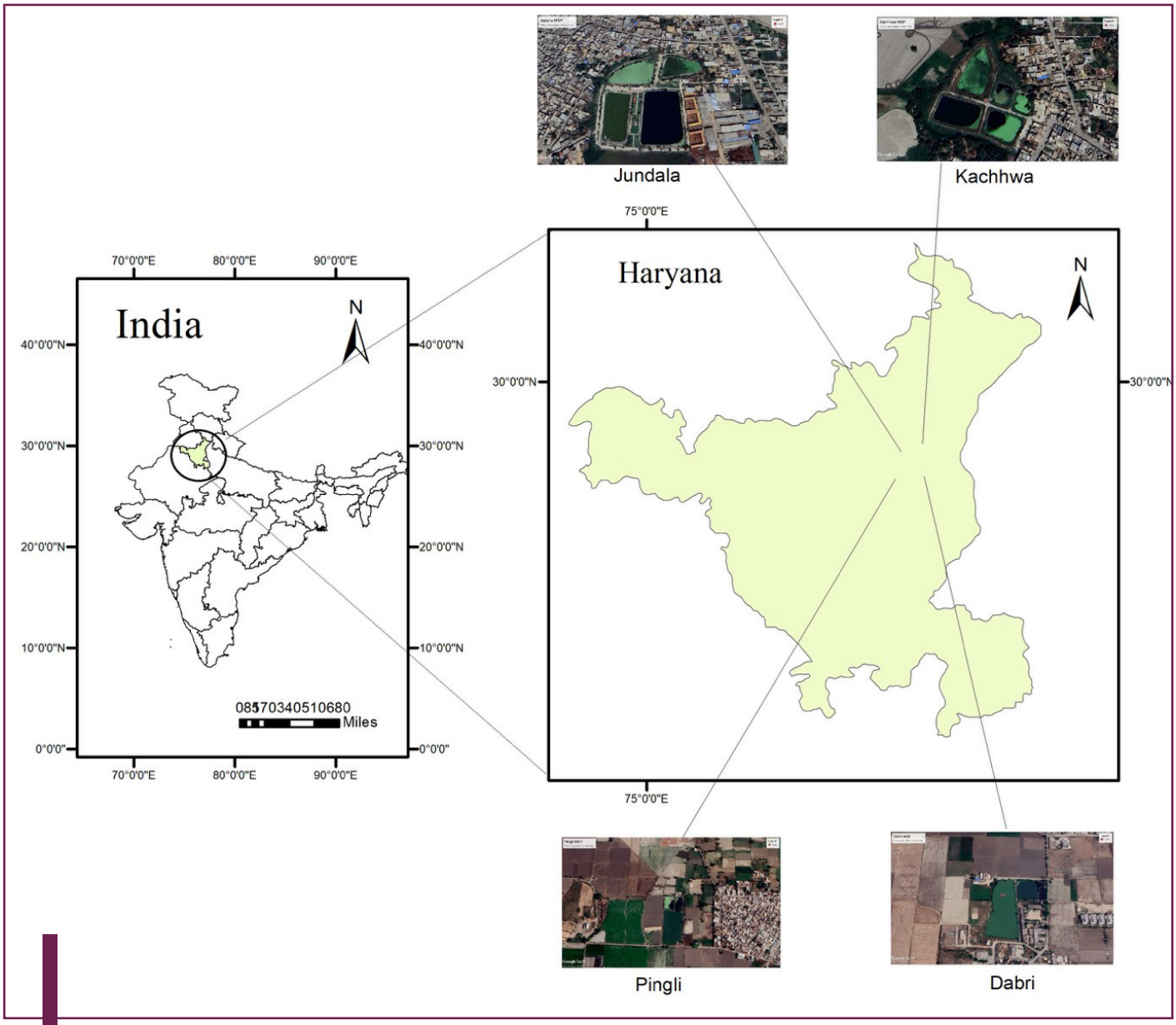
2.3 गुणात्मक आंकड़ों का विश्लेषण

गुणात्मक आंकड़ों का विषयगत विश्लेषण एमएस एक्सेल की सहायता से किया गया। साक्षात्कार और फोकस समूह चर्चाओं से प्राप्त प्रतिक्रियाओं को लिपिबद्ध कर प्रमुख विषयों के आधार पर वर्गीकृत एवं कोडित किया गया। इनमें सामुदायिक भागीदारी, प्रणाली की प्रभावशीलता के प्रति धारणा, दीर्घकालिक स्थिरता में बाधाएं तथा तकनीक की सामाजिक-सांस्कृतिक स्वीकार्यता प्रमुख विषय थे। इसके बाद गुणात्मक निष्कर्षों की मात्रात्मक परिणामों के साथ तुलना की गई, जिससे चयनित क्षेत्रों में अपशिष्ट जल

उपचार प्रणालियों की सफलता अथवा सीमाओं को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों की समग्र समझ विकसित की जा सके।

3. अध्ययन क्षेत्र

करनाल भारत के हरियाणा राज्य में स्थित एक शहर है और यह करनाल ज़िले का प्रशासनिक केंद्र है। इसका कुल क्षेत्रफल 87 वर्ग किलोमीटर (34 वर्ग मील) है। 2016 में यहाँ की जनसंख्या 3,57,334 थी। इसका भौगोलिक निर्देशांक: 29.686 डिग्री अक्षांश, 76.989 डिग्री देशांतर है। अध्ययन में कुल छह अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाबों का मूल्यांकन किया गया, जिनमें से केवल चार तालाब ही संतोषजनक रूप से क्रियाशील पाए गए। इसलिए, प्रस्तुत चित्रों में केवल उन्हीं चार क्रियाशील तालाबों के परिणाम दर्शाए गए हैं।



चित्र 1: हरियाणा के करनाल में अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब (Waste Stabilization Pond (WSP)) का अध्ययन क्षेत्र

4. परिणाम

4.1 प्रश्नावली सर्वेक्षण का विश्लेषण

अध्ययन में उत्तरदाताओं के चयन के लिए सरल यादृच्छिक प्रतिचयन पद्धति अपनाई गई, ताकि प्राप्त जानकारी अध्ययन क्षेत्र का यथासंभव प्रतिनिधित्व कर सके। जिन ग्रामीण उत्तरदाताओं को प्रश्नावली के प्रश्नों को समझने या उत्तर देने में कठिनाई हुई, उन्हें उनकी सहमति से परिवार के अपेक्षाकृत अधिक शिक्षित सदस्य की सहायता लेने की अनुमति दी गई। उत्तरदाताओं को यह भी स्पष्ट किया गया कि उनके द्वारा दी गई जानकारी पूर्णतः गोपनीय रखी जाएगी तथा उसका उपयोग केवल शोध उद्देश्यों के लिए किया जाएगा, जिससे वे अपने विचार स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकें।

सर्वेक्षण में शामिल अधिकांश परिवार ट्विन-पिट अथवा सेप्टिक टैंक आधारित शौचालय प्रणालियों का उपयोग कर रहे थे। उल्लेखनीय रूप से, इन प्रणालियों को स्थापना के बाद से कभी खाली नहीं किया गया था। कुल 153 प्रश्नावलियाँ पूर्ण एवं विश्लेषण के लिए उपयुक्त पाई गईं। प्रश्नावली में परिवार की जनसांख्यिकीय स्थिति, वर्तमान शौचालय व्यवस्था, मल-जल उपचार प्रणाली, (Greywater) and (Black Water) के निस्तारण की पद्धति तथा अपशिष्ट जल प्रबंधन के प्रति जागरूकता और व्यवहार से संबंधित जानकारी एकत्र की गई। इन आंकड़ों ने ग्रामीण स्तर पर मौजूदा स्वच्छता एवं अपशिष्ट जल प्रबंधन प्रथाओं को समझने का आधार प्रदान किया।

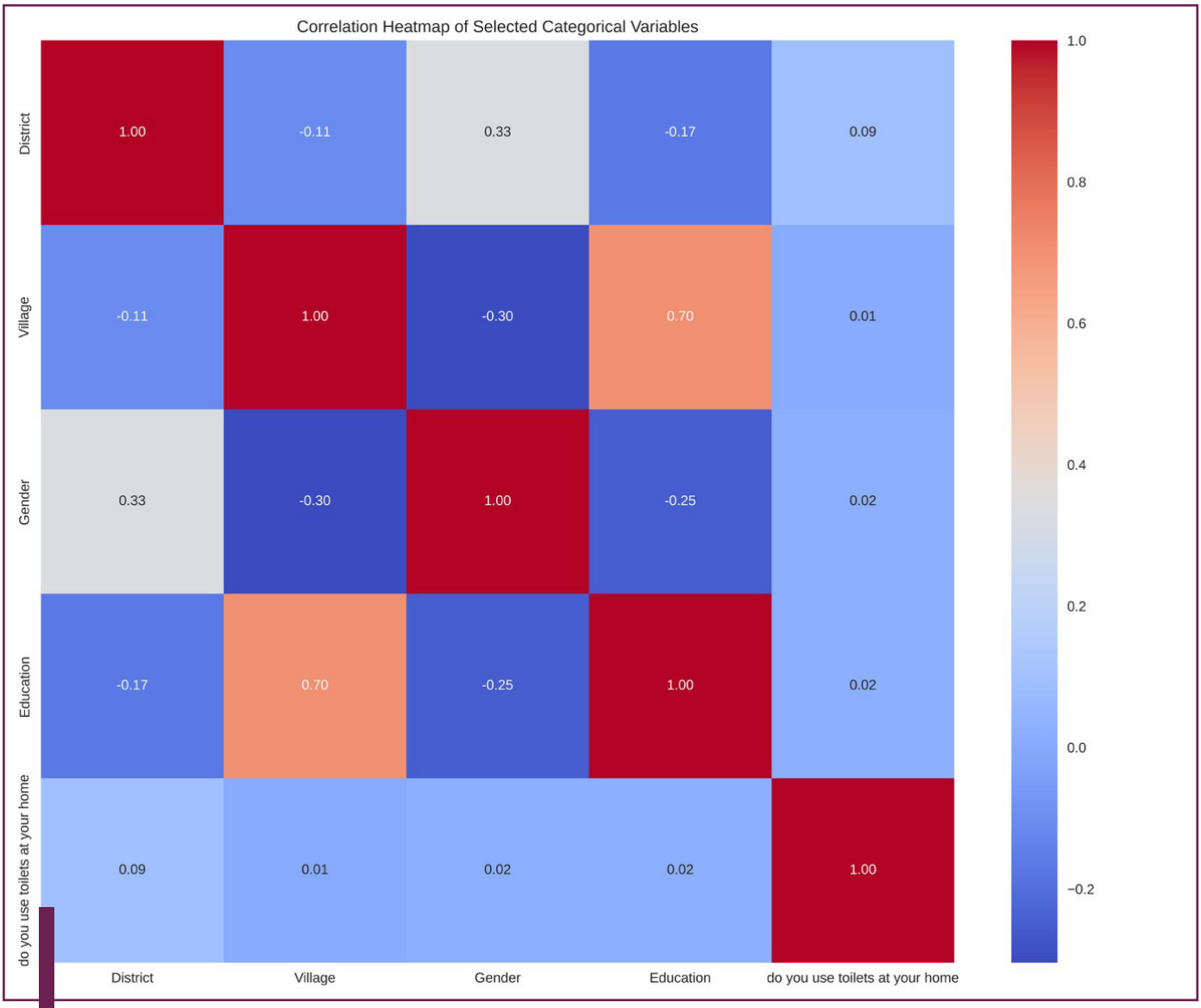
4.2 जल नमूनों का विश्लेषण

चार अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब प्रणालियों के जल-गुणवत्ता विश्लेषण में प्रवेश और निर्गम जल के बीच स्पष्ट अंतर पाया गया। सभी स्थलों पर निर्गम जल का पीएच बढ़ा और औसत मान लगभग 7.44 से बढ़कर 8.20 हो गया। औसत रासायनिक ऑक्सीजन मांग और जैवरासायनिक ऑक्सीजन मांग निष्कासन दक्षता क्रमशः 31.3% और 36.3% रही। डबरी में रासायनिक ऑक्सीजन मांग में सर्वाधिक 55.6% कमी दर्ज की गई, जबकि कछवा में जैवरासायनिक ऑक्सीजन मांग का अधिकतम 53.9% निष्कासन पाया गया।

घुलित पदार्थों के संदर्भ में पिंगली और कलामपुरा ने अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन किया, जहाँ कुल घुलित ठोस में क्रमशः 45.8% और 41.3% की कमी दर्ज की गई। इन स्थलों पर विद्युत चालकता और लवणता में भी समान प्रवृत्ति देखी गई। इसके विपरीत, जुंडला में रासायनिक एवं जैवरासायनिक ऑक्सीजन मांग में कमी के बावजूद कुल घुलित ठोस, विद्युत चालकता तथा लवणता में लगभग 17–18% वृद्धि दर्ज की गई। चिरावा में उपचार प्रदर्शन सबसे कमज़ोर रहा, जहाँ निर्गम जल में रासायनिक ऑक्सीजन मांग, जैवरासायनिक ऑक्सीजन मांग, कुल घुलित ठोस, विद्युत चालकता और लवणता के मान प्रवेश जल की तुलना में अधिक पाए गए।

ये परिणाम स्पष्ट करते हैं कि विभिन्न अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाबों की उपचार क्षमता में स्थल-विशिष्ट अंतर मौजूद थे, जिन्हें केवल औसत निष्कासन दक्षता के आधार पर समझना पर्याप्त नहीं है। अतः दीर्घकालिक उपचार प्रदर्शन का विश्वसनीय आकलन करने के लिए मौसमी एवं नियमित जल-नमूनाकरण के साथ-साथ संचालन और रखरखाव की स्थिति का निरंतर मूल्यांकन आवश्यक है।

घरों में अपनाई जाने वाली सफ़ाई प्रणालियों से पता चलता है कि ट्विन-पिट शौचालय (दो गड्ढों वाले शौचालय) सबसे ज़्यादा इस्तेमाल होने वाला डिज़ाइन था (n=44), इसके बाद सिंगल-पिट शौचालय (n=41) और सेप्टिक टैंक (n=39) का उपयोग किया जाता है। 12 घरों में सोक पिट (सोखने वाले गड्ढे) पाए गए, जबकि छह घरों में इंग्लिश और सिंगल-पिट शौचालयों का मिला-जुला इस्तेमाल हो रहा था और पाँच घरों में गंदा पानी खुली नालियों में बहाया जा रहा था। सीवरेज कनेक्शन बहुत कम थे (n=6), और कचरा निपटान के दूसरे तरीकों के बहुत कम मामले ही सामने आए। कुल मिलाकर, नतीजे बताते हैं कि लोग बड़े पैमाने पर सीवरेज सिस्टम के बजाय घर पर ही बने साफ़-सफ़ाई के सिस्टम, खासकर पिट शौचालय और सेप्टिक टैंक पर निर्भर हैं; केंद्रीयकृत सीवरेज अवसंरचना तक पहुँच बहुत सीमित है। वे सभी अपने गाँवों के WSP से जुड़े हुए थे।



चित्र 2: सर्वेक्षण का सह-संबंध विश्लेषण (correlation analysis)

4.3 फ़ायदे और नुकसान

अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब के प्रमुख लाभों में सरल संचालन, कम रखरखाव लागत, ऊर्जा की न्यूनतम आवश्यकता तथा जैविक और हाइड्रोलिक भार में उतार-चढ़ाव को सहन करने की क्षमता शामिल है। ये प्रणालियाँ निलंबित ठोस, जैवरासायनिक ऑक्सीजन मांग तथा रोगजनक सूक्ष्मजीवों को प्रभावी रूप से कम कर सकती हैं। उचित डिज़ाइन और नियमित रखरखाव की स्थिति में दुर्गंध तथा कीट संबंधी समस्याएँ भी सीमित रहती हैं। इनका निर्माण स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्रियों से किया जा सकता है तथा उपचारित जल का उपयोग सिंचाई और मत्स्यपालन जैसे गैर-पेय उद्देश्यों के लिए पुनः किया जा सकता है।

इसके बावजूद, इन प्रणालियों की कुछ महत्त्वपूर्ण सीमाएँ हैं। इनके लिए अपेक्षाकृत अधिक भूमि की आवश्यकता होती है, जिससे अधिक भूमि मूल्य वाले क्षेत्रों में प्रारंभिक लागत बढ़ सकती है। उचित डिज़ाइन और निर्माण के लिए तकनीकी विशेषज्ञता आवश्यक होती है। साथ ही, समय-समय पर संचित गाद का निष्कासन और सुरक्षित उपचार करना पड़ता है। मच्छरों के नियंत्रण और नियमित निगरानी की भी आवश्यकता होती है। ठंडी जलवायु में इनकी उपचार दक्षता कम हो सकती है, जबकि अपर्याप्त प्रबंधन की स्थिति में कृमिजनित रोगों के प्रसार का जोखिम भी बना रह सकता है।

5. निष्कर्ष

अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब ग्रामीण क्षेत्रों में अपशिष्ट जल से कार्बनिक पदार्थों तथा मलजनित सूक्ष्मजीवों के निष्कासन के लिए प्रभावी उपचार प्रणाली हैं। अवायवीय, वैकल्पिक तथा परिपक्वन तालाबों की क्रमिक प्रक्रिया के माध्यम से कार्बनिक भार में कमी आती है और उपचारित जल की गुणवत्ता में सुधार होता है। कम ऊर्जा आवश्यकता, सरल संचालन और अपेक्षाकृत आसान रखरखाव के कारण यह तकनीक ग्रामीण तथा संसाधन-सीमित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

हालांकि, भारत में इन प्रणालियों का प्रदर्शन स्थानीय जलवायु, तापमान, अपशिष्ट जल की विशेषताओं, हाइड्रोलिक भार तथा शैवाल समुदाय में होने वाले परिवर्तनों से प्रभावित हो सकता है। विभिन्न क्षेत्रों की मिट्टी, भू-आकृति, जल निकासी व्यवस्था तथा मौजूदा तालाबों की स्थिति में भिन्नता के कारण एक समान डिज़ाइन सभी स्थानों के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, तालाब के लिए पर्याप्त भूमि की उपलब्धता, अतिक्रमण, आबादी का घनत्व, नालियों की लंबाई, गाद निष्कासन तथा निर्माण और रखरखाव की लागत भी इसके प्रभावी क्रियान्वयन को प्रभावित करती है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उचित स्थल चयन, स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप डिज़ाइन तथा नियमित संचालन और रखरखाव सुनिश्चित किए जाने पर अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब ग्रामीण अपशिष्ट जल प्रबंधन के लिए प्रभावी और दीर्घकालिक विकल्प हो सकते हैं। हालांकि, सोक पिट और लीच पिट जैसी सरल प्रणालियों की तुलना में इनकी प्रारंभिक लागत और भूमि आवश्यकता अधिक हो सकती है। इसलिए इनकी सफलता तकनीकी दक्षता के साथ-साथ पर्याप्त वित्तीय संसाधनों, नियमित निगरानी और स्थानीय संस्थागत सहयोग पर भी निर्भर करती है।

संदर्भ

1. APHA. Standard methods for the examination of water and wastewater. (2005). In R. B. Baird, A. D. Eaton, & E. W. Rice (Eds.), *American Public Health Association* (23rd ed.). American Public Health Association . https://doi.org/10.2105/SMWW.2882.216
2. Buchanan, N., Young, P., Cromar, N. J., & Fallowfield, H. J. (2018). Comparison of the treatment performance of a high rate algal pond and a facultative waste stabilisation pond operating in rural South Australia. *Water Science and Technology,* 78(1), 3–11. https://doi.org/10.2166/wst.2018.201
3. Ghangrekar, M. M. (2022). Ponds and Wetlands for Treatment of Wastewater. In Wastewater to Water (pp. 555–592). *Springer Nature Singapore*. https://doi.org/10.1007/978-981-19-4048-4_13
4. Gopolang, O. P., & Letshwenyo, M. W. (2018). Performance Evaluation of Waste Stabilisation Ponds. *Journal of Water Resource and Protection*, 10(11), 1129–1147. https://doi.org/10.4236/jwarp.2018.1011067
5. Ham, J. H., Yoon, C. G., Jeon, J. H., & Kim, H. C. (2007). Feasibility of a constructed wetland and wastewater stabilisation pond system as a sewage reclamation system for agricultural reuse in a decentralised rural area. *Water Science and Technology,* 55(1–2), 503–511. https://doi.org/10.2166/wst.2007.014
6. Kapilesh, J., & Indrani, J. (2015). Role of Waste Stabilisation Ponds in the Wastewater Management. INROADS- An *International Journal of Jaipur National University,* 4(2), 73. https://doi.org/10.5958/2277-4912.2015.00014.4
7. Mahapatra, S., Samal, K., & Dash, R. R. (2022). Waste Stabilization Pond (WSP) for wastewater treatment: A review on factors, modelling and cost analysis. *Journal of Environmental Management,*

308, 114668. https://doi.org/10.1016/J.JENVMAN.2022.114668

8. Haryana Pond and Waste Water Management Authority. (Dec.,2025). Rural pond abstract: Present condition [Data set]. *Pond Data Management System.* Retrieved August 10, 2026, from https://pdms.hpwwma.org.in/PRuralAbstractPresent_Condition.aspx
9. Mara, D. D. (2003). *Design Manual for Waste Stabilization Ponds in the United Kingdom.* University of Leeds, Leeds, UK.
10. Hosmani, S. P., & Hosetti, B. B. (2009). Diversity of phytoplanktons in a waste stabilization pond at Shimoga Town, Karnataka State, India. *Environmental Monitoring and Assessment,* 151, 437-443. https://link.springer.com/article/10.1007/s10661-008-0287-5#citeas
11. Kumar, S., Mal, G., & Sharma, H. R. (2018). Waste stabilization ponds: a technical option for liquid waste management in rural areas in Haryana under Swachh Bharat Mission-Gramin. *Environ We An Int J Sci*
12. U.S. Geological Survey. (Nov.,2019). How much water is there on Earth? *Water Science School.* https://www.usgs Tech, 13, 177-187..gov/water-science-school/science/how-much-water-there-earth

भारतीय प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के लिए समग्र योग शिक्षा एकीकरण मॉडल (SYPIM): एक वैचारिक रूपरेखा

रोहित पाण्डेय
प्रो. ज्योति कुमार

इंजीनियरी में मूल्य शिक्षा के लिए राष्ट्रीय संसाधन केंद्र (NRCVEE), भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

ई-मेल:
rohitpandey@email.com



सारांश

प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा (Early Childhood Education) में योग को समग्र विकास के एक प्रभावी माध्यम के रूप में व्यापक मान्यता प्राप्त हो रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी योग, माइंडफुलनेस तथा मूल्य-आधारित शिक्षा को प्रारंभिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग माना है। उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि योग शिक्षण (Yoga Pedagogy) का अध्ययन मुख्यत: तीन आयामों—पारंपरिक गुरु-शिष्य परंपरा, प्रशिक्षक-केंद्रित एवं शिक्षार्थी-केंद्रित दृष्टिकोण, तथा व्याख्यान-आधारित, गतिविधि-आधारित और तकनीक-आधारित शिक्षण-पद्धतियों—के अंतर्गत किया गया है। यद्यपि इन सभी आयामों पर पर्याप्त शोध उपलब्ध है, फिर भी ऐसा कोई एकीकृत मॉडल उपलब्ध नहीं है जो इन सभी दृष्टिकोणों को भारतीय प्रारंभिक शिक्षा के संदर्भ में समग्र रूप से जोड़ सके।

इन्हीं शोध-अंतरालों को ध्यान में रखते हुए यह शोध-पत्र उपलब्ध साहित्य का समालोचनात्मक विश्लेषण करता है, योग शिक्षण से संबंधित प्रमुख शोध-अंतरालों की पहचान करता है तथा उनके समाधान के लिए 'समग्र योग शिक्षा एकीकरण मॉडल' (Samagra Yoga Pedagogy Integration Model – SYPIM) प्रस्तुत करता है। यह चार-स्तरीय चक्रीय मॉडल गुरु-शिष्य परंपरा, पंचकोश आधारित शिक्षण, Unified Theory of Acceptance and Use of Technology (UTAUT) and the Technological Pedagogical Content Knowledge (TPACK) आधारित शिक्षक अंगीकार एवं एकीकरण तंत्र (Teacher Adoption and Integration Mechanism) तथा सतत फीडबैक प्रणाली को एकीकृत करता है। साथ ही, मॉडल के अनुभवजन्य परीक्षण के लिए सैद्धांतिक प्रस्ताव एवं मिश्रित-विधि अनुसंधान रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई है। यह मॉडल शोधकर्ताओं, शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा नीति-निर्माताओं को प्रारंभिक शिक्षा में योग के प्रभावी एवं संदर्भानुकूल एकीकरण के लिए एक व्यवस्थित वैचारिक आधार प्रदान करता है।

मुख्य शब्द: योग शिक्षण, प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा, गुरु-शिष्य परंपरा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पंचकोश, समग्र शिक्षा

1. प्रस्तावना: समकालीन शिक्षा में योग की आवश्यकता

पिछले दो दशकों में योग को केवल शारीरिक अभ्यास के रूप में नहीं, बल्कि समग्र शिक्षण-पद्धति (Holistic Pedagogy) के रूप में देखा जाने लगा है। विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि विद्यालयों में नियमित योग अभ्यास बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य, ध्यान, आत्म-नियंत्रण, भावनात्मक संतुलन तथा सामाजिक व्यवहार में सकारात्मक सुधार लाता है (Ferreira-Vorkapic *et al.*, 2015; Martin *et al.*, 2024; Borah *et al.*, 2025)। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में बढ़ती शैक्षणिक प्रतिस्पर्धा, डिजिटल उपकरणों के बढ़ते उपयोग तथा सामाजिक-भावनात्मक चुनौतियों के कारण समग्र विकास पर आधारित शिक्षा की आवश्यकता और अधिक बढ़ गई है (Ibrahim *et al.*, 2022)। इसी संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-आधारभूत अवस्था (NCF-FS, 2022) योग, माइंडफुलनेस एवं मूल्य-आधारित शिक्षा को प्रारंभिक बाल्य शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हुए पंचकोश के माध्यम से बच्चों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास पर बल देती हैं (Manimekalai Narayanan *et al.*, 2025; Dowarah *et al.*, 2025)।

योग शिक्षण का स्वरूप समय के साथ गुरु-शिष्य परंपरा से विकसित होकर प्रशिक्षक-केंद्रित, शिक्षार्थी-केंद्रित, गतिविधि-आधारित तथा प्रौद्योगिकी-आधारित शिक्षण-पद्धतियों तक पहुँचा है (Behl & Pattiaratchi, 2023; Butzer *et al.*, 2016; Martin *et al.*, 2024; Wang, 2024; Das, 2025)। यद्यपि इन सभी दृष्टिकोणों पर पर्याप्त शोध उपलब्ध है, फिर भी भारतीय पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में ऐसा कोई एकीकृत मॉडल उपलब्ध नहीं है जो पारंपरिक योग शिक्षण, आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों तथा प्रौद्योगिकी-सहायित शिक्षण को एक साथ समाहित करे और शिक्षक द्वारा प्रौद्योगिकी अपनाने के कारकों को भी स्पष्ट करे। इन्हीं शोध-अंतरालों को ध्यान में रखते हुए यह शोध-पत्र भारतीय पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए 'समग्र योग शिक्षा एकीकरण मॉडल' (Samagra Yoga Pedagogy Integration Model - SYPIM) प्रस्तुत करता है, जो गुरु-शिष्य परंपरा, पंचकोश, UTAUT तथा TPACK को एकीकृत करते हुए योग शिक्षण के लिए एक व्यावहारिक एवं परीक्षण योग्य रूपरेखा प्रदान करता है।

2. साहित्य समीक्षा

प्रस्तुत साहित्य समीक्षा में योग शिक्षण के पारंपरिक एवं समकालीन दृष्टिकोणों का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, उपलब्ध अध्ययनों के आधार पर भारतीय प्रारंभिक बाल्य शिक्षा के संदर्भ में विद्यमान प्रमुख शोध-अंतरालों की पहचान निम्नवत की गई है:

2.1 पारंपरिक योग शिक्षण: गुरु-शिष्य परंपरा

गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय योग शिक्षा की प्राचीन एवं आधारभूत शिक्षण प्रणाली है, जिसमें योग का ज्ञान विश्वास, अनुशासन, अनुभव तथा निरंतर मार्गदर्शन के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा है (Behl & Pattiaratchi, 2023)। इसमें शिक्षण केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न होकर शिष्य के बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास पर केंद्रित था। श्रुति परंपरा, संवाद, अभ्यास तथा अनुभवात्मक अधिगम को विशेष महत्त्व दिया जाता था (Das, 2025)। Sen *et al.* (2025) के अनुसार, इस प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ अधिकार (Adhikara) आधारित शिक्षण, गुरु-शिष्य के बीच श्रद्धा एवं सेवा का संबंध तथा सतत अवलोकन आधारित मूल्यांकन थीं। मौखिक परंपरा और गुरु-दक्षिणा ने पतंजलि योगसूत्र जैसे ग्रंथों के संरक्षण एवं प्रसार में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई (Behl & Pattiaratchi, 2023; Kaur & Ahluwalia, 2025)।

2.2 एक शिक्षण-पद्धति के रूप में योग: प्रशिक्षक-केंद्रित एवं शिक्षार्थी-केंद्रित दृष्टिकोण

योग एक समग्र शिक्षण-पद्धति है, जो शारीरिक अभ्यास के साथ ध्यान, आत्म-जागरूकता एवं नैतिक मूल्यों के विकास पर बल देती है (Sahu, 2024)। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि विद्यालयों में नियमित योग अभ्यास बच्चों के ध्यान, आत्म-नियंत्रण, स्मृति,

आत्म-सम्मान तथा भावनात्मक संतुलन में सुधार करता है (Ferreira-Vorkapic *et al.*, 2015; Martin *et al.*, 2024; Borah *et al.*, 2025)। प्रशिक्षक-केंद्रित दृष्टिकोण में शिक्षक अभ्यास एवं मूल्यांकन का संचालन करता है, जिससे एकाग्रता एवं शैक्षणिक प्रदर्शन में सुधार देखा गया है (Butzer *et al.*, 2016; Baek *et al.*, 2021)। वहीं, शिक्षार्थी-केंद्रित दृष्टिकोण बच्चों की सक्रिय सहभागिता तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार योग शिक्षण को अधिक समावेशी एवं प्रभावी बनाता है, विशेषकर न्यूरो-विविध शिक्षार्थियों के लिए (Martin *et al.*, 2024; Basu *et al.*, 2026)। हालांकि, पर्याप्त शिक्षक-प्रशिक्षण के अभाव में योग शिक्षण कई बार केवल आसनों तक सीमित रह जाता है (Stapp & Wolff, 2019)।

2.3 आधुनिक योग शिक्षण-पद्धतियाँ: व्याख्यान, गतिविधि एवं प्रौद्योगिकी-आधारित दृष्टिकोण

योग शिक्षण व्यक्तिगत मार्गदर्शन से विकसित होकर व्याख्यान, गतिविधि एवं प्रौद्योगिकी-आधारित पद्धतियों तक पहुँचा है (Singleton, 2010; Halsey, 2012)। व्याख्यान-आधारित शिक्षण विद्यालयों में व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है, किन्तु प्रशिक्षित योग शिक्षकों की कमी इसकी प्रमुख चुनौती है (Telles *et al.*, 2013)। पूर्व-प्राथमिक स्तर पर गतिविधि-आधारित शिक्षण, जैसे कहानी, खेल एवं संगीत के माध्यम से योग-शिक्षण को बच्चों की सहभागिता, रचनात्मकता तथा स्मरण-क्षमता बढ़ाने में प्रभावी पाया गया है (Subramanian *et al.*, 2023; Luo *et al.*, 2023; Sevimli-Celik, 2026)। वहीं, प्रौद्योगिकी-आधारित योग शिक्षण में AI, Kinect तथा अन्य डिजिटल प्रणालियाँ मुद्रा-सुधार, त्वरित प्रतिपुष्टि एवं वैयक्तिकृत अभ्यास उपलब्ध कराती हैं (Fu & Wang, 2022; Wang, 2024), किन्तु भारतीय पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में इनके प्रभावी उपयोग पर अभी सीमित शोध उपलब्ध है।

2.4 साहित्य से उभरते शोध-अंतराल (Research Gaps)

साहित्य समीक्षा के आधार पर निम्नलिखित प्रमुख शोध-अंतराल सामने आते हैं:

- **सांदर्भिक अंतराल (Contextual Gap):** अधिकांश अध्ययन पश्चिमी देशों पर आधारित हैं; भारतीय पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में शोध सीमित हैं।

- **पद्धतिगत अंतराल (Methodological Gap):** दीर्घकालिक एवं बड़े नमूनों पर आधारित अध्ययन तथा बच्चों के मूल्य एवं सामाजिक-भावनात्मक विकास के आकलन पर पर्याप्त शोध उपलब्ध नहीं है।

- **तकनीकी अंतराल (Technological Gap):** भारतीय प्रारंभिक शिक्षा के लिए विकसित एवं परीक्षण किए गए EdTech आधारित योग मॉडल तथा शिक्षक स्वीकृति पर सीमित अध्ययन हैं।

- **शिक्षण-एकीकरण अंतराल (Pedagogical Integration Gap):** गुरु-शिष्य परंपरा, आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों एवं प्रौद्योगिकी को एकीकृत करने वाला समग्र मॉडल उपलब्ध नहीं है।

- **शिक्षक-तैयारी एवं मानकीकरण अंतराल (Teacher Preparedness and Standardisation Gap):** योग-शिक्षक प्रशिक्षण, अधिकार (Adhikara) आधारित मूल्यांकन तथा प्रमाणित (Validated) मापन उपकरणों पर शोध सीमित है।

3. समग्र योग शिक्षा एकीकरण मॉडल: एक एकीकृत वैचारिक मॉडल

उपरोक्त शोध-अंतराल यह संकेत देते हैं कि वर्तमान साहित्य में ऐसा समग्र मॉडल उपलब्ध नहीं है, जो योग की विषय-वस्तु, शिक्षण-पद्धति, शिक्षक की स्वीकृति, प्रौद्योगिकी के प्रभावी उपयोग तथा सीखने के परिणामों को समग्र रूप से समाहित कर सके। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यह अध्ययन समग्र योग शिक्षा एकीकरण मॉडल (SYPIM) प्रस्तुत

करता है। यह एक चक्रीय एवं चार-स्तरीय मॉडल है, जिसका उद्देश्य पारंपरिक योग ज्ञान और आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों के बीच संतुलित समन्वय स्थापित करना है।

यह मॉडल दो प्रमुख सैद्धांतिक ढाँचों - **यूनिफाइड थ्योरी ऑफ एक्सेप्टेन्स एंड यूज़ ऑफ टेक्नॉलजी (UTAUT)** (Venkatesh *et al.*, 2003) तथा **टेक्नोलॉजिकल पेडागॉजिकल कंटेंट नॉलेज (TPACK)** (Mishra & Koehler, 2006) - पर आधारित है। UTAUT योग शिक्षण में प्रौद्योगिकी अपनाने को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या करता है, जबकि TPACK योग की विषय-वस्तु, शिक्षण-पद्धति एवं प्रौद्योगिकी के प्रभावी एकीकरण

Samagra Yoga Pedagogy Integration Model (SYPIM)

A four-layer, cyclical framework for integrating yoga pedagogy in early childhood education

Layer 1 — Adhikara-Based Foundational Core

Diagnostic reading of each learner's readiness, temperament & developmental stage (adhikara)

Relational trust (shraddha) and observational, non-exam-based assessment carried over from the Guru-Shishya Parampara, adapted into a structured teacher diagnostic tool

↓

Layer 2 — Modal Delivery Matrix

Selection across Lecture-based / Activity-based (story, play, music) / Technology-based delivery, cross-tabbed with Instructor-centred and Learner-centred orientation

Mapped onto the Panchakosha domains (annamaya, pranamaya, manomaya, vijnanamaya, anandamaya)

↓

Layer 3 — UTAUT-TPACK Adoption & Integration Filter

UTAUT: Performance Expectancy, Effort Expectancy, Social Influence & Facilitating Conditions predict whether a teacher adopts a chosen modality

TPACK ensures the adopted modality is applied meaningfully, preserving yoga's relational and ethical depth rather than mere use

↓

Layer 4 — Panchakosha Outcome & Feedback Loop

Holistic outcomes measured across physical, vital, mental, intellectual & value/bliss domains using a standardised, context-validated tool

Outcomes feed back into Layer 1, recalibrating each learner's adhwikara profile — making the model continuous and developmental

↻ *Continuous feedback loop: Layer 4 outcomes recalibrate Layer 1 (Adhikara profile)*

चित्र 1: समग्र योग शिक्षा एकीकरण मॉडल

को सुनिश्चित करता है (Scherer *et al.*, 2019; Fullan, 2009)। SYPIM इन दोनों ढाँचों को गुरु-शिष्य परंपरा तथा पंचकोश आधारित समग्र विकास दृष्टिकोण के साथ एकीकृत करते हुए भारतीय योग परंपरा के मूल्यों को संरक्षित रखता है तथा समकालीन विद्यालयी शिक्षा के लिए योग को एक प्रभावी, प्रौद्योगिकी-सक्षम एवं शिक्षार्थी-केंद्रित शिक्षण-पद्धति के रूप में प्रस्तुत करता है।

3.1 स्तर 1: अधिकार-आधारित मूल आधार (Layer 1 - Adhikara-Based Foundational Core)

SYPIM का प्रथम स्तर यह निर्धारित करता है कि प्रत्येक शिक्षार्थी की आवश्यकताओं एवं विशेषताओं के अनुसार 'क्या और किसके लिए' पढ़ाया जाना चाहिए। SYPIM का पहला स्तर प्रत्येक बच्चे के अधिकार (Adhikara) अर्थात् उसकी सीखने की तत्परता, क्षमता, स्वभाव तथा पूर्व अनुभवों को समझने पर आधारित है। यह अवधारणा पारंपरिक गुरु-शिष्य परंपरा से प्रेरित है, जिसमें गुरु प्रत्येक शिष्य की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण की योजना बनाता था (Sen *et al.*, 2025)। विद्यालयी संदर्भ में इसे एक संक्षिप्त मूल्यांकन सूची के रूप में अपनाया जा सकता है, जिसे शिक्षक योग कार्यक्रम के प्रारंभ में तथा निर्धारित अंतराल पर भरकर प्रत्येक बच्चे की प्रगति का पुनर्मूल्यांकन करे। इससे शिक्षण अधिक वैयक्तिकृत (Personalised) एवं आवश्यकता-आधारित बनता है तथा अगले स्तर पर उपयुक्त शिक्षण-पद्धति के चयन के लिए आधार तैयार होता है।

3.2 स्तर 2: शिक्षण-मैट्रिक्स (Layer 2 - Modal Delivery Matrix)

SYPIM का द्वितीय स्तर यह निर्धारित करता है कि अधिकार-आधारित मूल्यांकन के आधार पर *'शिक्षण किस प्रकार (How to Teach) संचालित किया जाए'*। अधिकार-आधारित मूल्यांकन के आधार पर शिक्षक उपयुक्त शिक्षण-पद्धति का चयन करते हैं। इस स्तर में व्याख्यान-आधारित, गतिविधि-आधारित तथा प्रौद्योगिकी-आधारित शिक्षण को प्रशिक्षक-केंद्रित अथवा शिक्षार्थी-केंद्रित रूप में लागू किया जा सकता है। प्रत्येक शिक्षण-पद्धति को पंचकोश के उस आयाम से जोड़ा जाता है जिस पर उसका प्रमुख प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, खेल, संगीत एवं शारीरिक गतिविधियाँ मुख्यतः अन्नमय एवं प्राणमय कोश को सुदृढ़ करती हैं, जबकि कहानी, संवाद एवं चिंतन-आधारित गतिविधियाँ मनोमय, विज्ञानमय तथा आनंदमय कोश के विकास में अधिक सहायक होती हैं। यह मैट्रिक्स शिक्षकों को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त शिक्षण-पद्धति का चयन करने के लिए एक व्यवस्थित आधार प्रदान करता है।

3.3 स्तर 3: UTAUT-TPACK अंगीकरण एवं एकीकरण फ़िल्टर (Layer 3 - UTAUT-TPACK Adoption and Integration Filter)

किसी भी शिक्षण-पद्धति की सफलता केवल उसके प्रभाव पर निर्भर नहीं करती, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि शिक्षक उसे कितनी सहजता और प्रभावशीलता से अपनाते हैं। इस स्तर पर चयनित शिक्षण-पद्धति का मूल्यांकन UTAUT मॉडल के आधार पर किया जाता है, जिसमें उपयोगिता, उपयोग में सरलता, सामाजिक समर्थन तथा उपलब्ध संसाधनों जैसे प्रमुख कारकों का परीक्षण किया जाता है (Venkatesh *et al.*, 2003)। इसके साथ TPACK मॉडल यह सुनिश्चित करता है कि शिक्षक विषय-वस्तु, शिक्षण-पद्धति तथा प्रौद्योगिकी के समन्वित उपयोग में सक्षम हों (Mishra & Koehler, 2006)। यदि किसी स्तर पर शिक्षक की तैयारी या संसाधनों में कमी पाई जाती है, तो उसी के अनुरूप प्रशिक्षण एवं सहयोग की योजना बनाई जाती है। इससे योग शिक्षण के प्रभावी कार्यान्वयन तथा शिक्षक-तैयारी से जुड़े शोध अंतराल को कम किया जा सकता है।

3.4 स्तर 4: पंचकोश आधारित परिणाम एवं प्रतिपुष्टि चक्र (Layer 4 - Panchakosha Outcome and Feedback Loop)

अंतिम स्तर में योग शिक्षण के परिणामों का मूल्यांकन पंचकोश के पाँचों आयामों के आधार पर किया जाता है। इसके लिए योग शिक्षा के संदर्भ में विकसित एवं प्रमाणित मूल्यांकन उपकरण का उपयोग प्रस्तावित किया गया है, जिससे केवल सामान्य कल्याण के

बजाय योग-आधारित समग्र विकास का आकलन किया जा सके। इस स्तर की विशेषता इसका प्रतिपुष्टि चक्र (Feedback Loop) है, जिसके अंतर्गत प्राप्त परिणाम पुनः पहले स्तर में भेजे जाते हैं। इससे प्रत्येक बच्चे की अधिकार-प्रोफ़ाइल अद्यतित होती रहती है और उसके अनुसार आगे की शिक्षण-पद्धति में आवश्यक संशोधन किए जा सकते हैं। इस प्रकार SYPIM एक स्थिर मॉडल न होकर निरंतर विकसित होने वाला चक्रीय (Cyclical) मॉडल बन जाता है, जो पारंपरिक योग दर्शन और आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों के प्रभावी एकीकरण का आधार प्रदान करता है।

3.5 SYPIM इन कमियों को कैसे पूरा करता है?

नीचे प्रस्तुत तालिका 1 यह दर्शाती है कि SYPIM का प्रत्येक स्तर उपर्युक्त छह प्रमुख शोध-अंतरालों को किस प्रकार दूर करता है।

तालिका 1

कमी (Gap)	SYPIM स्तर (Layer)	कैसे पूरा होता है
सांदर्भिक (Contextual)	स्तर 1 और 2	अधिकार-आधारित मूल्यांकन (Adhikara Assessment) तथा शिक्षण-मैट्रिक्स (Delivery Matrix) भारतीय विद्यालयों की भाषाई, सांस्कृतिक एवं संसाधन-संबंधी परिस्थितियों को ध्यान में रखने वाला दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।
पद्धतिगत (Methodological)	स्तर 4	सतत प्रतिपुष्टि चक्र (Continuous Feedback Loop) दीर्घकालिक (Longitudinal) एवं पुनरावृत्त (Repeated) मूल्यांकन की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।
तकनीकी (Technological)	स्तर 3 (UTAUT)	UTAUT एवं TPACK आधारित दृष्टिकोण योग-शिक्षा में प्रौद्योगिकी अपनाने (Technology Adoption) का मूल्यांकन शिक्षक-स्वीकृति (Teacher Acceptance), उनकी तकनीकी-शैक्षणिक दक्षता (Technological Pedagogical Competence) तथा उपलब्ध संसाधनों के आधार पर करने का प्रस्ताव करता है।
शिक्षण-एकीकरण (Pedagogical Integration)	स्तर 1 और 2	यह मॉडल पारंपरिक (स्तर 1) एवं आधुनिक (स्तर 2) शिक्षण-पद्धतियों के एकीकृत (Integrated) उपयोग की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।
शिक्षक-तैयारी (Teacher Preparedness)	स्तर 3 (TPACK)	TPACK के माध्यम से शिक्षक की प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान कर लक्षित (Targeted) प्रशिक्षण की दिशा प्रदान करता है।
मानकीकरण (Standardisation)	स्तर 4	पंचकोश आधारित मानकीकृत (Standardised) एवं प्रमाणित (Validated) मूल्यांकन उपकरण का प्रस्ताव प्रस्तुत करता है।

4. सैद्धांतिक प्रस्ताव (Theoretical Propositions)

SYPIM के वैचारिक ढाँचे के आधार पर निम्नलिखित सैद्धांतिक प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए हैं, जिनका परीक्षण भविष्य के अनुभवजन्य (Empirical) अध्ययनों में किया जा सकता है—

- **P1:** यदि योग-सत्र प्रत्येक बच्चे की आवश्यकता (Adhikara Profile) के अनुसार संरचित किए जाएँ, तो सभी बच्चों के लिए समान योग-सत्रों की तुलना में आत्म-नियंत्रण एवं समग्र विकास पर अधिक सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

- **P2:** किसी शिक्षण-पद्धति के निरंतर उपयोग में UTAUT के प्रमुख घटकों - कार्य-प्रदर्शन अपेक्षा (Performance Expectancy) और प्रयास अपेक्षा (Effort Expectancy) - का प्रभाव शिक्षक के TPACK ज्ञान पर निर्भर करेगा। जिन शिक्षकों का TPACK ज्ञान अधिक होगा, वे तकनीक का अधिक प्रभावी शैक्षणिक उपयोग कर सकेंगे।

- **P3:** जिन शिक्षकों में तकनीक के प्रति प्रारंभिक स्वीकृति कम होगी, उनके लिए सहकर्मियों एवं विद्यालय प्रशासन का समर्थन प्रौद्योगिकी अपनाने में अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा (Scherer *et al.*, 2019)।

- **P4:** जो योग कार्यक्रम कहानी, खेल एवं संगीत जैसी गतिविधियों को सतत मार्गदर्शन और अवलोकन के साथ जोड़ेंगे, वे केवल प्रौद्योगिकी-आधारित शिक्षण की तुलना में आनंदमय कोश से जुड़े मूल्यों और कल्याण (Well-being) को अधिक बढ़ावा देंगे।

- **P5:** जो विद्यालय एक शैक्षणिक वर्ष में SYPIM के प्रतिपुष्टि चक्र का नियमित उपयोग करेंगे, उनके विद्यार्थियों का समग्र विकास उन विद्यालयों की तुलना में अधिक होगा, जहाँ योग केवल एक बार कराया जाता है।

5. अनुभवजन्य मूल्यांकन हेतु प्रस्तावित कार्यप्रणाली (Proposed Methodology for Empirical Validation)

SYPIM को इस अध्ययन में एक सैद्धांतिक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसके अनुभवजन्य सत्यापन के लिए आगे विस्तृत शोध की आवश्यकता है। इसके लिए मिश्रित-विधि पर आधारित एक दीर्घकालिक अध्ययन प्रस्तावित किया गया है। इस अध्ययन में भारत के शहरी, अर्ध-शहरी तथा ग्रामीण प्रारंभिक विद्यालयों को शामिल किया जाएगा, जिससे विभिन्न सामाजिक एवं शैक्षिक संदर्भों में मॉडल की उपयोगिता का परीक्षण किया जा सके। प्रारंभिक चरण में शिक्षकों से UTAUT तथा TPACK आधारित प्रश्नावली के माध्यम से जानकारी एकत्र की जाएगी, जबकि प्रत्येक बच्चे की अधिकार-प्रोफ़ाइल (Adhikara Profile) विशेष रूप से विकसित मूल्यांकन सूची के आधार पर निर्धारित की जाएगी। इसके पश्चात, स्तर 2 के अनुसार उपयुक्त योग शिक्षण-पद्धति का चयन कर उसका कार्यान्वयन किया जाएगा। मॉडल की प्रभावशीलता का आकलन पंचकोश आधारित परिणामों के माध्यम से किया जाएगा। इसके लिए शिक्षक अवलोकन, अभिभावकों की प्रतिक्रिया तथा जहाँ संभव हो, शारीरिक संकेतकों (Physiological Indicators) (Telles *et al.*, 2013) का उपयोग करते हुए पूरे शैक्षणिक वर्ष में तीन चरणों में आँकड़े एकत्र किए जाएँगे। इसके साथ ही, शिक्षकों के गुणात्मक साक्षात्कार भी आयोजित किए जाएँगे, जिससे तकनीक अपनाने, शिक्षण-पद्धति तथा कार्यान्वयन से जुड़े उनके अनुभवों को समझा जा सके। अंततः, SYPIM के चारों स्तरों को अपनाने वाले विद्यालयों की तुलना पारंपरिक योग शिक्षण अपनाने वाले विद्यालयों से की जाएगी, जिससे मॉडल की प्रभावशीलता तथा प्रस्तावित सैद्धांतिक प्रस्तावों का अनुभवजन्य परीक्षण किया जा सके।

6. निष्कर्ष, निहितार्थ, सीमाएँ एवं भविष्य की दिशा

समग्र रूप से यह अध्ययन दर्शाता है कि योग शिक्षा गुरु-शिष्य परंपरा से विकसित होकर आधुनिक गतिविधि एवं प्रौद्योगिकी-आधारित शिक्षण-पद्धतियों तक पहुँची है। साहित्य समीक्षा से स्पष्ट हुआ कि योग बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक-भावनात्मक तथा मूल्य-आधारित विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, किन्तु शिक्षण-एकीकरण, शिक्षक-तैयारी, तकनीकी उपयोग तथा मानकीकरण से जुड़े

शोध-अंतराल अभी भी विद्यमान हैं। इन्हीं अंतरालों को दूर करने हेतु प्रस्तुत समग्र योग शिक्षा एकीकरण मॉडल (SYPIM) पारंपरिक भारतीय ज्ञान, पंचकोश, UTAUT तथा TPACK का समन्वित ढाँचा प्रस्तुत करता है। इसके निहितार्थ नीति, पाठ्यचर्या विकास, शिक्षक-प्रशिक्षण तथा विद्यालयी प्रशासन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। यह मॉडल राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप योग, माइंडफुलनेस एवं समग्र विकास को व्यवहार में लागू करने, शिक्षण-मैट्रिक्स के माध्यम से योग गतिविधियों को पंचकोश आधारित विकास से जोड़ने तथा UTAUT-TPACK के माध्यम से शिक्षकों की प्रशिक्षण एवं तकनीकी आवश्यकताओं की पहचान करने में सहायक हो सकता है।

यह अध्ययन मुख्यतः सैद्धांतिक विश्लेषण पर आधारित है, इसलिए SYPIM का अनुभवजन्य सत्यापन तथा अधिकार एवं पंचकोश आधारित मूल्यांकन उपकरणों की विश्वसनीयता और वैधता का परीक्षण अभी अपेक्षित है। भविष्य में इस मॉडल का मूल्यांकन विभिन्न राज्यों, विद्यालयी संदर्भों तथा दीर्घकालिक अध्ययनों के साथ-साथ AI आधारित योग शिक्षण, अनुकूलित शिक्षण-पद्धतियों, शिक्षक-प्रशिक्षण एवं समावेशी शिक्षा में किया जा सकता है। यदि इसकी प्रभावशीलता प्रमाणित होती है, तो SYPIM भारतीय प्रारंभिक शिक्षा में योग को साक्ष्य-आधारित, समग्र एवं मानकीकृत शिक्षण-पद्धति के रूप में स्थापित करने तथा शिक्षक-प्रशिक्षण, पाठ्यचर्या, मूल्यांकन प्रणाली एवं शिक्षा-नीति को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

संदर्भ

1. Baek, J. J., Saxena, K., Bernstein, B., & Zakers, A. (2021). See one, do one, teach one: Yoga for schools, individuals, and group practice. Journal of the American Academy of Child & Adolescent Psychiatry. https://doi.org/10.1016/j.jaac.2021.07.790
2. Behl, M., & Pattiaratchi, C. (2023). Relevance of the guru-shishya parampara to modern-day mentorship. Oceanography, 36(1), 74–75.
3. Borah, H., Mondal, K. K., & Boral, K. (2025). Yoga and mindfulness interventions in educational contexts: Evidence from experimental studies and future research directions. National Journal of Education, 23(2).
4. Butzer, B., Bury, D., Telles, S., & Khalsa, S. B. S. (2016). Implementing yoga within the school curriculum: A scientific rationale for improving social-emotional learning and positive student outcomes. Journal of Children's Services, 11(1), 3–24.
5. Das, D. G. (2025). The Guru-Śiṣya Paramparā: Understanding the teacher-student tradition. NBPA Journal for Arts, Humanities & Social Sciences, 1(3), 28–44. https://doi.org/10.65842/nbpa.v1.i3.005
6. Dowarah, C., Chaliha, A., & Bora, P. (2025). Holistic development through yoga and mindfulness: Insights from the NEP 2020. International Journal for Multidisciplinary Research, 8(7).
7. Ferreira-Vorkapic, C., Feitoza, J. M., Marchioro, M., Simões, J. F. F. L., Kozasa, E., & Telles, S. (2015). Are there benefits from teaching yoga at schools? A systematic review of randomized controlled trials of yoga-based interventions. Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine, 2015, Article 345835.
8. Fu, D., & Wang, J. (2022). Design and application of yoga intelligent teaching platform based on Internet of Things. Mathematical Problems in Engineering, 2022, Article 8407408.
9. Fullan, M. (Ed.). (2009). The challenge of change: Start school improvement now! Corwin Press.
10. Halsey, K. (2012). Macaulay's children: Thomas Babington Macaulay and the

imperialism of reading in India. In Postcolonial audiences (pp. 184–195). Routledge.

11. Ibrahim, I., Mansor, N. H., & Bidin, J. (2022). Factors affecting mental illness and social stress in students using fuzzy TOPSIS. Journal of Computing Research and Innovation, 7(2), 88–100.

12. Kaur, M. S., & Ahluwalia, P. S. (2025). The role of Guru-Shishya tradition in preserving authentic yogic knowledge. Sanatanodaya, 62–76.

13. Manimekalai Narayanan, M., Selvam, A. S., & Shanmugapriya, M. (2025). Yoga National Education Policy 2020 (NEP) through yoga teaching modules. Paripex – Indian Journal of Research, 14(1), 5. https://doi.org/10.36106/paripex

14. Martin, B., Peck, B., & Terry, D. (2024). Yoga as a contemplative practice and its contribution to participatory self-knowledge and student retention: A scoping review of the first-year undergraduate student transition. Journal of Contemplative Inquiry, 11(1), 1–22.

15. Mishra, P., & Koehler, M. J. (2006). Technological pedagogical content knowledge: A framework for teacher knowledge. Teachers College Record, 108(6), 1017–1054.

16. National Council of Educational Research and Training. (2022). National curriculum framework for foundational stage (NCF-FS). Ministry of Education, Government of India.

17. Scherer, R., Siddiq, F., & Tondeur, J. (2019). The technology acceptance model (TAM): A meta-analytic structural equation modeling approach to explaining teachers' adoption of digital technology in education. Computers & Education, 128, 13–35.

18. Sen, S., Barman, M., Majumdar, S., Bala, A., & Das, T. (2025). Holistic approaches to learning inspired by Gurukul system and its present importance. Archives.

19. Sevimli-Celik, S. (2026). Yoga storytelling as an active learning approach: Insights from early childhood classroom practice. Early Childhood Education Journal, 1–13.

20. Singleton, M. (2010). Yoga body: The origins of modern postural practice. Oxford University Press.

21 Stapp, A. C., & Wolff, K. (2019). Young children's experiences with yoga in an early childhood setting. Early Child Development and Care, 189(9), 1397–1410. https://doi.org/10.1080/03004430.2017.1385607

22. Subramanian, R. R., Mohan, H., Duggirala, D., & Tangirala, S. (2023). Miniature crane prototype: A novel approach for recognizing yoga postures to treat autistic children. Procedia Computer Science, 218, 1805–1814.

23. Telles, S., Singh, N., Bhardwaj, A. K., Kumar, A., & Balkrishna, A. (2013). Effect of yoga or physical exercise on physical, cognitive and emotional measures in children: A randomized controlled trial. Child and Adolescent Psychiatry and Mental Health, 7(1), Article 37.

24. Venkatesh, V., Morris, M. G., Davis, G. B., & Davis, F. D. (2003). User acceptance of information technology: Toward a unified view. MIS Quarterly, 27(3), 425–478.

25. Wang, J. (2024). Research on the innovative application and effectiveness of AI intelligence in intelligent assisted teaching system for university yoga classroom. Higher Education, 1(3), 64–68.

काली अदरक की जड़ की शक्ति (कैम्फेरिया पार्विफ्लोरा): इसके फाइटोकेमिस्ट्री, बायोएक्टिविटी का एक समग्र अवलोकन

माधुरी गुप्ता[1]
डॉ. शिवानी चतुर्वेदी[2]

[1]यूनाइटेड कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एंड रिसर्च, प्रयागराज
[2]रसायन विज्ञान विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल: shivani.d123@gmail.com

सारांश

कैम्फेरिया पार्विफ्लोरा काली अदरक (के.पी.), एक महत्त्वपूर्ण औषधीय पौधा है। इस व्यापक समीक्षा लेख में के.पी. की बहुआयामी पोषक क्षमता और इसकी जटिल रासायनिक संरचना की वर्तमान वैज्ञानिक समझ को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया है। हमारा शोध 5,7-डाइमेथॉक्सीफ्लेवोन (डी.एम.एफ.) और 5,7,4'-ट्राइमेथॉक्सीफ्लेवोन (टी.एम.एफ.) जैसे विशिष्ट पॉलीमेथॉक्सीफ्लेवोन (पी.एम.एफ.) का गहन अध्ययन करता है और उनकी व्यापक औषधीय गतिविधियों के अंतर्निहित आणविक तंत्रों को स्पष्ट करता है। हम पूर्व वैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से प्राप्त प्रमाणों का विस्तृत वर्णन करते हैं जो के.पी. के शक्तिशाली सूजनरोधी, एंटीऑक्सीडेंट, यौन स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले, ऊर्जा बढ़ाने वाले, पाचन क्षमता नियामक, कैंसररोधी, तंत्रिका सुरक्षात्मक और हृदय संबंधी प्रभावों आदि को प्रदर्शित करते हैं। इसके अलावा, यह समीक्षा लेख इस बात पर प्रकाश डालता है, कि पी.एम.एफ. की अद्वितीय संरचनात्मक विशेषताएं उनकी बढ़ी हुई जैव उपलब्धता और चिकित्सीय प्रभावकारिता में कैसे उपयोगी साबित होती हैं।

यह समीक्षा लेख अपनी विशिष्टता के लिहाज़ से महत्त्वपूर्ण है, जिसमें पादप रसायन विज्ञान (निष्कर्षण और पृथक्करण तकनीक), औषध विज्ञान और कृषि विज्ञान जैसे अक्सर अलग-अलग माने जाने वाले क्षेत्रों को एकीकृत किया गया है। यह काली अदरक के प्रकंदों में प्रमुख पी.एम.एफ. और अन्य महत्त्वपूर्ण जैवसक्रिय यौगिकों के जैवसंश्लेषण और संचय पर खेती के मापदंडों के प्रभाव का समग्र परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है। इन जटिल जीनोटाइप-पर्यावरण अंतःक्रियाओं को समझना बढ़ती वैश्विक मांग को पूरा करने के लिए अनुकूलित और टिकाऊ

उत्पादन विधियों को विकसित करने हेतु भी आवश्यक है जिससे कार्यात्मक खाद्य पदार्थों, पोषक तत्वों और औषधियों के एक मूल्यवान स्रोत के रूप में काली अदरक की निरंतर गुणवत्ता और उच्च सांद्रता सुनिश्चित हो सके। यह समीक्षा पत्र काली अदरक की चिकित्सीय क्षमता को पूरी तरह से साकार करने के लिए, आगे और भी गहन शोध की आवश्यकता पर बल देता है।

मुख्य शब्द: काली अदरक; पॉलीमेथॉक्सीफ्लेवोन; सुगन्धित तेल; कृत्रिम परिवेशीय संस्कृति

1. परिचय

के. पार्विफ्लोरा (वॉल. एक्स बेकर), जिसे काली अदरक या थाई जिनसेंग के नाम से भी जाना जाता है, एक महत्त्वपूर्ण प्रजाति है। *जिंजिबेरेसी* अदरक परिवार का एक पौधा है। यह अपने विशिष्ट गहरे बैंगनी रंग के प्रकंदों तथा महत्त्वपूर्ण औषधीय गुणों के लिए प्रसिद्ध है।[1,2] यह म्यांमार, कंबोडिया, मलेशिया, सुमात्रा व बोर्नियो जैसे दक्षिणपूर्व एशियाई देशों में व्यापक रूप से पाया जाता है और थाईलैंड में नियमित रूप से एक पौष्टिक फसल तथा हर्बल दवा के रूप में उपयोग किया जाता है।[2] भारत में, इसकी उपस्थिति विशेष रूप से पूर्वोत्तर राज्यों असम, मणिपुर व नागालैंड में दर्ज की गई है।[3] *के. पार्विफ्लोरा* एक बारहमासी पौधा है जिसके छोटे, मांसल काले प्रकंद होते हैं। इसमें कंदयुक्त जड़ें, सीधे पत्ते और किनारों पर बैंगनी रंग वाले छोटे सफेद फूल होते हैं। यह 30 डिग्री सेल्सियस तापमान तक नम और आर्द्र वातावरण में आदर्श रूप से पनपता है।

परंपरागत रूप से, थाईलैंड की स्थानीय आबादी काली अदरक का उपयोग इसके व्यापक स्वास्थ्यवर्धक गुणों के लिए करती रही है, जिसमें पेट दर्द और पेप्टिक अल्सर का उपचार भी शामिल है। हाल ही के शोध में काली अदरक के महत्त्वपूर्ण चिकित्सीय गुणों का व्यापक रूप से अध्ययन किया गया है। कई बीमारियों के लिए[5] इसके गहरे बैंगनी रंग के प्रकंद विविध जैवसक्रिय यौगिकों से भरपूर होते हैं, विशेष रूप से उनमें फेनोलिक्स, पॉलीमेथॉक्सीफ्लेवोन (पी.एम.एफ.), एंथोसायनिन और लिपोफिलिक एंटीऑक्सिडेंट आदि शामिल हैं।[6] प्रकंदों को सूजन और ऑक्सीडेटिव तनाव पर उनके महत्त्वपूर्ण प्रभावों के लिए जाना जाता है। इन्हें लंबे समय से खाद्य पदार्थों में स्वाद बढ़ाने और चिकित्सीय घटक के रूप में महत्त्व दिया जाता रहा है। प्रमुख रूप से पी.एम.एफ. पदार्थ, जैसे कि 5,7-डाइमेथॉक्सीफ्लेवोन (डी. एम.एफ.), 5,7,4'-ट्राइमेथॉक्सीफ्लेवोन (टी.एम.एफ.) और 3,5,7,3',4' पेंटामेथॉक्सीफ्लेवोन, मुख्य फाइटोमॉलिक्यूल हैं जो स्वास्थ्य लाभों के लिए महत्त्वपूर्ण जैविक गतिविधियों में आवश्यक भूमिका निभाते हैं।[7,8,5] काली अदरक में प्रभावी रूप से शक्तिशाली सूजनरोधी गुण होते हैं, जो जोड़ों के दर्द और गठिया के इलाज करने की क्षमता को दर्शाते हैं, और यह एक उल्लेखनीय ऊर्जावर्धक के रूप में कार्य करती है।[9] इसमें एंटीऑक्सीडेंट गुण होते हैं।

यह प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है[10,11] वैज्ञानिक अनुसंधान से यह भी पता चलता है कि यह हृदय सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[12] यह मोटापा प्रबंधन[13,14] कैंसर की रोकथाम[15] व कोलेजन तथा इलास्टिन संश्लेषण को बढ़ाकर त्वचा के स्वास्थ्य को बेहतर करता है।[15,16,17] इसके व्यापक पारंपरिक अनुप्रयोगों के बावजूद, जटिल जैव रासायनिक प्रक्रियाओं, आणविक अंतःक्रियाओं, सुरक्षा प्रोफाइल की गहन जांच करने और इसके अनेक स्वास्थ्य प्रभावों की पुष्टि करने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान अभी भी जारी है। इस समीक्षा का उद्देश्य काली अदरक के फाइटोकेमिकल घटकों, उनके पृथक्करण और निष्कर्षण के लिए उपयोग की जाने वाली विधियों, पौधे के जैवसक्रिय प्रोफाइल पर खेती संबंधी अध्ययनों के प्रभावों के बारे में जानकारी की वर्तमान स्थिति पर विस्तृत समझ प्रदान करना है। पोषक औषधि के रूप में के. पार्विफ्लोरा की क्षमता को (चित्र 1) में दर्शाया गया है।

2. पादप रासायनिक विश्लेषण

के. पार्विफ्लोरा (वॉल एक्स बेकर) (काली अदरक) एक अत्यंत उपयोगी औषधीय पौधा है, जिसे विशेष रूप से पारंपरिक थाई चिकित्सा में इसे अत्यधिक

प्रयोग में लाया जाता रहा है। चिकित्सीय प्रभावकारिता, सीधे तौर पर इसके असाधारण रूप से समृद्ध और विविध फाइटोकेमिकल प्रोफाइल के कारण है। *के. पार्विफ्लोरा* जैवसक्रिय यौगिकों का खजाना हैं, जिनमें मुख्य रूप से पॉलीमेथॉक्सीफ्लेवोन (PMF) पाए जाते हैं, साथ ही अन्य फेनोलिक यौगिक (एंथोसायनिन सहित), फाइटोस्टेरॉल और एक विशिष्ट सुगन्धित तेल संरचना भी महत्त्वपूर्ण मात्रा में मौजूद होती है। फाइटोकेमिकल्स का यह जटिल मिश्रण फार्मास्युटिकल और न्यूट्रास्युटिकल क्षेत्रों में इनके अनुप्रयोगों को आधार प्रदान करता है।

2.1. पॉलीमेथॉक्सीफ्लेवोन्स (पी.एम.एफ.): प्रमुख जैवसक्रिय वर्ग

पॉलीमेथॉक्सीफ्लेवोन सबसे विशिष्ट और औषधीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण यौगिकों का वर्ग है। *के. पार्विफ्लोरा* प्रकंद की प्रमुख विशेषता उच्च स्तर का मेथॉक्सिलेशन है, जो इनकी लिपोफिलिसिटी को बढ़ाता है। महत्त्वपूर्ण रूप से, इनके हाइड्रॉक्सिलेटेड समकक्षों की तुलना में बेहतर जैव उपलब्धता प्रदान करता है, जिससे इनकी चिकित्सीय क्षमता में वृद्धि होती है। लगातार और व्यापक रूप से अध्ययन किए गए प्रमुख पी.एम.एफ. में शामिल हैं:

5,7-डाइमेथॉक्सीफ्लेवोन (डी.एम.एफ.): इस यौगिक को अक्सर एक प्रमुख घटक और प्रमाणीकरण के लिए एक महत्त्वपूर्ण फाइटोकेमिकल मार्कर के रूप में उद्धृत किया जाता है। *के. पार्विफ्लोरा* 5,7,4'-ट्राइमेथॉक्सीफ्लेवोन (टी.एम.एफ.) एक अन्य प्रचुर मात्रा में पाया जाने वाला पी.एम.एफ. है, जो अक्सर प्रभावकारिता अध्ययनों का केंद्रबिंदु होता है। वहीं, 3,5,7,3',4'-पेंटामेथॉक्सीफ्लेवोन विभिन्न अर्क में एक प्रमुख घटक के रूप में पहचाना जाता है, यह पी.एम.एफ. काली अदरक की जैविक गतिविधियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[27,24,28,17,5,1]

इनके अलावा, 3,5,7-ट्राइमेथॉक्सीफ्लेवोन, 5-हाइड्रॉक्सी-7,4'-डाइमेथॉक्सीफ्लेवोन, 5-हाइड्रॉक्सी-3,7,3',4'-टेट्रामेथॉक्सीफ्लेवोन और 3,5,7,4'-टेट्रामेथॉक्सीफ्लेवोन जैसे अन्य पी.एम.एफ. के एक समूह का भी गहनता से अध्ययन किया गया है।[29,5] यह स्वीकार करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि विशिष्ट पी.एम एफ. प्रोफ़ाइल और इसकी सटीक सांद्रता भौगोलिक उत्पत्ति, खेती की पद्धतियों और निष्कर्षण विधियों के आधार पर काफी भिन्न हो सकती है, जो सुसंगत जैव सक्रियता के लिए मानकीकृत दृष्टिकोणों के महत्त्व को रेखांकित करती है।[24]

2.2. सुगंधित तेल और टेरपेनोइड्स: चिकित्सीय प्रभाव वाले सुगंधित वाष्पशील पदार्थ

के. पार्विफ्लोरा प्रकंदों की विशेषता इसकी अनोखी, तेज गंध व तेल है, जिसमें जैविक रूप से विशेष रासायनिक बनावट वाले सक्रिय वाष्पशील घटक भी मौजूद होते हैं।[30] उन्नत गैस क्रोमेटोग्राफी-मास स्पेक्ट्रोमेट्री (जी.सी.-एम.एस.) विश्लेषणों द्वारा कई टेरपेनोइड्स की सावधानीपूर्वक पहचान की गई है, जिन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है:

मोनोटर्पीन: प्रमुख मोनोटर्पीन की पहचान की गई इनमें α-पिनिन, β-पिनिन, कैम्फीन, बोर्नियोल और लिनालूल शामिल हैं।[31,27,28] बोर्निल एसीटेट, α-मिथाइल-बेंजीनप्रोपेनॉल, डी-लिमोनेन और कपूर जैसे सूक्ष्म लेकिन योगदान देने वाले यौगिक भी, सुगन्धित तेल के प्रोफाइल के अभिन्न अंग हैं।

सेस्क्यूटरपेन्स: प्रमुख सेस्क्यूटरपेन्स में α-कोपेन, जर्मेक्रेन डी, β-इलेमीन, डौका-5,8-डायन और ई-कैरियोफिलीन शामिल हैं[32,28] इन्ही वाष्पशील यौगिकों से अक्सर सूजनरोधी, रोगाणुरोधी और एंटीऑक्सीडेंट गुण जुड़े होते हैं।[33]

3. बायोएक्टिव क्षमता का व्यापक दायरा: प्रीक्लिनिकल और क्लिनिकल दृष्टिकोण

काली अदरक (*के. पार्विफ्लोरा*) के अर्क प्रीक्लिनिकल अध्ययनों में व्यापक बायोएक्टिव क्षमता रखते हैं, जिसमें त्वचा को गोरा करना, मुहांसों को नियंत्रित

करना, कैंसर-रोधी गतिविधि, मेटाबॉलिक लाभ, व्यायाम क्षमता बढ़ाना और UV किरणों से सुरक्षा भी शामिल हैं। हालांकि सबसे ठोस डेटा अक्सर जानवरों के मॉडल से मिलता है, लेकिन इंसानों पर किए गए परीक्षण धीरे-धीरे इसकी शुरुआती पुष्टि करते हैं। यह इस बात पर ज़ोर देता है कि व्यापक क्लिनिकल उपयोग की दिशा में आगे बढ़ने के लिए इसके फ़ॉर्मूलेशन, सही खुराक और सुरक्षा पर लगातार शोध की आवश्यकता है।

3.1 त्वचा का स्वास्थ्य और एंटी-एजिंग

Sitthichai और उनके साथियों द्वारा किए गए एक अध्ययन[24] में, 0.02% एथिल एसीटेट अर्क वाली जैल-क्रीम का उपयोग करने वाले व्यक्तियों में मुहांसों को रोकने की महत्त्वपूर्ण प्रभावशीलता देखी गई। चार और छह सप्ताह बाद, मुहांसों की गंभीरता का सूचकांक (ASI) क्रमशः 36.52% और 52.20% कम हो गया और इसके साथ ही त्वचा की लालिमा (erythema) में भी कमी आई (18.19% और 18.54%)। ये परिणाम बताते हैं, कि *के. पार्विफ्लोरा* में सूजन-रोधी और मुहांसा-रोधी उत्पादों के लिए एक शक्तिशाली प्राकृतिक घटक बनने की क्षमता है।

3.2 व्यायाम प्रदर्शन और थकान-रोधी गुण

व्यायाम प्रदर्शन पर के.पी. के प्रभाव देखने के लिए किए गए शुरुआती अध्ययनों के परिणाम मिले-जुले रहे हैं। Wasuntarawat और उनके साथियों[26] ने कॉलेज के विद्यार्थियों पर एक रैंडमाइज़्ड, डबल-ब्लाइंड, क्रॉसओवर अध्ययन किया। इसमें उन्होंने पाया कि स्प्रिंट साइकिलिंग प्रदर्शन (पीक/औसत पावर आउटपुट, थकान और रक्त लैक्टेट) या सबमैक्सिमल साइकिलिंग के दौरान पूरी तरह थकने वाले समय पर, के.पी. का कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। हालांकि, Wattanarthorn और उनके साथियों[26] ने बताया कि 8 हफ़्तों तक के.पी. अर्क (25 या 90 mg/दिन) का सेवन करने से स्वस्थ बुज़ुर्ग व्यक्तियों में स्वास्थ्य से जुड़े शारीरिक फिटनेस के मापदंडों (30-सेकंड चेयर स्टैंड, हाथ की पकड़, 6-मिनट की सैर, टैंडम टेस्ट) में सुधार और ऑक्सीडेटिव तनाव कम हुआ। Promthep और उनके साथियों ने पाया कि किशोर फ़ुटबॉल खिलाड़ियों (n=60) में 12 हफ़्तों तक के.पी. अर्क (DMF 2.1%, TMF 3.1%, PMF 2.3%) का मौखिक सेवन करने के बाद उनके दाएं और बाएं हाथ से पकड़ने की ताकत में वृद्धि हुई। इसी तरह, Sripanidkulchai और अन्य[28] ने बताया कि के.पी. अर्क लेने वाले किशोर लड़कों (n=194) में दाहिने हाथ से पकड़ने की ताकत, पीठ, पैरों की ताकत और VO2 max में बढ़ोतरी हुई, साथ ही 50-मीटर स्प्रिंट का समय भी कम हो गया।

3.3 मेटाबॉलिक फायदे और वज़न प्रबंधन

Yoshino और अन्य[29] ने ज़्यादा वज़न वाले जापानी वयस्कों (n=80) पर एक रैंडमाइज़्ड, डबल-ब्लाइंड, प्लेसबो-नियंत्रित अध्ययन किया और पाया कि 12 हफ़्तों तक के.पी. से प्राप्त 12 mg शुद्ध पॉलीमेथोक्सीफ्लेवोन का रोज़ाना सेवन करने से विसरल फैट (पेट के अंदर की चर्बी) में काफ़ी कमी आई।

3.4 दर्द से राहत और सूजन-रोधी फ़ॉर्मूलेशन

Tuntiyasawasdikul और सहयोगियों[30] का उद्देश्य दर्द निवारक और सूजन-रोधी गुणों के लिए ब्लैक जिंजर के अर्क को वाष्पशील तेलों के साथ मिलाकर ट्रांसडर्मल मैट्रिक्स-पैच फ़ॉर्मूलेशन विकसित करना था। उनके निष्कर्षों से पता चला, कि ये हर्बल पैच ट्रांसडर्मल उपयोग के लिए प्रभावी थे। इन्होंने त्वचा में बिना किसी जलन के दर्द की तीव्रता को कम किया और दर्द सहने की क्षमता को बढ़ाया, जो दर्द से राहत के लिए एक नए विकल्प का सुझाव देता है।

3.5 सामान्य स्वास्थ्य और तनाव

Eungpinichpong और साथियों[31] ने के.पी. एक्सट्रैक्ट कैप्सूल के साथ एक रैंडमाइज़्ड कंट्रोल्ड ट्रायल (n=80 स्वस्थ स्वयंसेवक, 24-46 वर्ष) किया, लेकिन उन्हें तनाव के पैमानों/सूचकांक, शारीरिक या जैव-रासायनिक निष्कर्षों में कोई खास बदलाव नहीं

मिला। इससे पता चलता है, कि जहाँ के.पी. के व्यापक लाभ हैं, वहीं सामान्य तनाव संकेतकों पर इसके सीधे प्रभाव के लिए जाँच, या अलग तरह के अध्ययन करने की ज़रूरत है।

तालिका – 1 : काली अदरक की एंटी माइक्रोबियल क्षमता

सूची सं	पदार्थ	जीवाणु	कार्य प्रणाली	संदर्भ
1	जिंजर तेल	*Fusarium verticil-lioides*	Ergosterol घटना	Garcia *et al.*, 2013
2	जिंजरनॉन A व शोगल	*Pseudomonas aerag-inosa*	जीवाणु की कोशिका आवरण को खंडित करता है।	Chakotiya *et al.*, 2017
3	जिंजर सत	कोशिकाओं और A 549 ह्यूमन कार्सिनोमा कोशिका के साथ HRSV	वायरस का जुड़ना अवरुद्ध करता है।	Chang *et al.*, 2013

4. निष्कर्ष और भविष्य की संभावनाएं

के. पार्विफ्लोरा (के.पी.) निस्संदेह एक फाइटो-केमिकल (पादप-रसायन) से भरपूर पौधा है, जिसकी उल्लेखनीय और विविध जैविक गतिविधियां, मुख्य रूप से इसके पॉलीमेथोक्सीफ्लेवोन्स (PMFs) के अद्वितीय प्रोफाइल द्वारा संचालित होती हैं। *के. पार्विफ्लोरा* की बहुआयामी जैव-औषधीय भूमिकाओं के समर्थन में व्यापक प्रीक्लिनिकल प्रमाण उपलब्ध हैं। *के. पार्विफ्लोरा* में ऊर्जा बढ़ाने और प्राकृतिक कामोत्तेजक के रूप में प्रभावी होने के साथ-साथ शक्तिशाली सूजन-रोधी एवं एंटीऑक्सीडेंट गुण पाए जाते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण चयापचय नियामक, आशाजनक न्यूरोप्रोटेक्टिव यौगिक है और हृदय स्वास्थ्य के लिए भी उपयोगी माना जाता है। इन व्यापक प्रभावों के पीछे की प्रक्रिया अब तेजी से स्पष्ट हो रही हैं, जिनमें मुख्य रूप से AMPK का सक्रियण, PDE5 का अवरोधन, Nrf2 मार्ग का सक्रियण तथा विभिन्न सूजन-संबंधी प्रक्रियाओं का प्रभावी नियमन शामिल है। हालांकि क्लिनिकल अध्ययनों का दायरा अभी भी विकसित हो रहा है। लेकिन उपलब्ध प्रारंभिक परिणाम प्री-क्लिनिकल अध्ययनों में सामने आए सकारात्मक प्रभावों की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं, विशेषकर शारीरिक प्रदर्शन, पुरुष यौन स्वास्थ्य और चयापचय संबंधी मापदंडों के क्षेत्र में। PMFs के अद्वितीय मेथोक्सीलेशन पैटर्न उनकी बढ़ी हुई चयापचय स्थिरता और जैव-उपलब्धता में योगदान करते हैं, जिससे वे दवा की खोज और न्यूट्रास्यूटिकल विकास के लिए आशाजनक 'लीड यौगिकों' के रूप में स्थापित होते हैं। संक्षेप में, *के. पार्विफ्लोरा* एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन के रूप में उभर रहा है, जिसमें न्यूट्रास्यूटिकल क्षमता है और जिसके प्रभावों के समर्थन में प्रमाणों का मजबूत एवं बढ़ता आधार मौजूद है।

उत्साहजनक निष्कर्षों के बावजूद, *के. पार्विफ्लोरा* के पारंपरिक उपयोगों को पूरी तरह से साक्ष्य-आधारित न्यूट्रास्यूटिकल और फार्मास्युटिकल परिणामों में बदलने के लिए भविष्य के शोध हेतु महत्त्वपूर्ण संभावनाएं मौजूद हैं, परंतु उनकी कई सीमाएं भी हैं। इनमें कम संख्या में नमूनों की उपलब्धता, अध्ययन के लिए कम अवधि और प्रतिभागियों की विविध जनसांख्यिकी की कमी कई मौजूदा क्लिनिकल अध्ययनों को सीमित कर देती है। इसलिए, अच्छे स्वास्थ्य परिणामों के लिए के.पी. के असर की पुष्टि करने, आवश्यक खुराक की मात्रा निर्धारित करने और विभिन्न आबादी समूहों में दीर्घकालिक सुरक्षा का पूरी तरह से आकलन करने के लिए बड़े, सुव्यवस्थित, बहु-केंद्रित, प्लेसबो-नियंत्रित और दीर्घकालिक क्लिनिकल परीक्षण अनिवार्य हैं। अध्ययनों और व्यावसायिक उत्पादों में असर और सुरक्षा में एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए, भविष्य के शोध को के.पी. के अर्क

(extracts) के लिए सुदृढ़ और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनुमोदित मानकीकरण तकनीकों को विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। ये प्रोटोकॉल प्रमुख PMFs की सटीक मात्रा निर्धारण पर आधारित होने चाहिए। साथ ही, जैव-उपलब्धता बढ़ाने की नई रणनीतियों - जैसे कि उन्नत नैनो-फॉर्मूलेशन या फॉस्फोलिपिड कॉम्प्लेक्स - की जांच करना भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ताकि कुछ PMFs की कम मौखिक जैव-उपलब्धता की समस्या को दूर किया जा सके और शरीर में उनके वितरण (systemic delivery) को अनुकूलित किया जा सके। प्रभावशीलता से परे, PMFs के सटीक आणविक और कोशिकीय तंत्रों को सीधे मानवीय शारीरिक संदर्भों में समझना अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ ही, साइटोक्रोम P450 एंजाइमों और P-ग्लाइकोप्रोटीन से जुड़ी संभावित दवा-जड़ी-बूटी परस्पर क्रियाओं की गहन जाँच भी ज़रूरी है, जो सुरक्षित रहते हुए एक साथ उपयोग के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इसके अलावा, केवल अलग-थलग यौगिकों पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, अदरक के कच्चे अर्क में मौजूद विविध फाइटोकेमिकल्स के सहक्रियात्मक प्रभावों की पड़ताल करने से इसकी पारंपरिक प्रभावशीलता की समग्र समझ प्राप्त होगी। *के. पार्विफ्लोरा* के स्वास्थ्य लाभों को पूरी तरह से समझने और उनका उपयोग करने, साक्ष्य-आधारित संस्तुति, तथा मानवीय स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देने में इसके व्यापक अनुप्रयोग को सुगम बनाने के लिए निरंतर और सुदृढ़ प्रीक्लिनिकल तथा क्लिनिकल अनुसंधान अनिवार्य होगा।

संदर्भ

1. Chew, S.C. and Nyam, K.L. Black ginger (*Kaempferia parviflora*): A source of functional ingredient for food, nutraceutical and pharmaceutical applications. *Food Chem. Adv.* 2025, 100980.
2. Chen, D., Li, H., Li, W., Feng, S. and Deng, D. *Kaempferia parviflora* and its methoxyflavones: Chemistry and biological activities. *Evid. Based Complement. Alternat. Med.*2018, 2018(1), 4057456.
3. Rahman, H., Karuppaiyan, R., Kishore, K. and Denzongpa, R. Traditional practices of ginger cultivation in Northeast India. Indian *J. Tradit. Knowl.* 2009, 8(1), 23-28.
4. Aidiel, M.M., Maisarah, A.M., Khalid, K., Ramli, N.N., Tang, S.G.H. and Adam, S.H. Polymethoxyflavones transcends expectation, a prominent flavonoid subclass from *Kaempferia parviflora*: A critical review. *Arab. J. Chem.* 2024a, `17(1), 105364
5. Sasikumar, B. (2005). Genetic resources of Curcuma: diversity, characterization and utilization. *Plant Genetic Resources*, *3*(2), 230-251.
6. Lee, S., Jang, T., Kim, K.H. and Kang, K.S. Improvement of damage in human dermal fibroblasts by 3, 5, 7-trimethoxyflavone from black ginger (*Kaempferia parviflora*). *Antioxidants.* 2022, 11(2), 425.
7. Klinngam, W., Rungkamoltip, P., Thongin, S., Joothamongkhon, J., Khumkhrong, P., Khongkow, M., Namdee, K., Tepaamorndech, S., Chaikul, P., Kanlayavattanakul, M. and Lourith, N. Polymethoxyflavones from *Kaempferia parviflora* ameliorate skin aging in primary human dermal fibroblasts and ex vivo human skin. *Biomed. Pharmacother.* 2022, 145, 112461.
8. Elshamy, A.I., Mohamed, T.A., Essa, A.F., Abd-El Gawad, A.M., Alqahtani, A.S., Shahat, A.A., Yoneyama, T., Farrag, A.R.H.,

Noji, M., El-Seedi, H.R. and Umeyama, A. Recent advances in *Kaempferia* phytochemistry and biological activity: A comprehensive review. *Nutrients.* 2019, 11(10), 2396.

9. Asamenew, G., Kim, H.W., Lee, M.K., Lee, S.H., Kim, Y.J., Cha, Y.S., Yoo, S.M. and Kim, J.B. Characterization of phenolic compounds from normal ginger (Zingiber officinale Rosc.) and black ginger (*Kaempferia parviflora* Wall.) using UPLC–DAD–QToF–MS. *Euro. Food Res.Technol.* 2019, 245(3), 653-665.
10. Aidiel, M., Mutalib, M.A., Azman, A.K., Khalid, K., Ramli, N.N.N., Ramasamy, R., Tang, S.G.H. and Adam, S.H. Enhancing the Total Polyphenol Content and Antioxidant Activity of *Kaempferia parviflora* through Optimized Binary Solvent Extraction: Isolation and Characterization of Major PMF Metabolite. *Malays. J. Chem.* 2024b, 26(6), 106-120.
11. Huang, J., Tagawa, T., Ma, S. and Suzuki, K. Black ginger (*Kaempferia parviflora*) extract enhances endurance capacity by improving energy metabolism and substrate utilization in mice. *Nutrients.* 2022, 14(18), 3845.
12. Yoshida, I., Mishima, T., Kumagai, M., Takahashi, Y., Fujita, K. and Igarashi, T. Black ginger (*Kaempferia parviflora*) extract enhances circadian rhythm and promotes lipolysis in mice fed a high-fat diet. *J. Funct. Foods.* 2023, 107, 105649.
13. Park, S.H., Park, J., Lee, M., Kim, J., Eun, S., Jun, W., Kim, O.K. and Lee, J. Antiobesity effect of *Kaempferia parviflora* accompanied by inhibition of lipogenesis and stimulation of lipolysis. *Food Nutr. Res.* 2023, 67, 10-29219.
14. Hairunisa, I., Bakar, M.F.A. and Dai, M. Pharmacological and Anticancer Potential of Black Ginger (*Kaempferia parviflora*)-Review Article. *Iraqi J. Pharm. Sci.* 2024, 33(4), 30-48.
15. Park, J.E., Pyun, H.B., Woo, S.W., Jeong, J.H. and Hwang, J.K. The protective effect of *Kaempferia parviflora* extract on UVB-induced skin photoaging in hairless mice. *Photodermatol. Photoimmunol. Photomed.* 2014, 30(5), 237-245.
16. Tan, T.Y.C., Lim, X.Y., Krishnan, P., Muhamad Rosli, S.H., Chan, J.S.W., Voon, Y.L., Ahmad, I.F., Siau, T.C., Awang, N. and Syed Mohamed, A.F. Application of *Kaempferia parviflora*: a perspective review. *Nat. Prod. Commun.* 2024, 19(10), 1934578X241281615.
17. Sutthanut, K., Sripanidkulchai, B., Yenjai, C. and Jay, M. Simultaneous identification and quantitation of 11 flavonoid constituents in *Kaempferia parviflora* by gas chromatography. *J. Chromatogr. A.* 2007, 1143(1-2), 227-233.
18. Pripdeevech, P., Pitija, K., Rujjanawate, C., Pojanagaroon, S., Kittakoop, P. and Wongpornchai, S. Adaptogenic-active components from *Kaempferia parviflora* rhizomes. *Food chem.* 2012, 132(3), 1150-1155.
19. Atom, R.S., Shaikh, S.A.M., Maharabam, K., Khunjamayum, R., Ahanthem, D., Laitonjam, W.S., Ningthoujam, R.S. and Kunwar, A. GC-MS profiling, in vitro antioxidant and antimicrobial activities of *Kaempferia parviflora* Wall. ex. Baker rhizome extract. *Int. J. Pharm. Investig.* 2022, 12(4), 430-437.
20. Wang, Z., Xiao, Y., Chang, H., Sun, S., Wang, J., Liang, Q., & Wang, Q. The regulatory network of sweet corn (Zea mays L.) seedlings under heat stress revealed by transcriptome and metabolome

analysis. *International Journal of Molecular Sciences*, 2023., *24*(13), 10845.

21. Begum, T., Gogoi, R., Sarma, N., Pandey, S.K. and Lal, M. Direct sunlight and partial shading alter the quality, quantity, biochemical activities of *Kaempferia parviflora* Wall., ex Baker rhizome essential oil: A high industrially important species. *Ind. Crops Prod.* 2022, 180, 114765.
22. Yee, T.T., War, K. and Lwin, Y. Study of phytochemical composition on Kaempferia parviflora Wall. ex Baker. *IEEE Pers. Commun.* 2019, 7, 128-136.
23. Yenjai, C., Prasanphen, K., Daodee, S., Wongpanich, V. and Kittakoop, P. Bioactive flavonoids from *Kaempferia parviflora*. *Fitoterapia.* 2004, 75(1), 89-92.
24. Pripdeevech, P., & Chukeatirote, E. Chemical compositions, antifungal and antioxidant activities of essential oil and various extracts of Melodorum fruticosum L. flowers. *Food and Chemical Toxicology*, 2010 , *48*(10), 2754-2758.
25. Sitthichai, P., Chanpirom, S., Maneerat, T., Charoensup, R., Tree-Udom, T., Pintathong, P., Laphookhieo, S. and Sripisut, T. *Kaempferia parviflora* rhizome extract as potential anti-acne ingredient. *Molecules.* 2022, 27(14), 4401.
26. Wasuntarawat, C., Pengnet, S., Walaikavinan, N., Kamkaew, N., Bualoang, T., Toskulkao, C. and Mcconell, G., 2010. No effect of acute ingestion of Thai ginseng (*Kaempferia parviflora*) on sprint and endurance exercise performance in humans. *J. Sports. Sci.* 2010, 28(11), 1243-1250.
27. Promthep K, Eungpinichpong W, Sripanidkulchai B, Chatchawan U (2015) Effect of *Kaempferia parviflora* extract on physical fitness of soccer players: a randomized double-blind placebo-controlled trial. *Med Sci Monit Basic Res* 21: 100.
28. Sripanidkulchai, B., Promthep, K., Tuntiyasawasdikul, S., Tabboon, P. and Areemit, R., 2022. Supplementation of *Kaempferia parviflora* extract enhances physical fitness and modulates parameters of heart rate variability in adolescent student-athletes: a randomized, double-blind, placebo-controlled clinical study. *J. diet. Suppl.* 19(2): 149-167.
29. Yoshino, S., Tagawa, T., Awa, R., Ogasawara, J., Kuwahara, H. and Fukuhara, I. Polymethoxyflavone purified from *Kaempferia parviflora* reduces visceral fat in Japanese overweight individuals: a randomised, double-blind, placebo-controlled study. *Food Funct.* 2021, 12(4), 1603-1613.
30. Tuntiyasawasdikul, S. and Sripanidkulchai, B. Development and clinical trials on anti-inflammatory effect of transdermal patch containing a combination of *Kaempferia parviflora* and *Curcuma longa* extracts. *J. Drug Deliv. Sci. Technol.* 2022, 68, 103093.
31. Eungpinichpong, W., Chatchawan, U., Sripanidkulchai, B.O., Arunpongpaisal, S. and Chompoopan, W., 2018. Effects of *Kaempferia parviflora* on physical and psychological stresses in adults. *Int. J. GEOMATE.* 2018, 15(50), 26-31.
32. Garcia Yamamoto-Ribeiro M.M., Grespan R., Kohiyama C.Y., Ferreira F.D., Galerani Mossini S.A., Silva E.L., de Abreu Filho B.A., Graton Mikcha J.M., Machinski Junior M. Effect of Zingiber officinale essential oil on Fusarium verticillioides

and fumonisin production. *Food Chem*. 2013;141:3147–3152. doi: 10.1016/j.foodchem.2013.05.144

33. Chakotiya A.S., Tanwar A., Narula A., Sharma R.K. Zingiber officinale: Its antibacterial activity on Pseudomonas aeruginosa and mode of action evaluated by flow cytometry. *Microb. Pathogenesis*. 2017;107:254–260. doi: 10.1016/j.micpath.2017.03.029.
34. Chang J.S., Wang K.C., Yeh C.F., Shieh D.E., Chiang L.C. Fresh ginger (Zingiber officinale) has anti-viral activity against human respiratory syncytial virus in human respiratory tract cell lines. *J. Ethnopharmacol.* 2013;145:146–151. doi: 10.1016/j.jep.2012.10.043.

गंगा नदी प्रदूषण: स्रोत, स्वास्थ्य प्रभाव, एवं पारिस्थितिक क्षरण

मारुत जैन[1]
प्रो. कमल किशोर पंत[2]

[1] क्वींसलैंड विश्वविद्यालय - भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली, अनुसंधान अकादमी (UQIDRA)
[2] रसायन इंजीनियरी विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल:
marutjain@iitdalumni.com

सारांश

गंगा नदी भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण नदी प्रणालियों में से एक है, किंतु यह नगरपालिका सीवेज, औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि अपवाह, धार्मिक गतिविधियों और उभरते प्रदूषकों के कारण गंभीर बहुस्तरीय प्रदूषण का सामना कर रही है। यह समीक्षा CPCB, NMCG, WHO, ICMR तथा सहकर्मी समीक्षा साहित्य के साक्ष्यों का समेकन करते हुए प्रदूषण के स्रोतों, उनके स्थानिक वितरण तथा जल गुणवत्ता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पारिस्थितिक अखंडता पर उनके प्रभावों का विश्लेषण करती है। निष्कर्ष दर्शाते हैं कि अनुपचारित सीवेज, भारी धातुओं, कीटनाशकों, माइक्रोप्लास्टिक्स, दवाइयों और एंटीबायोटिक प्रतिरोधी सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति ने नदी की स्वशुद्धिकरण क्षमता को कमज़ोर किया है और जलजनित रोगों, विषाक्तता तथा कैंसर जोखिम को बढ़ाया है। यद्यपि नमामि गंगे कार्यक्रम के अंतर्गत सीवेज उपचार क्षमता, औद्योगिक नियंत्रण, जैव विविधता संरक्षण और निगरानी में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, फिर भी अनुपालन अंतर, पर्यावरणीय प्रवाह की कमी और उभरते प्रदूषकों का अपर्याप्त प्रबंधन महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ बने हुए हैं। यह समीक्षा निष्कर्ष निकालती है कि गंगा के पुनरुद्धार के लिए तकनीकी उपायों के साथ सुदृढ़ शासन, कठोर प्रवर्तन और बेसिन स्तर पर एकीकृत पारिस्थितिक दृष्टिकोण आवश्यक है।

मुख्य शब्द: जलविज्ञान, विषविज्ञान, सार्वजनिक स्वास्थ्य, पर्यावरण प्रशासन एवं तुलनात्मक अंतरराष्ट्रीय नदी पुनर्स्थापना

1. परिचय: एक सभ्यता का आधार - गंगा नदी

1.1 भौगोलिक एवं जलवैज्ञानिक परिचय

गंगा नदी 4,100 मीटर की ऊंचाई पर गंगोत्री हिमनद प्रणाली की गोमुख हिम-गुफा से उद्गमित होती है और उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल के मैदानों से होते हुए लगभग 2,525 किलोमीटर की यात्रा कर बंगाल की खाड़ी में विसर्जित होती है। इसका अपवाह क्षेत्र 861,404 वर्ग किलोमीटर है, जो भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 26.2% है और एशिया में 15वें और विश्व में 29वें स्थान पर आता है।

गंगा के मैदान, लाखों वर्षों के जलोढ़ निक्षेपों से निर्मित, पृथ्वी के सर्वाधिक उपजाऊ और घने बसे क्षेत्रों में से एक हैं, जहाँ 40 करोड़ से अधिक लोग, (भारत की कुल आबादी का लगभग एक-तिहाई) निवास करते है। नदी को उत्तर से यमुना, घाघरा, गंडक और कोसी जैसी हिमालयी सहायक नदियाँ मिलती हैं, और मध्य भारतीय पठार से टोंस, सोन और पुनपुन जैसी नदियाँ भी इसमें मिलती हैं, ये सभी मुख्य धारा में जल और प्रदूषण दोनों जोड़ती हैं।

इंडो-गंगेटिक प्लेन, जिसमें उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल शामिल हैं, भारत के कुल खाद्यान्न उत्पादन का लगभग 50% उत्पन्न करता है और देश की लगभग 40% जनसंख्या को भोजन प्रदान करता है। यह समझना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि इस नदी का स्वास्थ्य प्रत्यक्षत देश की खाद्य सुरक्षा से जुड़ा हुआ है। यदि गंगा के जल की गुणवत्ता खराब रहती है, तो सिंचाई जल भी प्रदूषित होता है, भूजल दूषित होता है और अंतत मिट्टी और फसल भी प्रभावित होते हैं।

1.2 आर्थिक एवं सभ्यतागत महत्त्व

गंगा केवल एक जल निकाय नहीं है, यह एक आर्थिक इंजन, आध्यात्मिक आधार और पारिस्थितिक जीवनरेखा है। नदी बेसिन भारत के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 40% से अधिक उत्पन्न करता है, जो इसे दक्षिण एशिया में सर्वाधिक आर्थिक रूप से उत्पादक नदी तंत्र बनाता है। हरिद्वार से शुरू होने वाली ऊपरी गंगा नहर और उसकी शाखाएँ मिलकर 9,575 किलोमीटर लंबी हैं, जबकि निचली गंगा नहर 8,240 किलोमीटर की है, ये दोनों मिलकर लाखों हेक्टेयर कृषि भूमि की सिंचाई करती हैं।

ऐतिहासिक रूप से, नदी 3,000 वर्षों से अधिक समय से भारतीय सभ्यता का केंद्र रही है। हरिद्वार, कन्नौज, प्रयागराज, वाराणसी, पटना और कोलकाता इसके तट पर बसे शहर दुनिया के सबसे पुराने लगातार बसे शहरी केंद्रों में से हैं। इन शहरों की संस्कृति, धर्म, व्यापार और जल-आधारित अर्थव्यवस्था प्रत्यक्षत गंगा से जुड़ी है। कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन, पर्यटन और नदी-आधारित व्यापार का समर्थन करते हुए, गंगा लगभग एक-तिहाई भारतीय और दो-तिहाई बांग्लादेशी जनसंख्या की आजीविका, भोजन और पोषण सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

यह तथ्य अत्यंत विचारणीय है कि जब गंगा प्रदूषित होती है, तो उसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष आर्थिक असर करोड़ों लोगों पर पड़ता है। मत्स्यपालन में गिरावट, पर्यटन में कमी, कृषि उपज में ह्रास, और स्वास्थ्य खर्च में वृद्धि, ये सब मिलकर इस नदी के प्रदूषण को एक बड़ी आर्थिक त्रासदी बनाते हैं।

1.3 पारिस्थितिक एवं जैविक महत्त्व

गंगा 140 से अधिक मछली प्रजातियों का घर है और इसमें गांगेय डॉल्फिन (Platanista gangetica) सहित विविध मीठे पानी की जैव विविधता पाई जाती है। इसे 2009 में भारत का राष्ट्रीय जलीय जंतु घोषित किया गया था। दुनिया में केवल तीन अनिवार्य मीठे पानी की डॉल्फिन में से एक गांगेय डॉल्फिन को IUCN द्वारा संकटग्रस्त (Endangered) सूची में रखा गया है। जनसंख्या सर्वेक्षण दर्शाते हैं कि 1980 के दशक की शुरुआत में इनकी अनुमानित संख्या 4,000-5,000 से घटकर ये आवास विनाश, प्रदूषण और बाँध निर्माण के कारण 2014 तक लगभग 3,500 रह गई।

वाइल्डलाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया (WII) की 2025 की राष्ट्रव्यापी जनगणना ने भारतीय नदियों में गांगेय डॉल्फिन की आबादी लगभग 6,324 अनुमानित की, जिसमें गंगा बेसिन का सबसे बड़ा हिस्सा है, जो एक मामूली सुधार का संकेत देती है। यह सुधार नमामि गंगे कार्यक्रम की सफलता का एक जीता-जागता प्रमाण है और यह दर्शाता है कि यदि नीतिगत हस्तक्षेप सुसंगत हो, तो पारिस्थितिकी तंत्र में सुधार संभव है।

1.4 स्व-शुद्धिकरण एवं रोगाणुरोधी गुण

प्राचीन ग्रंथों ने वह स्वीकार किया जिसे आधुनिक विज्ञान ने बाद में प्रमाणित किया: गंगा के जल में अद्वितीय रोगाणुरोधी गुण होते हैं। ब्रिटिश जीवाणु -विज्ञानी अर्नेस्ट हैंकिन ने 1896 में प्रलेखित किया कि गंगा के पानी ने Vibrio cholerae को मार डाला, एक खोज जिसे बाद के अध्ययनों द्वारा सत्यापित किया गया। अध्ययनों ने पुष्टि की है कि गंगा का पानी असाधारण ऑक्सीजन अवशोषण दर बनाए रखता है और इसमें एक उच्च जैव रासायनिक ऑक्सीजन (BOD) दर स्थिरांक पाया जाता है, जो तुलनीय नदियों

की तुलना में कई गुना अधिक है। यह विशेषता स्व-शुद्धिकरण को सक्षम बनाता है।

यह असाधारण गुण बैक्टीरियोफेज की उपस्थिति, अद्वितीय खनिज संरचना और जटिल सूक्ष्मजीव पारिस्थितिकी के लिए जिम्मेदार माना जाता है। हालांकि, आज प्रदूषण की मात्रा और विविधता ने इन प्राकृतिक स्व-सफाई तंत्रों को, विशेष रूप से नदी के मध्य और निचले खंडों में, गंभीर रूप से प्रभावित कर दिया है। एक समय जो नदी स्वयं को साफ कर लेती थी, वह आज इतने प्रदूषण भार के नीचे दब गई है कि उसकी यह शक्ति लगभग समाप्त हो चुकी है।

2. प्रदूषण के स्रोत: एक बहु-क्षेत्रीय आक्रमण

गंगा का प्रदूषण चार प्रमुख क्षेत्रों से उत्पन्न होता है: नगरपालिका सीवेज निर्वहन, औद्योगिक प्रवाह, कृषि अपवाह और धार्मिक/सांस्कृतिक गतिविधियाँ। प्रत्येक स्रोत अलग-अलग स्थानिक और कालिक पैमाने पर संचालित होता है और नदी की रासायनिक, जैविक और भौतिक गुणवत्ता के ह्रास में अनोखा योगदान करता है।

2.1 नगरपालिका सीवेज: सबसे प्रमुख प्रदूषक

नगरपालिका सीवेज गंगा के प्रदूषण का सबसे बड़ा एकल स्रोत है और कुल प्रदूषण भार का लगभग 75% इसी से आता है। यह संख्या जितनी बड़ी दिखती है, उससे भी बड़ा इसका वास्तविक प्रभाव है क्योंकि सीवेज के साथ अरबों जीवाणु, वायरस, रोगजनक, भारी धातुएँ और कार्बनिक पदार्थ एक साथ नदी में पहुँचते हैं।

2014 तक, गंगा बेसिन के 222 शहरों से उत्पन्न कुल अपशिष्ट जल 8,250 मिलियन लीटर प्रतिदिन (MLD) था, जबकि उपचार सुविधाएँ केवल 3,500 MLD के लिए उपलब्ध थीं, 4,750 MLD से अधिक का अंतर था जो अनुपचारित होकर नदी में बहता था। 2016 तक, ENVIS ने बताया कि पाँच IGP राज्यों में नगरीय आबादी से कुल सीवेज उत्पादन बढ़कर 15,435 MLD हो गया, जबकि स्थापित उपचार क्षमता केवल 3,458 MLD थी।

सीवेज उत्पादन का स्थानिक वितरण अत्यंत असमान है। पश्चिम बंगाल टियर-I शहरों के सीवेज में लगभग 50% (लगभग 1,311 MLD) का योगदान करता है, जिसमें अकेले कोलकाता 618 MLD उत्पन्न करता है। उत्तर प्रदेश 34% योगदान देता है, जिसमें मुख्यतः कानपुर (339 MLD) और इलाहाबाद (208 MLD) शामिल हैं। अनुपचारित सीवेज का अधिकतम निर्वहन पश्चिम बंगाल (548 MLD, यानी 42% अनुपचारित) से होता है, इसके बाद उत्तर प्रदेश (461 MLD, यानी 52% अनुपचारित) आता है।

CPCB (2024) के अनुसार, पाँच राज्यों के 105 गंगा-तट शहरों से 3,558.5 MLD सीवेज उत्पन्न होता है, जिसकी उपचार क्षमता केवल 2,561.7 MLD (उत्पादन का लगभग 72%) है। दशकों के निवेश के बावजूद, कानपुर में नदी में फेकल कोलीफॉर्म की संख्या 93,000 MPN/100 ml और वाराणसी में 50,000 MPN/100 ml तक पहुँचती है, जबकि स्नान जल की अधिकतम अनुमेय सीमा 500 MPN/100 ml है। यह सुरक्षित सीमा से 100-186 गुना अधिक है। कोलकाता में, दक्षिणेश्वर और हावड़ा में फेकल कोलीफॉर्म की संख्या क्रमशः 425,313 और 237,059 MPN/100 ml तक पहुँचती है।

2.1.1 नदी पर सीवेज का प्रभाव

जब सीवेज नदी में जाता है, तो इसके तत्काल और दीर्घकालिक दोनों प्रकार के प्रभाव होते हैं। सीवेज में मौजूद जैव रासायनिक पदार्थों को विघटित करने के लिए जलीय जीव ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं, जिससे नदी में घुलित ऑक्सीजन (Dissolved Oxygen — DO) का स्तर तेजी से गिर जाता है। जब DO स्तर 4 mg/L से नीचे चला जाता है, तो मछलियाँ और अन्य जलीय जीव जीवित नहीं रह सकते।

सतत सीवेज निर्वहन ने नदी जल के भौतिक-रासायनिक मापदंडों को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। पश्चिम बंगाल में घुलित ऑक्सीजन का स्तर सबसे कम है और जैव रासायनिक ऑक्सीजन माँग (BOD) 2009 में NGRBA की स्थापना के बाद, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार में, तेजी से बढ़ी है जो सीवेज उत्पादन और उपचार क्षमता के बीच बढ़ती खाई को दर्शाता है। कानपुर के बुढ़ियाघाट नाले के पास CPCB की 2023 की जाँच में BOD स्तर 580 mg/L और COD 920 mg/L पाया गया जो नदी के

पानी के लिए किसी भी अनुमेय मानक से बहुत अधिक है।

इसके अलावा, सीवेज में नाइट्रोजन और फास्फोरस की अधिकता के कारण नदी में शैवाल की अत्यधिक वृद्धि (Eutrophication) होती है, जो पानी की सतह पर एक हरी परत बना देती है और सूर्यप्रकाश को गहराई तक नहीं पहुँचने देती। इससे जलीय पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया बाधित होती है, ऑक्सीजन का उत्पादन घटता है और मछलियों के लिए जीवन असंभव हो जाता है।

2.2 औद्योगिक प्रवाह: जहरीले पदार्थों का मिश्रण

औद्योगिक प्रदूषण, हालांकि नगरपालिका सीवेज की तुलना में कम मात्रा में होता है, तथापि यह भारी धातुओं, क्लोरीनेटेड कार्बनिक पदार्थों और लगातार प्रदूषकों का असंगत रूप से विषाक्त भार गंगा में डालता है। CPCB (2016) के अनुसार, 764 अत्यधिक प्रदूषणकारी उद्योग (GPIs) मुख्यतः उत्तर प्रदेश में सीधे गंगा में प्रवाह छोड़ते हैं। 2024 की संसदीय जानकारी से पता चला कि सात राज्यों में 3,186 GPIs लगभग 402.67 MLD औद्योगिक प्रवाह छोड़ते हैं, जिसमें से 249.31 MLD विशेष रूप से गंगा में और 153.36 MLD यमुना में जाता है।

औद्योगिक अपशिष्ट जल से गंगा तक पहुँचने वाले BOD का कुल भार 13.73 टन प्रतिदिन (TPD) है। पूरे गंगा बेसिन में 2,500 MLD औद्योगिक अपशिष्ट जल उत्पन्न होता है, जो थर्मल पावर प्लांट, इलेक्ट्रो-प्रोसेसिंग उद्योगों, वस्त्र, जूट मिलों, चीनी मिलों, डिस्टिलरी, लुगदी और कागज कारखानों, सिंथेटिक रबर संयंत्रों, डेयरी, कोयला वाशरी, कीटनाशक कारखानों, रंगाई इकाइयों और टेनरियों से आता है।

2.2.1 टेनरी प्रदूषण: एक गहरा जहर

टेनरी क्षेत्र गंगा बेसिन के अत्यधिक प्रदूषणकारी उद्योगों का 58% हिस्सा है। भारत के तीन प्रमुख टेनरी समूहों में से दो कानपुर (उत्तर प्रदेश) और कोलकाता (पश्चिम बंगाल) गंगा पर स्थित है। कानपुर में जाजमऊ के दक्षिणी तट पर अकेले 151 टेनरियाँ हैं, जिनका अनुमानित अपशिष्ट जल निर्वहन 5.8-8.8 MLD है, जिनमें से 62 विशेष रूप से क्रोम टैनिंग प्रक्रिया का उपयोग करती हैं।

अध्ययनों से पता चलता है कि क्रोमियम (Cr) की सांद्रता बिठूर में 0.039 mg/L (ऊपरी तरफ) से बढ़कर जाजमऊ में 4.47 mg/L हो जाती है और प्रदूषित क्षेत्रों में अधिकतम 52.12 mg/L तक पहुँच जाती है WHO की पीने के पानी की सीमा 0.05 mg/L से 1,000 गुना अधिक है।

गंगा के पानी में जहरीले और ट्रेस तत्वों का राज्य-वार वितरण चिंताजनक प्रवृत्तियाँ दिखाता है। 2009 के बाद, उत्तर प्रदेश में क्रोमियम स्तर 0.05-2 mg/L और पश्चिम बंगाल में 0-9.5 mg/L तक पहुँचा। सीसे (Lead) की सांद्रता उत्तर प्रदेश में 0-5 mg/L और पश्चिम बंगाल में 0-7.9 mg/L तक पहुँचती है। आर्सेनिक का स्तर पश्चिम बंगाल में 0.04-4.7 mg/L तक पहुँचता है। WHO की अनुमेय सीमा 0.001 mg/L की तुलना में पारा (Mercury) पश्चिम बंगाल में 0 से 0.69 mg/L के बीच होता है।

2.2.2 औद्योगिक प्रदूषण का नदी एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

भारी धातुएँ जब नदी में प्रवेश करती हैं, तो ये पानी में घुल जाती हैं या तलछट में जमा हो जाती हैं। तलछट में जमा भारी धातुएँ दीर्घकालिक प्रदूषण का स्रोत बन जाती हैं क्योंकि बाढ़ के समय या नदी के तल की खुदाई के समय ये फिर से पानी में मिल जाती हैं। इन धातुओं को जब जलीय जीव अपने शरीर में ग्रहण करते हैं, तो जैव-संचय (bioaccumulation) और जैव-आवर्धन (biomagnification) की प्रक्रिया शुरू होती है अर्थात् खाद्य श्रृंखला के उच्च स्तर पर जाने के साथ-साथ इनकी सांद्रता बढ़ती जाती है।

क्रोमियम VI (हेक्सावेलेंट क्रोमियम) एक सिद्ध कैंसरकारक है और फेफड़े के कैंसर, नाक एवं साइनस कैंसर का कारण बनता है। आर्सेनिक त्वचा, फेफड़े, मूत्राशय और गुर्दे के कैंसर से जुड़ा है। पारा तंत्रिका तंत्र को नुकसान पहुँचाता है और विशेष रूप से बच्चों और भ्रूण के विकास को प्रभावित करता है। सीसा मानसिक विकास बाधित करता है, IQ कम करता है और हृदय रोग बढ़ाता है।

2.3 कृषि अपवाह: कीटनाशक और उर्वरक

इंडो-गंगेटिक प्लेन विश्व के सर्वाधिक गहनता से खेती किए जाने वाले क्षेत्रों में से एक है। भारत प्रतिवर्ष लगभग 85,000 मीट्रिक टन (MT) कीटनाशकों का उत्पादन करता है, जो USA, जापान और चीन के बाद विश्व में चौथे स्थान पर है। प्रतिवर्ष भारत में उपयोग किए जाने वाले लगभग 60,000 मीट्रिक टन कीटनाशकों में से अधिकतम खपत गंगा बेसिन में होती है।

गंगा के शुष्क नदी-तटों का उपयोग मौसमी रूप से सब्जियों और फलों की खेती के लिए किया जाता है, जो मानसूनी अपवाह के दौरान कीटनाशकों को सीधे नदी के पानी में जोड़ता है। भले ही भारत सरकार ने 1989 में DDT, 1996 में एल्ड्रिन और 1997 में HCH का कृषि में उपयोग प्रतिबंधित किया था, लेकिन इनकी आसान उपलब्धता और कम लागत के कारण ये Persistent Organic Pollutants (POPs) कृषि उपयोग में बने रहे।

निगरानी डेटा क्षेत्रवार विशिष्ट कीटनाशक प्रोफाइल दर्शाते हैं: उत्तराखंड में HCHs का वर्चस्व है, उत्तर प्रदेश में एंडोसल्फान, और बिहार में एल्ड्रिन। NGRBA से पहले (2009), वाराणसी में HCH सांद्रता 10,599–99,517 ng/L, DDT 6,914–14,320 ng/L, और एंडोसल्फान 836–66,520 ng/L तक पहुँची।

2.3.1 कृषि अपवाह का नदी पर प्रभाव

कीटनाशक केवल नदी के पानी को ही नहीं, बल्कि उसके पूरे पारिस्थितिकी तंत्र को नष्ट करते हैं। ये पदार्थ जलीय जीवों जैसे कीड़े, केंचुए, छोटी मछलियाँ और उभयचरों को मारते हैं, जो खाद्य श्रृंखला का आधार हैं। ऑर्गेनोफॉस्फेट कीटनाशक जलीय अकशेरुकियों में एसिटाइलकोलिनेस्टेरेज को अवरुद्ध करके उन्हें पक्षाघात और मृत्यु की ओर ले जाते हैं।

कृषि उर्वरकों से नाइट्रोजन और फास्फेट का भार भी नदी में पहुँचता है, जिससे यूट्रोफिकेशन होती है और ऑक्सीजन की कमी होती है। जब उर्वरक नदी में पहुँचते हैं, तो शैवाल (algae) की अत्यधिक वृद्धि होती है। जब शैवाल मरती है और सड़ती है, तो यह प्रक्रिया ऑक्सीजन का उपयोग करती है, जिससे "डेड जोन" बन जाते हैं जहाँ मछलियाँ और अन्य जलीय जीव जीवित नहीं रह सकते।

सिंचाई के माध्यम से प्रदूषित गंगा का पानी खेतों में जाता है, जहाँ से भारी धातुएँ और कीटनाशक मिट्टी में और फिर फसलों में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार गंगा का प्रदूषण प्रत्यक्षतः खाद्य श्रृंखला को प्रभावित करता है और मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करता है।

2.4 धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियाँ

गंगा बेसिन भारत के कुछ सबसे पवित्र तीर्थस्थलों का घर है, जिनमें हरिद्वार, ऋषिकेश, वाराणसी और प्रयागराज शामिल हैं, जहाँ निरंतर और बड़े पैमाने पर धार्मिक गतिविधियाँ जल प्रदूषण में महत्त्वपूर्ण योगदान करती हैं।

- **सामूहिक स्नान:** कुंभ मेला, (जो हर 12 वर्षों में आयोजित होता है) वर्ष 2010 ने 4.16 करोड़ स्नानार्थियों को आकर्षित किया, जबकि वर्ष 2013 में प्रयागराज में 45 दिनों में 8.87 करोड़ लोग स्नान करने आए, जिनमें एक दिन (मौनी अमावस्या, 10 फरवरी 2013)[3] करोड़ लोग थे। सामूहिक स्नान के दौरान, 2013 में इलाहाबाद में संगम पर BOD मान 7.4 mg/L तक पहुँच गया जो कि 3 mg/L की अनुमेय स्नान जल सीमा से अधिक है। कुल कोलीफॉर्म गणना 792 MPN/100 ml और फेकल कोलीफॉर्म 482 MPN/100 ml तक पहुंची।

  इन धार्मिक गतिविधियों का नदी पर प्रभाव अस्थायी लेकिन तीव्र होता है। लाखों लोगों का एक ही नदी खंड में एक साथ स्नान करना, साबुन और शैम्पू का उपयोग, नदी में खाद्य सामग्री फेंकना, पानी की गुणवत्ता को कुछ दिनों में भयावह रूप से बिगाड़ देते हैं।

- **मूर्ति विसर्जन:** प्लास्टर ऑफ पेरिस, मिट्टी, लोहे की छड़ें, बाँस, पॉलीस्टाइरीन से बनी हजारों मूर्तियाँ और भारी-धातु युक्त रंगों से सजाई गई, दुर्गा पूजा, गणेश चतुर्थी और लक्ष्मी पूजा के दौरान सालाना नदियों में विसर्जित की जाती हैं। रंगों में As, Cd, Cr, Hg

और Pb जैसी कैंसरकारी भारी धातुएँ होती हैं। अनुमानित 5,000 लीटर रंग और सैकड़ों किलोग्राम प्लास्टर ऑफ पेरिस त्योहारों के दौरान मूर्तियों के साथ नदियों में विसर्जित किए जाते हैं, जो पानी की अम्लता और भारी धातु सांद्रता को बढ़ाते हैं।

- **शव विसर्जन:** केवल वाराणसी के दो श्मशान घाटों -हरिश्चंद्र और मणिकर्णिका- पर प्रतिवर्ष औसतन 32,000 शवों का दाह संस्कार होता है। अधूरे जले शव, राख और हजारों अदाहित शव (परंपरा के अनुसार महिलाओं, बच्चों और साधुओं के) और जानवरों की लाशें सीधे गंगा में विसर्जित की जाती हैं, जो नदी को जैविक और रासायनिक पदार्थों से बुरी तरह दूषित करती हैं।

- **मंदिर अपशिष्ट:** वाराणसी के काशी विश्वनाथ मंदिर से प्रतिदिन 2,000 किलोग्राम से अधिक फूल-माला अपशिष्ट नदी में जाता है। ये फूल-माला पानी में सड़कर BOD बढ़ाते हैं और ऑक्सीजन की कमी करते हैं।

2.5 उभरते प्रदूषक: दवाइयाँ, माइक्रोप्लास्टिक और एंटीबायोटिक प्रतिरोध

गंगा में उभरते प्रदूषकों का एक नया वर्ग शोध द्वारा प्रलेखित किया गया है जिसे वर्तमान जल गुणवत्ता निगरानी ढाँचे काफी हद तक नजरअंदाज करते हैं।

- **दवाइयाँ और व्यक्तिगत देखभाल उत्पाद (PPCPs):** दून विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं के एक अध्ययन ने हरिद्वार और ऋषिकेश के पास 15 PPCPs का दस्तावेजीकरण किया, जिनमें कैफीन, सूजन-रोधी दवाएँ, एंटीबायोटिक्स (एजिथ्रोमाइसिन, सल्फामेथोक्साजोल, नोरफ्लोक्सासिन), बीटा-ब्लॉकर्स और कीट-विकर्षक शामिल हैं, जिनकी अधिकतम मापी गई सांद्रता 1,104.84 नैनोग्राम प्रति लीटर थी।

- **एंटीबायोटिक प्रतिरोध:** गंगा को तेजी से एक "सुपरबग नदी" के रूप में वर्णित किया जा रहा है। BHU के शोधकर्ताओं ने वाराणसी के पाँच घाटों पर बीटा-लैक्टम एंटीबायोटिक्स, मल्टीड्रग एफ्लक्स और एल्फामाइसिन के प्रतिरोधी बैक्टीरिया पाए। न्यूकैसल विश्वविद्यालय और आई. आई.टी. दिल्ली के शोध ने पाया कि ऊपरी गंगा में एंटीबायोटिक प्रतिरोधी जीन तीर्थयात्री मौसम के दौरान वर्ष के अन्य समय की तुलना में 60 गुना अधिक थे। गंगा और यमुना में NDM-1 जीन की उपस्थिति पाई गई है। यह एक जीवाणु जीन है, जो लगभग सभी ज्ञात एंटीबायोटिक दवाओं के विरुद्ध प्रतिरोधकता प्रदान करता है।

- **माइक्रोप्लास्टिक:** गंगा में कई स्थानों पर माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण का पता चला है, जिसमें सांद्रता क्षेत्र अध्ययनों में सैकड़ों कण प्रति लीटर की श्रेणी में बताई गई है। WII के शोधकर्ताओं द्वारा 76 किलोमीटर के एक उच्च-जैव विविधता खंड में किए गए सर्वेक्षण में 37,730 मलबे की वस्तुएँ प्रलेखित की गईं। पैकेजिंग अपशिष्ट कुल का 52.4% था, जिसमें खाद्य आवरण, एकल-उपयोग पाउच और प्लास्टिक बैग शामिल थे। नदी प्रतिदिन अनुमानित 315 टन प्लास्टिक मलबा समुद्र में छोड़ती है और विश्व के सबसे बड़े समुद्री प्लास्टिक प्रदूषण योगदानकर्ताओं में से एक के रूप में स्थान रखती है।

- **भूजल आर्सेनिक संदूषण:** गंगा बेसिन में भूजल के व्यापक आर्सेनिक संदूषण की अलग समस्या है। वर्ष 1982 में पहली बार पश्चिम बंगाल में आर्सेनिक संदूषण का मामला देखा गया। आर्सेनिक संदूषण से छह ज़िलों में 34,000 km^2 क्षेत्र की 3 करोड़ आबादी प्रभावित हुई थी, जिनमें से 8 लाख से अधिक लोग दूषित पानी पी रहे थे और आर्सेनिक के कारण 1.75 लाख लोगों की त्वचा पर घाव हो गए थे। वर्तमान में, गंगा बेसिन में आर्सेनिक विषाक्तता से कम से कम 7 करोड़ लोग प्रभावित हैं। गंगा बेसिन

के कुछ ज़िलों में आर्सेनिक स्तर 3 mg/L तक पहुँच गया है, जो WHO की निर्धारित सीमा से 300 गुना अधिक है।

2.6 ठोस अपशिष्ट और प्लास्टिक प्रदूषण

गंगा के किनारे स्थित शहरों और गाँवों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की स्थिति अत्यंत खराब है। भारी मात्रा में घरेलू और व्यावसायिक कचरा सीधे नदी में फेंका जाता है या नदी तटों पर जमा होता रहता है, जहाँ से मानसून के दौरान बाढ़ का पानी उसे नदी में बहा ले जाता है। WII के 2022-2024 सर्वेक्षण में पाया गया कि बाढ़ के मैदानों में प्रदूषण का घनत्व 6.95 वस्तुएँ प्रति वर्ग मीटर था, नदी तटों की तुलना में लगभग 28 गुना अधिक था घरेलू कचरे का हिस्सा 87% था, जबकि मछली पकड़ने का गियर 4.5% और धार्मिक अर्पण 2.6% था।

3. स्वास्थ्य प्रभाव: जलजनित रोग से लेकर कैंसर तक

3.1 जलजनित एवं आंत्र रोग

गंगा जल के लगातार फेकल संदूषण का सीधा संबंध इसके किनारे बढ़ी जलजनित रोगों की घटनाओं से है। वाराणसी में एक सर्वेक्षण में पाया गया कि तीव्र जठरांत्र शोथ, हैजा, पेचिश, हेपेटाइटिस A और टाइफाइड सहित अन्य बीमारियों का स्नान, कपड़े धोने, बर्तन धोने और नदी में दाँत ब्रश करने जैसी नदी-उपयोगी गतिविधियों से महत्त्वपूर्ण संबंध था।

जब लोग प्रदूषित गंगा के पानी से स्नान करते हैं, तो रोगजनक सूक्ष्मजीव त्वचा, मुँह या आँखों के माध्यम से शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। हैजा, टाइफाइड और आंत्रशोथ जैसे रोग तेजी से फैलते हैं क्योंकि गंगा के किनारे रहने वाले लोग अक्सर पीने, खाना पकाने और स्नान के लिए एक ही जल स्रोत पर निर्भर होते हैं।

3.2 भारी धातु विषाक्तता और स्वास्थ्य जोखिम

दूषित गंगा जल में मौजूद धातुओं और मेटलॉइड के संपर्क में आने वाली मछलियों के सेवन से उत्पन्न गैर-कैंसरकारी स्वास्थ्य जोखिम का Hazard Quotient (HQ) विधि से आकलन चिंताजनक स्तर के जोखिम को दर्शाता है। मछलियों में धातुओं की औसत सांद्रता के आधार पर आर्सेनिक, कैडमियम, क्रोमियम और पारे के लिए HQ क्रमशः 4.3, 1.33, 1.90 और 1.69 पाया गया। ये सभी मान सुरक्षित सीमा 1.0 से अधिक हैं।

सभी धातुओं और कीटनाशकों के संयुक्त प्रभाव के आधार पर समग्र Hazard Index (HI) 18.798 पाया गया, जो अनुमेय सीमा से 18 गुना से अधिक है और गंभीर स्वास्थ्य जोखिम का संकेत देता है। वाराणसी और कोलकाता जैसे सर्वाधिक प्रदूषित स्थलों में पारे (Hg) के लिए अधिकतम HQ मान 42 तक पहुँचता है, जो भयावह जोखिम दर्शाता है।

3.3 कैंसर जोखिम: गंगा बेसिन कैंसर क्लस्टर

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICMR) के अंतर्गत राष्ट्रीय कैंसर रजिस्ट्री कार्यक्रम (NCRP) के एक अध्ययन में पाया गया कि भारत में गंगा के निकटवर्ती क्षेत्रों में कैंसर की घटनाएँ सर्वाधिक थीं। भारी धातुओं और घातक रसायनों से नदी के संदूषण के कारण उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल में इसके किनारों पर रहने वाले लोगों में देश में किसी अन्य स्थान की तुलना में अधिक कैंसर जोखिम है।

गंगा बेसिन में पित्त-थैली कैंसर की संख्या विश्व में दूसरे स्थान पर है, जबकि प्रोस्टेट कैंसर की घटनाएँ भारत में सर्वाधिक हैं। सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्रों (वाराणसी, बिहार का वैशाली और पटना, मुर्शिदाबाद और दक्षिण 24 परगना के बीच की पट्टी) में किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि प्रत्येक 100,000 में से 20-25 कैंसर रोगी थे, जो राष्ट्रीय स्तर पर उच्चतम है।

3.4 जैव-संचय और जैव-आवर्धन

गंगा में पाई जाने वाली मछलियों की कई प्रजातियों में भारी धातुओं और कीटनाशकों का संचय अनुमेय सीमाओं से अधिक पाया गया है। वाराणसी की मछलियों में पारे का स्तर 91.679 mg/kg तक रिपोर्ट किया गया है। मिथाइल पारा, जो सबसे अधिक न्यूरोटॉक्सिक रूप है, कोलकाता की सामान्य मछलियों में 0 से 0.93 mg/kg के बीच था, जिनमें से कई खाद्य अपमिश्रण रोकथाम अधिनियम द्वारा निर्धारित 0.25 mg/kg की अनुशंसित सीमा से अधिक थीं। बिहार में गांगेय डॉल्फिन में ब्यूटिलटिन यौगिकों का उच्च जैव-आवर्धन प्रलेखित

किया गया है, जिनके ऊतकों में अपने आहार की तुलना में 5-10 गुना अधिक ऑर्गेनोटिन सांद्रता जमा होती है।

यह जैव-आवर्धन प्रक्रिया मानव स्वास्थ्य के लिए विशेष रूप से खतरनाक है। जब मनुष्य गंगा की मछलियाँ खाते हैं, तो वे इन जहरीले पदार्थों की उच्च सांद्रता को ग्रहण करते हैं। गरीब मछुआरे और उनके परिवार, जो अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह इन मछलियों पर निर्भर हैं, सबसे अधिक जोखिम में हैं।

4. पारिस्थितिक क्षरण: एक मरती हुई नदी

4.1 स्व-शुद्धिकरण क्षमता का ह्रास

गंगा की असाधारण स्व-शुद्धिकरण क्षमता, जो एक शताब्दी से अधिक समय से प्रलेखित है, अपने मध्य और निचले खंडों में गंभीर रूप से क्षीण हो गई है। घुलित ऑक्सीजन की कमी, गंदलेपन के कारण प्रकाश का कम प्रवेश तथा भारी कार्बनिक और अकार्बनिक प्रदूषण ने स्व-शुद्धिकरण में सहायक प्राकृतिक सूक्ष्मजीवी और प्रकाश-संश्लेषी प्रणालियों को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।

नदी के सर्वाधिक प्रदूषित खंड (कन्नौज से वाराणसी) में प्रकाश-संश्लेषण गतिविधि के अध्ययन से पता चला है कि शैवालों में प्रकाश-संश्लेषण लगभग पूरी तरह समाप्त हो चुका है, जिसके परिणामस्वरूप नदी के ऑक्सीजन में योगदान देने वाला एक प्रमुख स्रोत समाप्त हो गया है। स्वच्छ गंगा जल में तेजी से मरने वाले कोलीफॉर्म जीवाणु प्रदूषित मध्य और निचले खंडों में अपनी प्राकृतिक मृत्यु-अवधि से कहीं अधिक समय तक जीवित रहते हैं।

4.2 मत्स्यपालन में गिरावट और जैव विविधता हानि

1959 से गंगा में व्यावसायिक रूप से महत्त्वपूर्ण मछली प्रजातियों में उल्लेखनीय कमी आई है, जबकि कम मूल्य वाली 'चारा मछलियों' की संख्या बढ़ी है, जो जलीय पारिस्थितिकी तंत्र के क्षरण का संकेत है। कतला, रोहू और मृगल जैसी आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण देशी मछली प्रजातियों की संख्या में इतनी गिरावट आई है कि सरकार को इनके संरक्षण और संवर्धन के लिए मत्स्य पालन कार्यक्रम शुरू करना पड़ा। इस कार्यक्रम के तहत 2017 से अब तक 160 लाख भारतीय प्रमुख कार्प के फिंगरलिंग नदी में छोड़े जा चुके हैं।

2024-25 में गंगा और उसकी सहायक नदियों के 50 स्थानों पर की गई जैव-निगरानी में जैविक जल गुणवत्ता (BWQ) मुख्यत 'अच्छी' से 'मध्यम' श्रेणी में पाई गई, जिसमें विविध बेंथिक मैक्रो-अकशेरुकी प्रजातियों की उपस्थिति पारिस्थितिकी सुधार की संभावना दर्शाती है।

4.3 जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन गंगा के प्रदूषण संकट को और जटिल बना रहा है। गंगा के प्रवाह के प्रमुख स्रोतों में शामिल हिमालयी हिमनद तेजी से पिघल रहे हैं। एक अध्ययन के अनुसार, 2050 के दशक तक नदी के कुल अपवाह, हिमनदों के पिघलने और प्रवाह की मौसमीता में वृद्धि होने का अनुमान है, लेकिन इसके बाद इनमें गिरावट आने की संभावना है।।

हिमालय-काराकोरम क्षेत्र के हिमनद इस सदी के अंत तक अपने कुल आयतन का 75% तक खो सकते हैं। इससे पहले नदी में अत्यधिक जल प्रवाह के कारण बाढ़ और बाद में जल की कमी के कारण सूखे की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। कम नदी प्रवाह के दौरान प्रदूषकों का तनुकरण कम हो जाता है, जिससे उनकी सांद्रता बढ़ती है। जलवायु परिवर्तन के कारण कानपुर क्षेत्र में कृषि अपवाह और ग्रीष्मकालीन नदी प्रवाह में बदलाव से BOD और DO पर भी गंभीर प्रभाव पड़ने की आशंका है।

5. निष्कर्ष

गंगा का प्रदूषण सभ्यतागत अनुपात का संकट है जो दशकों के शहरीकरण, औद्योगीकरण, कृषि तीव्रता और संस्थागत विफलता में प्रकट हुआ है। इस समीक्षा ने CPCB, NMCG, WHO, NITI Aayog, ICMR और व्यापक सहकर्मी-समीक्षित विज्ञान के साक्ष्यों का संश्लेषण करके प्रदूषण की बहु-स्रोत प्रकृति, मानव स्वास्थ्य और पारिस्थितिक अखंडता

पर इसके गहन प्रभाव, नमामि गंगे से पहले सरकारी कार्यक्रमों की क्रमिक विफलता और अंतरराष्ट्रीय अनुभव से सूचित आगे का रास्ता प्रस्तुत किया है।

गंगा बेसिन आज 15,000 MLD से अधिक सीवेज उत्पन्न करता है, जिसके मुकाबले उपचार क्षमता 4,000 MLD से कम है। कैंसरकारी भारी धातुएँ आर्सेनिक, क्रोमियम, सीसा, कैडमियम, पारा, WHO सुरक्षित सीमाओं से कई गुना अधिक स्तर पर नदी के कई खंडों में मौजूद हैं। ऑर्गेनोक्लोरीन कीटनाशक दशकों पुराने प्रतिबंधों के बावजूद पानी और मछलियों को दूषित करते रहते हैं। नई श्रेणी के प्रदूषक: दवाइयाँ, माइक्रोप्लास्टिक और एंटीबायोटिक-प्रतिरोधी "सुपरबग", वर्तमान नीतियों और अवसंरचना के लिए पूरी तरह अज्ञात क्षेत्र हैं।

फिर भी, सचेत प्रयासों के ज़रिए सकारात्मक बदलाव की गुंजाइश है। नमामि गंगे कार्यक्रम ने अब तक के किसी भी पिछले प्रयास की तुलना में अधिक उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की हैं। इसके तहत सीवेज उपचार में वृद्धि, औद्योगिक अपशिष्ट के निर्वहन में कमी और गंगा डॉल्फिन की आबादी की बहाली जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए हैं। साथ ही, इस कार्यक्रम ने यह भी प्रदर्शित किया है कि स्पष्ट पारिस्थितिक लक्ष्यों के अनुरूप किए गए अवसंरचनात्मक निवेश से मापनीय परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

टेम्स, राइन और US स्वच्छ जल अधिनियम के सबक स्पष्ट हैं: नदी की बहाली के लिए बाध्यकारी कानून, स्वतंत्र प्रवर्तन, दीर्घकालिक वित्तीय प्रतिबद्धता, तकनीकी नवाचार और नदी पर निर्भर समुदायों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है।

गंगा नदी को पुन: स्वच्छ किया जा सकता है लेकिन इसके लिए नदी को केवल एक अपशिष्ट निपटान चैनल के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवित इकाई के रूप में देखना होगा जो अपनी पूरी पारिस्थितिक, जलवैज्ञानिक और सांस्कृतिक अखंडता की बहाली की पात्र है। गंगा एक माँ है, जिसे स्वस्थ और पुनर्जीवित किया जाना है, न कि महज़ एक नाली, जिसे साफ कर देना भर पर्याप्त हो।

आभार

इस आलेख में प्रस्तुत समस्त आँकड़े, तथ्य एवं वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राथमिक स्रोतों यथा CPCB, NMCG, WHO, NITI Aayog, ICMR एवं सहकर्मी-समीक्षित साहित्य पर आधारित हैं तथा लेखकों द्वारा स्वतंत्र रूप से सत्यापित किए गए हैं।

संदर्भ

1. Dwivedi, S., Mishra, S., & Tripathi, R.D. (2018). Ganga water pollution: A potential health threat to inhabitants of Ganga basin. *Environment International*, 117, 327–338. https://doi.org/10.1016/j.envint.2018.05.015
2. Central Pollution Control Board (CPCB). (2009). Monitoring of Indian Aquatic Resources: Ganga Water Quality Trend. MoEF, Govt. of India.
3. Central Pollution Control Board (CPCB). (2013). Pollution Assessment: River Ganga. MoEF, Govt. of India.
4. Central Pollution Control Board (CPCB). (2016). Bulletin Vol-I, July 2016. MoEF, Govt. of India.
5. Central Pollution Control Board (CPCB). (2024). Polluted River Stretches Report. MoEF, Govt. of India.
6. Press Information Bureau (PIB), Govt. of India. (2025, November). Namami Gange Mission Phase II: 5 Key Sewerage Infrastructure Projects Operationalized.
7. Press Information Bureau (PIB), Govt. of India. (2025, March). A Holistic Approach for Cleanliness of River Ganga.
8. National Mission for Clean Ganga (NMCG). (2026, February). 524 Sanctioned Projects, 355 Completed as River Clean-Up Expands Beyond Sewage Treatment. Lok Sabha Reply.
9. National Mission for Clean Ganga (NMCG). (2025). Monthly Progress Report, May 2025. NMCG, Ministry of Jal Shakti.

10. PIB, Govt. of India. (2023). Comprehensive Set of Interventions for Rejuvenation of River Ganga.
11. PIB, Govt. of India. (2023). National Mission for Clean Ganga.
12. Namami Gange Programme – Official Website, NMCG. (2024). Key Achievements.https://nmcg.nic.in/NamamiGanga.aspx
13. Sansad.in. Government of India. Ghats and Crematoria Development under Namami Gange.
14. PIB, Govt. of India. (2022). Projects Under Namami Gange Programme - Aquatic Biodiversity.
15. Swachh India NDTV. (2017). Government to launch 'Ganga Gram' project for villages on banks of river Ganga.
16. Wikipedia. (2024). Namami Gange Programme. https://en.wikipedia.org/wiki/Namami_Gange_Programme

भारत में नवीकरणीय ऊर्जा (Renewable Energy) अनुसंधान: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. नीरज चौरसिया

केन्द्रीय पुस्तकालय
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल:
neerajchaurasia.iit@gmail.com



सारांश

नवीकरणीय ऊर्जा सतत विकास, ऊर्जा सुरक्षा और निम्न-कार्बन अर्थव्यवस्था की दिशा में वैश्विक ऊर्जा परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण आधार बन चुकी है। भारत में सौर, पवन, बायोमास, जलविद्युत तथा अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के विस्तार के साथ इस क्षेत्र में शोध गतिविधियों और प्रकाशनों में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस पृष्ठभूमि में, प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य वर्ष 2021–2025 के दौरान भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान की प्रवृत्तियों, स्वरूप और विकास का व्यापक ग्रंथसूचीपरक विश्लेषण करना है। अध्ययन के लिए एल्सेवियर के स्कोपस डेटाबेस से प्राप्त कुल 25,694 प्रकाशनों का विश्लेषण किया गया। विश्लेषण में प्रकाशनों की वार्षिक वृद्धि, प्रकाशन प्रकार, प्रमुख विषय-क्षेत्र, स्रोत शीर्षक, संस्थागत संबद्धता तथा अंतरराष्ट्रीय शोध सहयोग को प्रमुख संकेतकों के रूप में शामिल किया गया है। परिणामों से स्पष्ट होता है कि इस अवधि में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान में निरंतर और उल्लेखनीय वृद्धि हुई तथा प्रकाशनों की संख्या वर्ष 2021 में 2,706 से बढ़कर वर्ष 2025 में 8,092 हो गई। प्रकाशन प्रकारों में जर्नल पेपर और कॉन्फ्रेंस पेपर का प्रमुख योगदान रहा, जबकि विषय-क्षेत्रों में इंजीनियरिंग, एनर्जी और कंप्यूटर साइंस अग्रणी रहे। संस्थागत स्तर पर सविता इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एंड टेक्निकल साइंसेज, सविता स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग और वेल्लोर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलजी प्रमुख योगदानकर्ताओं के रूप में सामने आए, जबकि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अंतरराष्ट्रीय सहयोग में सऊदी अरब, संयुक्त राज्य अमेरिका, मलेशिया, चीन और दक्षिण कोरिया प्रमुख सहयोगी देशों के रूप में उभरे। समग्र रूप से, यह अध्ययन भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान की तीव्र वृद्धि, इस क्षेत्र के तकनीकी एवं अंतर्विषयक स्वरूप तथा बढ़ते राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को रेखांकित करता है। अध्ययन के निष्कर्ष ऊर्जा भंडारण, स्मार्ट ग्रिड, हरित हाइड्रोजन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ऊर्जा दक्षता, जलवायु परिवर्तन और सतत विकास जैसे उभरते क्षेत्रों में भविष्य के अनुसंधान के लिए उपयोगी दिशा प्रदान करते हैं। अध्ययन की प्रमुख सीमा स्कोपस डेटाबेस पर निर्भरता तथा ग्रंथसूचीपरक विश्लेषण की

मात्रात्मक प्रकृति है; अतः भविष्य में अन्य डेटाबेस तथा गुणात्मक शोध-पद्धतियों को सम्मिलित कर अधिक व्यापक अध्ययन किए जा सकते हैं।

मुख्य शब्द: नवीकरणीय ऊर्जा; ग्रंथसूचीपरक विश्लेषण; स्कोपस; शोध प्रवृत्तियाँ; भारत; शोध सहयोग।

1. प्रस्तावना

नवीकरणीय ऊर्जा (Renewable Energy) आज वैश्विक स्तर पर सतत और निम्न-कार्बन ऊर्जा व्यवस्था की ओर बढ़ने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण आधार बन गई है। ऊर्जा की बढ़ती मांग, जलवायु परिवर्तन की चुनौती, पर्यावरणीय क्षरण तथा जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता को कम करने की आवश्यकता ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के प्रति अनुसंधान और नीतिगत प्राथमिकता को बढ़ाया है। भारत में सौर, पवन, बायोमास, जलविद्युत तथा अन्य नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकियों तीव्र विस्तार के साथ इस क्षेत्र में अनुसंधान गतिविधियों का भी व्यापक विकास हुआ है। इस अनुसंधान में तकनीकी नवाचार, ऊर्जा नीति, सतत विकास, ऊर्जा दक्षता तथा पर्यावरणीय प्रभाव जैसे विभिन्न पहलुओं को शामिल किया गया है।

नवीकरणीय ऊर्जा से संबंधित शोध साहित्य की निरंतर बढ़ती संख्या को देखते हुए भारत में इस क्षेत्र के अनुसंधान के विकास, स्वरूप और प्रमुख दिशाओं का व्यवस्थित अध्ययन आवश्यक हो गया है। ग्रंथसूचीपरक विश्लेषण (Bibliometric Analysis) के माध्यम से किसी विशेष विषय में प्रकाशनों की वृद्धि, उद्धरण स्थिति, प्रमुख लेखक एवं संस्थान, प्रमुख शोध पत्रिकाएँ, शोध सहयोग तथा उभरते विषयों की पहचान की जा सकती है। इस प्रकार का विश्लेषण किसी शोध क्षेत्र की वर्तमान स्थिति, विकास की दिशा और प्रमुख शोध प्रवृत्तियों को समझने के लिए एक प्रभावी आधार प्रदान करता है।

यद्यपि नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में शोध साहित्य में निरंतर वृद्धि हो रही है, फिर भी वर्ष 2021–2025 के दौरान भारत में इस क्षेत्र के अनुसंधान पर केंद्रित एक समग्र अध्ययन की आवश्यकता बनी हुई है। प्रस्तुत अध्ययन में इसी अवधि के दौरान भारत से संबद्ध नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान से संबंधित Scopus में सूचीबद्ध प्रकाशनों का व्यापक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में प्रकाशनों की वार्षिक वृद्धि, प्रकाशन प्रकार, प्रमुख विषय-क्षेत्र, स्रोत शीर्षक, संस्थागत योगदान तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग का विश्लेषण कर भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान की वर्तमान स्थिति, प्रमुख प्रवृत्तियों, अंतर्विषयक स्वरूप तथा उभरते शोध क्षेत्रों को समझने का प्रयास किया गया है। इस विश्लेषण के आधार पर भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान के विकास और भविष्य की संभावित शोध दिशाओं का समग्र परिदृश्य प्रस्तुत किया गया है।

2. अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य वर्ष 2021-2025 के दौरान भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान का व्यापक विश्लेषण करना है, जिसमें इस क्षेत्र में शोध प्रकाशनों की वृद्धि एवं प्रवृत्तियों, प्रकाशनों के प्रकार, प्रमुख विषय-क्षेत्रों, स्रोत शीर्षकों, प्रमुख शोध संस्थानों तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग का अध्ययन किया गया है। इसके माध्यम से भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान की वर्तमान स्थिति, शोध की दिशा, अंतर्विषयक स्वरूप, प्रमुख योगदानकर्ता संस्थानों एवं सहयोगी देशों तथा उभरते शोध क्षेत्रों की पहचान करने का प्रयास किया गया है, ताकि देश में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान के विकास, विस्तार और भविष्य की संभावनाओं का समग्र आकलन प्रस्तुत किया जा सके।

3. अध्ययन की रूपरेखा और आँकड़ों का संकलन

प्रस्तुत अध्ययन में वर्ष 2021–2025 के दौरान भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान की स्थिति, विकास एवं प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए ग्रंथसूचीपरक विश्लेषण (Bibliometric Analysis) पद्धति अपनाई गई है। अध्ययन में प्रकाशनों की वार्षिक वृद्धि, प्रकाशन प्रकार, प्रमुख विषय-क्षेत्र, स्रोत शीर्षक, संस्थागत योगदान तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग का विश्लेषण किया गया है। इसके लिए प्रकाशनों की संख्या एवं प्रतिशत, विषयवार वितरण, प्रमुख प्रकाशन स्रोत, अग्रणी संस्थानों तथा सहयोगी

देशों जैसे संकेतकों का वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन किया गया, जिससे अनुसंधान की वृद्धि, विषयगत विविधता, अंतर्विषयक प्रकृति, संस्थागत भागीदारी और अंतरराष्ट्रीय सहयोग का आकलन किया जा सके।

अध्ययन के लिए ग्रंथसूचीपरक आँकड़े एल्सेवियर (Elsevier) द्वारा उपलब्ध कराए गए स्कोपस (Scopus) डेटाबेस से प्राप्त किए गए। अगस्त 2026 में उन्नत खोज (Advanced Search) के माध्यम से वर्ष 2021–2025 के दौरान भारत से संबद्ध नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान से संबंधित प्रकाशनों की पहचान की गई। इसके लिए निम्नलिखित खोज रणनीति का उपयोग किया गया:

TITLE-ABS-KEY ("renewable energy" OR "renewable energies" OR "renewable energy source*" OR "renewable energy technolog*") AND AFFILCOUNTRY (India) AND PUBYEAR > 2020 AND PUBYEAR < 2026

उक्त खोज रणनीति के माध्यम से कुल 25,694 प्रकाशन प्राप्त हुए। डेटासेट में जर्नल लेख, कॉन्फ्रेंस पेपर, बुक चैप्टर, रिव्यू तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण या ज्ञानसंपन्न प्रकाशन शामिल हैं। प्राप्त अभिलेखों का प्रकाशन वर्ष, प्रकाशन प्रकार, विषय-क्षेत्र, स्रोत शीर्षक, संस्थागत संबद्धता तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग के आधार पर वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया गया। विश्लेषण के परिणामों को तालिकाओं और ग्राफों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, ताकि वर्ष 2021–2025 के दौरान भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान के विकास और शोध परिदृश्य का समग्र आकलन किया जा सके।

4. आँकड़ों का विश्लेषण एवं विवेचन

एकत्र किए गए आँकड़ों का व्यवस्थित रूप से विश्लेषण किया गया है तथा प्राप्त परिणामों को तालिकाओं और ग्राफों के माध्यम से प्रस्तुत एवं विवेचित किया गया है।

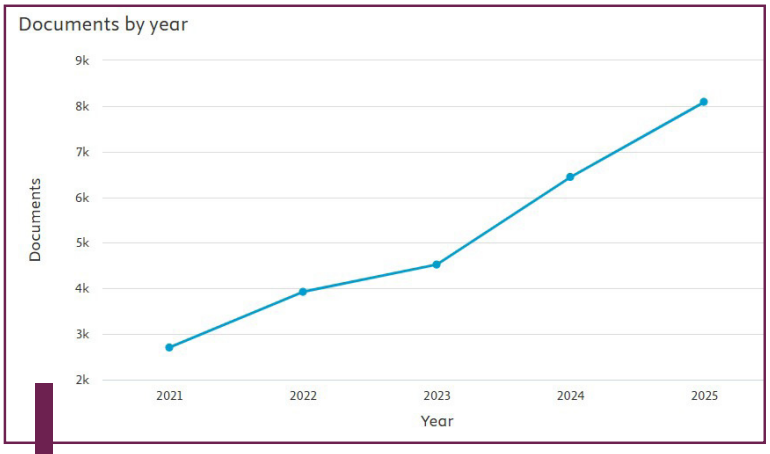
4.1 प्रकाशनों की वार्षिक वृद्धि

तालिका 4.1 में वर्ष 2021–2025 के दौरान नवीकरणीय ऊर्जा (Renewable Energy) के क्षेत्र में प्रकाशित शोध पत्रों का वर्षवार वितरण प्रस्तुत किया गया है। इस अवधि में कुल 25,694 शोध पत्र प्रकाशित हुए। प्रकाशनों की संख्या वर्ष 2021 में 2,706 से बढ़कर 2025 में 8,092 हो गई। कुल प्रकाशनों में वर्ष 2025 का योगदान सर्वाधिक (31.49%) रहा, इसके बाद वर्ष 2024 में 25.08% योगदान रहा। वर्ष 2023 में 17.61%, जबकि वर्ष 2022 और 2021 में क्रमशः 15.28% और 10.53% प्रकाशन दर्ज किए गए।

आंकड़ों से इस क्षेत्र में शोध प्रकाशनों की लगातार बढ़ती प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। वर्ष 2025 में प्रकाशित शोध पत्रों की संख्या वर्ष 2021 की तुलना में लगभग तीन गुना रही। यह वृद्धि नवीकरणीय ऊर्जा (Renewable Energy) के क्षेत्र में बढ़ती शोध रुचि, शोध गतिविधियों के विस्तार तथा इस विषय के बढ़ते महत्त्व को दर्शाती है।

तालिका 4.1: प्रकाशनों का वर्ष-वार वितरण

वर्ष	प्रकाशन	प्रतिशत (%)
2021	2,706	10.53%
2022	3,927	15.28%
2023	4,524	17.61%
2024	6,445	25.08%
2025	8,092	31.49%
कुल	25,694	100.00%



चित्र 4.1: प्रकाशनों का वर्ष-वार वितरण

4.2 शोध पत्रों का प्रकाशनों के प्रकारों के आधार पर वितरण

प्रकाशनों के प्रकार का विश्लेषण उन विभिन्न माध्यमों की जानकारी प्रदान करता है, जिनके माध्यम से शोध निष्कर्षों को प्रकाशित एवं प्रसारित किया जाता है। वर्ष 2021–2025 की अवधि के दौरान कुल 25,694 शोध प्रकाशन दर्ज किए गए। इनमें सर्वाधिक 'जर्नल पेपर' (10,236), 'कॉन्फ्रेंस पेपर' (9,434), 'बुक चैप्टर' (3,565) तथा 'रिव्यू' (1,930) प्रकाशित हुए। शेष प्रकाशन 'बुक', 'एडिटोरियल', 'एराटम', 'नोट', 'शॉर्ट सर्वे', 'लेटर' तथा 'डेटा पेपर' के रूप में प्रकाशित किए गए।

यह वितरण दर्शाता है कि इस अवधि में 'जर्नल पेपर' और 'कॉन्फ्रेंस पेपर' शोध निष्कर्षों के प्रकाशन एवं संप्रेषण के प्रमुख माध्यम रहे। 'कॉन्फ्रेंस पेपर' की अधिक संख्या से पता चलता है कि शोध निष्कर्षों को साझा करने और विचारों के आदान-प्रदान में सम्मेलनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वहीं, 'जर्नल पेपर' की बड़ी संख्या यह दर्शाती है कि इस क्षेत्र में शोध गतिविधियाँ निरंतर जारी हैं और शोध निष्कर्षों को नियमित रूप से जर्नल में प्रकाशित किया जा रहा है। यहाँ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि 95 प्रकाशन 'रिट्रैक्टेड (वापस लिए गए)' पाए गए, जो प्रकाशित शोध की गुणवत्ता और विश्वसनीयता की निगरानी के महत्त्व को दर्शाते हैं।

तालिका 4.2: प्रकाशित शोध पत्रों का प्रकारों के आधार पर वितरण

प्रकाशन के प्रकार	प्रकाशनों की संख्या
जर्नल पेपर	10,236
कॉन्फ्रेंस पेपर	9,434
बुक चैप्टर	3,565
रिव्यू	1,930
बुक	320
एडिटोरियल	45
एराटम	35
नोट	17
शॉर्ट सर्वे	13
लेटर	3
डेटा पेपर	1

4.3 प्रकाशनों का विषयवार वितरण

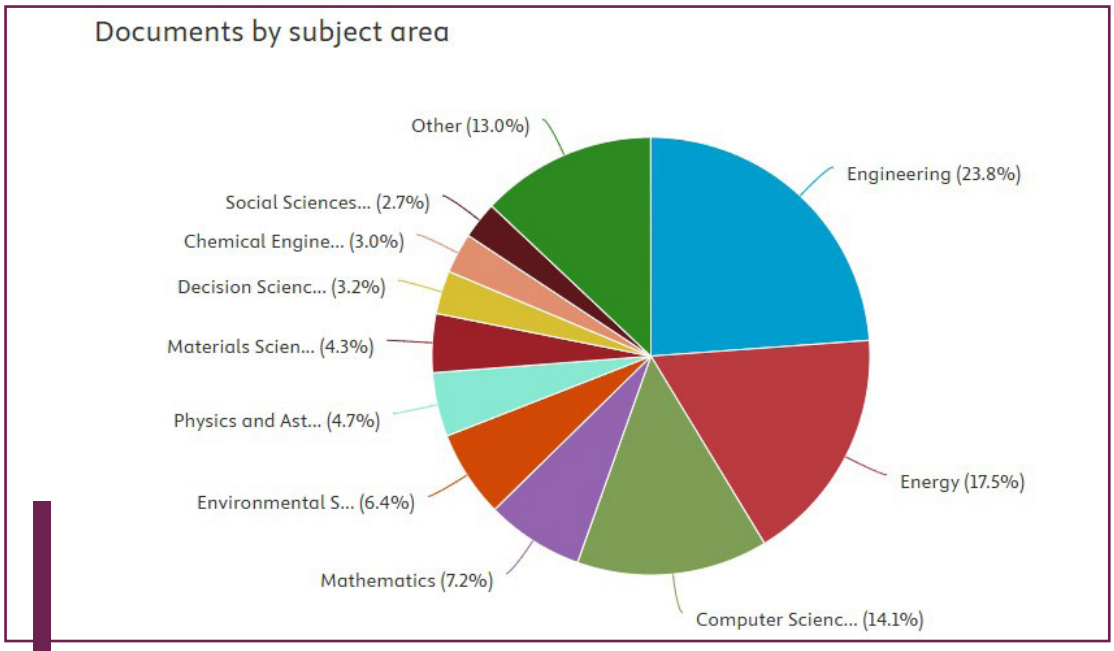
विषय-क्षेत्र विश्लेषण शोध की अंतर्विषयक प्रकृति को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। 'इंजीनियरिंग' सर्वाधिक प्रमुख विषय-क्षेत्र है, जिसमें 14,803 प्रकाशन दर्ज किए गए हैं। इसके बाद 'एनर्जी' में 10,853, 'कंप्यूटर साइंस' में 8,763 तथा 'मैथमेटिक्स', 'एनवायरनमेंटल साइंस', 'फिजिक्स एंड एस्ट्रोनॉमी' और 'मैटेरियल्स साइंस' जैसे विषय-क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय संख्या में प्रकाशन हुए हैं।

'इंजीनियरिंग' और 'एनर्जी' इस क्षेत्र की तकनीकी और अनुप्रयोग-उन्मुख प्रकृति को दर्शाता है वहीं 'कंप्यूटर साइंस' और 'मैथमेटिक्स' का पर्याप्त योगदान 'कम्प्यूटेशनल मेथड्स', 'मॉडलिंग', 'ऑप्टिमाइजेशन', 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' और 'डेटा-ड्रिवन अप्रोचेज' के बढ़ते एकीकरण का संकेत देता है। 'एनवायरनमेंटल साइंस' में प्रकाशित शोध पत्र 'रिन्यूएबल एनर्जी रिसर्च' और 'सस्टेनेबिलिटी-रिलेटेड इश्यूज' के बीच संबंध को भी प्रदर्शित करता है।

'केमिकल इंजीनियरिंग', 'सोशल साइंसेज', 'केमिस्ट्री', 'बिजनेस, मैनेजमेंट एंड अकाउंटिंग', 'मेडिसिन', 'इकोनॉमिक्स', 'अर्थ एंड प्लैनेटरी साइंसेज' तथा 'एग्रीकल्चरल एंड बायोलॉजिकल साइंसेज' आदि अन्य विषय-क्षेत्र यह संकेत देते हैं कि शोध केवल तकनीकी आयामों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय और जैविक पहलुओं को भी शामिल किया गया है।

तालिका 4.3: प्रकाशनों का विषयवार वितरण

रैंक	विषय श्रेणियां (शीर्ष 20)	प्रकाशन (कुल 25,694 में %)
1	इंजीनियरिंग	14,803 (57.61%)
2	एनर्जी	10,853 (42.24%)
3	कंप्यूटर साइंस	8,763 (34.11%)
4	मैथमेटिक्स	4,468 (17.39%)
5	एनवायरनमेंटल साइंस	3,984 (15.51%)
6	फिजिक्स एंड एस्ट्रोनॉमी	2,937 (11.43%)
7	मैटेरियल्स साइंस	2,696 (10.49%)
8	डिसीजन साइंस	1,976 (7.69%)
9	केमिकल इंजीनियरिंग	1,844 (7.18%)
10	सोशल साइंस	1,695 (6.60%)
11	केमिस्ट्री	1,521 (5.92%)
12	बिजनेस, मैनेजमेंट एंड अकाउंटिंग	1,285 (5.00%)
13	मेडिसिन	1,100 (4.28%)
14	इकोनॉमिक्स, इकोनोमेट्रिक्स एंड फाइनेंस	980 (3.81%)
15	अर्थ एंड प्लैनेटरी साइंस	804 (3.13%)
16	एग्रीकल्चरल एंड बायोलॉजिकल साइंस	643 (2.50%)
17	बायोकेमिस्ट्री, जेनेटिक्स एंड मॉलिक्यूलर बायोलॉजी	636 (2.48%)
18	मल्टीडिसिप्लिनरी	540 (2.10%)
19	आर्ट्स एंड ह्यूमैनिटीज	149 (0.58%)
20	इम्यूनोलॉजी एंड माइक्रोबायोलॉजी	133 (0.52%)



चित्र 4.3: प्रकाशनों का विषयवार वितरण

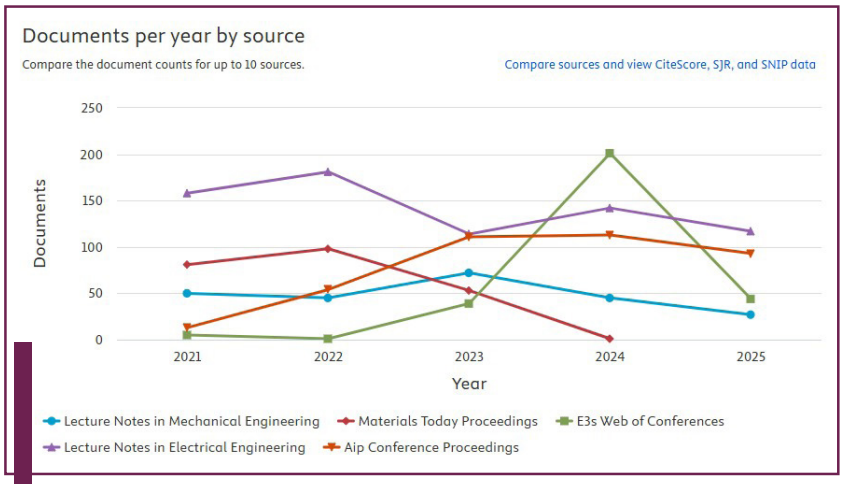
4.4 स्रोत शीर्षकों के आधार पर प्रकाशनों का वितरण

स्रोत शीर्षकों के विश्लेषण से इस शोध क्षेत्र के प्रमुख जर्नल, कॉन्फ्रेंस प्रोसीडिंग्स तथा प्रकाशन शृंखला या सीरीज़ की पहचान की जा सकती है। डेटासेट में 'लेक्चर नोट्स इन इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग' सर्वाधिक प्रमुख स्रोत शीर्षक है, जिसमें 712 प्रकाशन दर्ज किए गए हैं। इसके बाद 'ए.आई.पी. कॉन्फ्रेंस प्रोसीडिंग्स' में 384 तथा 'ई3एस वेब ऑफ कॉन्फ्रेंसेज' में 290 प्रकाशन शामिल हैं। अन्य प्रमुख स्रोत शीर्षकों में 'लेक्चर नोट्स इन मैकेनिकल इंजीनियरिंग' (239), 'मैटेरियल्स टुडे प्रोसीडिंग्स' (233), 'आई.ई.ई.ई. एक्सेस' (230), 'एनवायरनमेंटल साइंस एंड पॉल्यूशन रिसर्च' (227) तथा 'जर्नल ऑफ एनर्जी स्टोरेज' (227) शामिल हैं।

प्रमुख स्रोत शीर्षकों में कॉन्फ्रेंस प्रोसीडिंग्स की उल्लेखनीय उपस्थिति यह दर्शाती है कि इस शोध क्षेत्र में सम्मेलन-आधारित प्रकाशनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके साथ ही, 'आई.ई.ई.ई. एक्सेस', 'एनवायरनमेंटल साइंस एंड पॉल्यूशन रिसर्च', 'जर्नल ऑफ एनर्जी स्टोरेज', 'साइंटिफिक रिपोर्ट्स' तथा 'एनर्जीज' जैसे जर्नलों की उपस्थिति शोध की बहुविषयक प्रकृति को दर्शाती है। इन स्रोत शीर्षकों में इंजीनियरिंग, ऊर्जा, पर्यावरण, सामग्री विज्ञान तथा ऊर्जा भंडारण जैसे विभिन्न विषयों का समावेश यह संकेत देता है कि नवीकरणीय ऊर्जा से संबंधित अनुसंधान विभिन्न वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों के बीच व्यापक अंतःविषयक सहयोग पर आधारित है।

तालिका 4.4: स्रोत शीर्षकों के आधार पर प्रकाशनों का वितरण

रैंक	स्रोत शीर्षक (शीर्ष 10)	प्रकाशन
1	लेक्चर नोट्स इन इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग	712
2	ए.आई.पी. कॉन्फ्रेंस प्रोसीडिंग्स	384
3	ई3एस वेब ऑफ कॉन्फ्रेंसेज	290
4	लेक्चर नोट्स इन मैकेनिकल इंजीनियरिंग	239
5	मैटेरियल्स टुडे प्रोसीडिंग्स	233
6	आई.ई.ई.ई. एक्सेस	230
7	एनवायरनमेंटल साइंस एंड पॉल्यूशन रिसर्च	227
8	जर्नल ऑफ एनर्जी स्टोरेज	227
9	साइंटिफिक रिपोर्ट्स	225
10	एनर्जीज	222



चित्र 4.4: स्रोत शीर्षकों के आधार पर प्रकाशनों का वितरण

4.5 अंतरराष्ट्रीय सहयोग के अंतर्गत प्रकाशनों का वितरण

वर्ष 2021–2025 की अवधि के दौरान कुल 25,694 शोध प्रकाशन दर्ज किए गए, जिनमें विभिन्न देशों के शोधकर्ताओं के साथ अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिलक्षित होता है। सर्वाधिक 1,245 प्रकाशन सऊदी अरब के शोधकर्ताओं के साथ सहयोग में किए गए। इसके बाद संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ 747, मलेशिया के साथ 666 और चीन के साथ 610 प्रकाशन रहे। अन्य प्रमुख सहयोगी देशों में दक्षिण कोरिया, यूनाइटेड किंगडम, इराक, ऑस्ट्रेलिया, इथियोपिया और जॉर्डन शामिल हैं। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारत के

नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान में अंतरराष्ट्रीय सहयोग की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। सऊदी अरब, संयुक्त राज्य अमेरिका, मलेशिया और चीन भारत के प्रमुख सहयोगी देशों के रूप में उभरकर सामने आए हैं।

तालिका 4.5: अंतरराष्ट्रीय सहयोग के अंतर्गत प्रकाशनों का वितरण

रैंक	देश (शीर्ष 10)	प्रकाशन
1	सऊदी अरब	1,245
2	संयुक्त राज्य अमेरिका	747
3	मलेशिया	666
4	चीन	610
5	दक्षिण कोरिया	552
6	यूनाइटेड किंगडम	496
7	इराक	462
8	ऑस्ट्रेलिया	351
9	इथियोपिया	299
10	जॉर्डन	260

4.6 संस्थागत संबद्धता के आधार पर प्रकाशनों का वितरण

संस्थागत संबद्धता के आधार पर प्रकाशनों का विश्लेषण भारत में नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान में विभिन्न उच्च शिक्षण एवं अनुसंधान संस्थानों के योगदान को दर्शाता है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार सविता इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एंड टेक्निकल साइंसेज 782 प्रकाशनों के साथ शीर्ष स्थान पर है। इसके बाद सविता स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग के 662 और वेल्लोर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलजी के 590 प्रकाशन हैं। लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी तथा चंडीगढ़ यूनिवर्सिटी क्रमशः 476 और 455 प्रकाशनों के साथ प्रमुख संस्थानों में शामिल हैं।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली ने 447 प्रकाशनों के साथ महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, जबकि ग्राफिक एरा डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी के 445 और एस.आर. एम. इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नॉलजी के 433 प्रकाशन हैं। अन्य प्रमुख संस्थानों में चितकारा यूनिवर्सिटी, पंजाब के 376 तथा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रुड़की के 359 प्रकाशन शामिल हैं।

शीर्ष 10 संस्थानों में निजी विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी संस्थानों की प्रमुख उपस्थिति दिखाई देती है। साथ ही, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रुड़की जैसे प्रमुख तकनीकी संस्थानों की उपस्थिति यह दर्शाती है कि नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान में इंजीनियरिंग एवं प्रौद्योगिकी-केंद्रित संस्थानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

तालिका 4.6: संस्थागत संबद्धता के आधार पर प्रकाशनों का वितरण

संबद्धता (शीर्ष 10)	प्रकाशन
सविता इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एंड टेक्निकल साइंसेज	782
सविता स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग	662
वेल्लोर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलजी	590
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी	476
चंडीगढ़ यूनिवर्सिटी	455
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली	447
ग्राफिक एरा डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी	445
एस.आर.एम. इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नॉलजी	433
चितकारा यूनिवर्सिटी, पंजाब	376
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रुड़की	359

5. निष्कर्ष

वर्ष 2021–2025 के दौरान भारत में नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में कुल 25,694 शोध प्रकाशनों का विश्लेषण करने से इस क्षेत्र में शोध गतिविधियों की निरंतर एवं उल्लेखनीय वृद्धि स्पष्ट होती है। प्रकाशनों की संख्या वर्ष 2021 में 2,706 से बढ़कर वर्ष 2025 में 8,092 हो गई। प्रकाशन प्रकारों में जर्नल पेपर और कॉन्फ्रेंस पेपर का प्रमुख योगदान रहा, जबकि विषयवार विश्लेषण में इंजीनियरिंग, एनर्जी और कंप्यूटर साइंस प्रमुख विषय-क्षेत्र के रूप में सामने आए। इससे स्पष्ट है कि नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान मुख्यतः तकनीकी एवं अनुप्रयोग-आधारित होने के साथ-साथ कंप्यूटेशनल, पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक आयामों से भी जुड़ रहा है। स्रोत शीर्षकों और संस्थागत संबद्धता का विश्लेषण इस क्षेत्र की बहुविषयक एवं व्यापक संस्थागत भागीदारी को भी दर्शाता है।

अंतरराष्ट्रीय सहयोग के स्तर पर सऊदी अरब, संयुक्त राज्य अमेरिका, मलेशिया, चीन और दक्षिण कोरिया प्रमुख सहयोगी देशों के रूप में उभरे हैं। संस्थागत स्तर पर सविता इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एंड टेक्निकल साइंसेज, सविता स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग, वेल्लोर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलजी तथा अन्य तकनीकी एवं निजी विश्वविद्यालयों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रुड़की जैसे प्रमुख संस्थानों की उपस्थिति नवीकरणीय ऊर्जा अनुसंधान में तकनीकी एवं उच्च शिक्षण संस्थानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को दर्शाती है। अतः राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सहयोग, संयुक्त शोध परियोजनाओं, साझा अनुसंधान अवसंरचना तथा बहुविषयक शोध नेटवर्क को और सुदृढ़ किया जाना चाहिए।

भविष्य में अनुसंधान को ऊर्जा भंडारण, स्मार्ट ग्रिड, हरित हाइड्रोजन, ऊर्जा दक्षता, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जलवायु परिवर्तन, सतत विकास और विकेंद्रीकृत ऊर्जा प्रणालियों जैसे उभरते क्षेत्रों पर केंद्रित करने की आवश्यकता है। साथ ही, शोध की गुणवत्ता और प्रभाव बढ़ाने के लिए उच्च प्रभाव वाले जर्नलों में प्रकाशन, अंतरराष्ट्रीय सहयोग, डेटा-साझाकरण तथा उद्योग-अकादमिक साझेदारी को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इन प्रयासों से भारत नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में न केवल प्रकाशन उत्पादन, बल्कि उच्च-प्रभावी, नवाचार-उन्मुख और नीति-प्रासंगिक अनुसंधान में भी अपनी वैश्विक स्थिति को और मज़बूत कर सकता है।

संदर्भ

1. *Scopus.* Elsevier. Available at: https://www.scopus.com (Accessed: 15 August 2026).

भाग 2

टेक्नॉलजी, समाज एवं सस्टेनेबिलिटी

मानवीय समाज एवं सतत मानव-विकास के लिए मध्यस्थ दर्शन की अस्तित्वगत रूपरेखा

डॉ. गोपाल बाबू[1]
डॉ. हर्ष सत्या[2]
प्रो. संतोष सत्या[3]

[1]अनुसंधान समन्वयक, सोसाइटी फॉर इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट ऑफ हिमालयाज (मसूरी)
[2]प्रोफ़ेसर, सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, अजय कुमार गर्ग इंजीनियरिंग कॉलेज (गाज़ियाबाद)
[3]एमेरिटस प्रोफ़ेसर (सेवानिवृत्त), भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल:
[1]harshsatya@gmail.com
[2]babugopal@akgec.ac.in
[3]ssatya@rdat.iitd.ac.in



सारांश

सतत विकास (Sustainable Development) के समकालीन विमर्श में यह स्वीकार किया जाने लगा है कि केवल तकनीकी नवाचार, आर्थिक वृद्धि अथवा नीतिगत सुधार मानवता के समक्ष उपस्थित संकटों का स्थायी समाधान नहीं दे सकते। इसके लिए मानव, समाज तथा प्रकृति के बीच संबंधों की गहन 'समझ' पर आधारित समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इस शोधपत्र में आचार्य ए. नागराज द्वारा प्रतिपादित "मध्यस्थ दर्शन" के प्रस्तावों को वैकल्पिक सम्भावना के रूप में देखने का प्रयास किया गया है। सस्टेनेबिलिटी के प्रचलित साहित्य में सह-अस्तित्व की 'समझ' के आयाम पर पर्याप्त चर्चा नहीं मिलती, जो मध्यस्थ-दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण आयाम है। मध्यस्थ दर्शन ऐसा कर पाता है क्योंकि वह 'सह-अस्तित्व' को अस्तित्व का शाश्वत सत्य प्रस्तुत कर, इस सत्य को समझने का प्रस्ताव दे रहा है और इसके लिए शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक बदलाव पर ज़ोर दे रहा है। सस्टेनेबिलिटी की अस्तित्वगत रूपरेखा प्रस्तुत करने के कारण यह सस्टेनेबिलिटी को अस्तित्व के स्वाभाविक चरित्र के रूप में प्रस्तावित करता है। यह शोधपत्र डॉ. गोपाल बाबू की पीएच.डी.थीसिस (आई.आई.टी. दिल्ली) से उत्पन्न सस्टेनेबिलिटी सिद्धांत के संदर्भ में मानवीय समाज के स्वरूप पर विस्तृत चर्चा करने का प्रयास है।

मुख्य शब्द: सस्टेनेबिलिटी, सतत विकास, सह-अस्तित्व, मध्यस्थ-दर्शन, मूल्य शिक्षा, परस्पर पूरक

1. प्रस्तावना

इक्कीसवीं शताब्दी विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा आर्थिक विकास के क्षेत्र में अभूतपूर्व उपलब्धियों की साक्षी रही है। इसके बावजूद मानवता आज भी जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय अवनयन, आर्थिक असमानता, सामाजिक विखंडन, मानसिक तनाव, हिंसा जैसी जटिल चुनौतियों का सामना कर रही है। यह संकेत है कि वर्तमान विकास प्रतिमान मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं तथा उसकी अस्तित्वगत अपेक्षाओं को संतुलित रूप से पूरा करने में पर्याप्त नहीं हैं। इसी कारण सतत विकास के समकालीन विमर्श में यह स्वीकार किया जाने लगा है कि केवल तकनीकी नवाचार, आर्थिक वृद्धि अथवा नीतिगत सुधार मानवता के समक्ष उपस्थित संकटों का स्थायी समाधान नहीं दे सकते। इसके लिए मानव, समाज तथा प्रकृति के बीच संबंधों

की गहन समझ पर आधारित समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में आचार्य ए. नागराज द्वारा प्रतिपादित मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्व दर्शन) एक वैकल्पिक एवं समग्र दार्शनिक दृष्टि प्रस्तुत करता है। यह दर्शन सह-अस्तित्व को अस्तित्व का मूल सत्य मानते हुए प्रतिपादित करता है कि सम्पूर्ण अस्तित्व एक स्वाभाविक, संतुलित एवं परस्पर-पूरक व्यवस्था है, जिसमें प्रत्येक इकाई अपने निश्चित स्वरूप, गुण, स्वभाव और संबंधों के साथ विद्यमान है। इस व्यवस्था में मानव न तो प्रकृति का स्वामी है और न ही उससे पृथक कोई स्वतंत्र सत्ता, बल्कि वह एक चेतन इकाई है जो अस्तित्व की इस सार्वभौमिक व्यवस्था को समझने तथा उसके अनुरूप जीवन जीने की क्षमता रखती है।अस्तित्व की सम्यक् समझ (holistic understanding)—अर्थात् मनुष्य के साथ न्याय और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व—के अनुरूप जीया गया जीवन ही वास्तव में सस्टेनेबल हो सकता है। ए. नागराज (Nagraj, 2009) के समृद्ध वाङ्मय को अगर सस्टेनेबिलिटी की दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो उनके प्रस्ताव का आधार अस्तित्वपरक सह-अस्तित्व समझ में आता है। सस्टेनेबिलिटी पर समकालीन अकादमिक विमर्श में मध्यस्थ-दर्शन के सिद्धांतों पर चर्चा पिछले तीन दशकों में शुरू हुई है; आई.आई.टी.-दिल्ली से प्रकाशित तीन पी.एच.डी. थीसिस में मध्यस्थ-दर्शन के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष – आवर्तनशील दृष्टि का दिग्दर्शन हुआ है। साथ ही बी. टेक विद्यार्थियों के एक कोर्स में इनका समावेश है। यह शोधपत्र तीसरी पीएच. डी. थीसिस (डॉ. गोपाल बाबू) से उत्पन्न सस्टेनेबिलिटी सिद्धांत के संदर्भ में मानवीय समाज के स्वरूप पर विस्तृत चर्चा करने का प्रयास है।

2. मध्यस्थ दर्शन का दार्शनिक आधार

मध्यस्थ दर्शन का दार्शनिक आधार सह-अस्तित्व की उस अवधारणा पर आधारित है, जिसे आचार्य ए. नागराज सम्पूर्ण अस्तित्व का शाश्वत एवं सार्वभौमिक सत्य मानते हैं। इस दर्शन के अनुसार अस्तित्व न तो पदार्थों का आकस्मिक समूह है और न ही निरंतर संघर्ष का क्षेत्र, बल्कि एक ऐसी स्वाभाविक, सुव्यवस्थित और संतुलित व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक इकाई अपने निश्चित स्वरूप, गुण, स्वभाव और संबंधों के साथ विद्यमान रहती है। इस दृष्टि से सह-अस्तित्व कोई नैतिक आदर्श या सामाजिक लक्ष्य नहीं, बल्कि स्वयं अस्तित्व का मूल स्वरूप है, जिसे समझना ही मानवीय जीवन और समाज को सही दिशा प्रदान करने का आधार बनता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक सिस्टम्स थिंकिंग (Systems Thinking) तथा रिलेशनल ऑण्टोलॉजी (Relational Ontology) के उन विचारों के अनुरूप है, जो वास्तविकता को परस्पर संबद्ध एवं अविभाज्य संबंधों के तंत्र के रूप में देखते हैं।

मध्यस्थ दर्शन की एक मौलिक विशेषता यह है कि यह अस्तित्व के भौतिक और चेतन दोनों आयामों को समान रूप से स्वीकार करता है। इसके अनुसार 'जीवन' (चैतन्य इकाई) और शरीर (भौतिक इकाई) का सह-अस्तित्व मानव है, जहाँ शरीर भौतिक क्रियाओं का माध्यम है, वहीं 'जीवन' ज्ञान, समझ, मूल्यांकन और निर्णय का केंद्र है। मानव को चेतन सत्ता के रूप में समझा जाता है, जिसकी मूल आकांक्षाएँ— 'सुख', 'शांति', 'विश्वास', 'सम्मान', 'न्याय' और 'समृद्धि'हैं। इन्हें चेतना की आवश्यकता माना जाता है जिसकी निरंतर पूर्ति केवल भौतिक संसाधनों के संचय से संभव नहीं है बल्कि सम्यक् समझ, न्यायपूर्ण संबंध तथा उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन से संभव है। यह दृष्टिकोण मानव विकास के उन समकालीन विचारों से सामंजस्य रखता है, जो जीवनशैली की गुणवत्ता को केवल आर्थिक समृद्धि से नहीं, बल्कि संबंधों, नैतिकता और मानवीय गरिमा से जोड़कर देखते हैं।

मध्यस्थ दर्शन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण आधार इसकी ज्ञानमीमांसा (Epistemology) है। इसके अनुसार ज्ञान केवल बौद्धिक चिंतन, तर्क या इन्द्रियानुभव का विषय नहीं है, बल्कि वह तब पूर्ण माना जाता है जब उसे जीवनशैली में समझा, जिया और सत्यापित किया जाए। इसीलिए मध्यस्थ दर्शन में शिक्षा का उद्देश्य सूचना या व्यावसायिक दक्षता अर्जित करना नहीं, बल्कि व्यक्ति में सम्यक् समझ का विकास करना है, जिससे वह सह-अस्तित्व को पहचानकर अपने व्यवहार, संबंधों और निर्णयों में उसे अभिव्यक्त कर सके। इस दृष्टि से ज्ञान और आचरण एक-दूसरे से पृथक नहीं हैं; ज्ञान की वास्तविकता उसके जीवन में रूपांतरण से सिद्ध होती है। यही कारण है कि मध्यस्थ दर्शन शिक्षा को व्यक्ति, परिवार और समाज में समरसता स्थापित करने का मूल साधन मानता है।

यह विचार समकालीन रूपांतरणकारी अधिगम (Transformative Learning) तथा मूल्य-आधारित शिक्षा (Value-based Education) की अवधारणाओं के साथ भी संगत है।

इन दार्शनिक आधारों के कारण मध्यस्थ दर्शन मानवीय जीवन, समाज और सभ्यता के लिए एक समग्र वैचारिक रूपरेखा प्रस्तुत करता है। सह-अस्तित्व को अस्तित्व का स्वाभाविक आधार मानते हुए यह 'न्याय', 'विश्वास', 'सहभागिता' और 'पारस्परिक पूरकता' को सामाजिक जीवन के मूल सिद्धांतों के रूप में स्थापित करता है।[1]

3. 'मानवीय जीवनशैली' की अस्तित्वगत रूपरेखा

मध्यस्थ दर्शन मानव जीवन को केवल जैविक या मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि चैतन्य इकाई (जिसे 'जीवन' कहा गया है) और जड़ इकाई के सह-अस्तित्व के रूप में समझता है। इसके अनुसार मानव का वास्तविक स्वरूप 'जीवन' (चैतन्य पक्ष) और शरीर (भौतिक पक्ष) का संयुक्त अस्तित्व है, जहाँ दोनों की भूमिकाएँ भिन्न होते हुए भी 'परस्पर-पूरक' हैं। शरीर प्रकृति से प्राप्त एक भौतिक व्यवस्था है जो जैविक एवं शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, जबकि 'जीवन' ज्ञान, समझ, मूल्यांकन और निर्णय का केंद्र है। इसलिए मानवीय जीवनशैली की गुणवत्ता भौतिक संसाधनों के साथ-साथ सह-अस्तित्व की समझ से निर्धारित होती है।

मध्यस्थ दर्शन में 'सम्यक् समझ' को मानवीय जीवनशैली का निर्णायक आधार माना गया है। ऐसी समझ विकसित होने पर व्यक्ति का व्यवहार स्वाभाविक रूप से न्यायपूर्ण, उत्तरदायित्वपूर्ण और संबंध-केंद्रित बनता है। परिणामस्वरूप परिवार में विश्वास और स्नेह, समाज में सहयोग और सहभागिता तथा प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व का भाव विकसित होता है। इस प्रकार व्यक्तिगत परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन को अलग-अलग प्रक्रियाएँ न मानकर एक-दूसरे का पूरक समझा जाता है। यह दृष्टिकोण समकालीन मानव विकास (Human Development) की उस अवधारणा के अनुरूप है, जो मानव की आंतरिक क्षमता, गरिमा तथा संबंधों की गुणवत्ता को विकास का मूल आधार मानती है (UNDP, 2022)।

इस प्रकार मध्यस्थ दर्शन मानवीय जीवन को केवल व्यक्तिगत उपलब्धि या भौतिक समृद्धि की प्रक्रिया नहीं मानता, बल्कि उसे सह-अस्तित्व की व्यवस्था में चेतन सहभागिता के रूप में परिभाषित करता है। जब व्यक्ति स्वयं को अस्तित्व की व्यापक व्यवस्था का अभिन्न अंग समझता है, तब उसका जीवन स्वाभाविक रूप से 'समरसता', 'न्याय', 'उत्तरदायित्व' और 'पारस्परिक-पूरकता' की दिशा में विकसित होता है। यही समझ आगे मानवीय समाज की स्थापना का आधार बनती है, जहाँ व्यक्ति का विकास समाज के विकास से तथा समाज का विकास प्रकृति और समग्र अस्तित्व के साथ समरस संबंधों से अविभाज्य माना जाता है। इस प्रकार मध्यस्थ दर्शन मानवीय जीवन के लिए ऐसी अस्तित्वगत रूपरेखा प्रस्तुत करता है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज और प्रकृति के मध्य एकात्मता स्थापित करते हुए सतत मानव विकास की वैचारिक आधारशिला निर्मित करती है।

4. 'मानवीय समाज' का स्वरूप, विशेषताएँ एवं उद्देश्य

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार 'मानवीय समाज' सह-अस्तित्व की सामाजिक अभिव्यक्ति है। यह केवल व्यक्तियों का समूह, राजनीतिक संगठन अथवा आर्थिक व्यवस्था नहीं है, बल्कि 'सम्यक् समझ', 'न्याय', 'विश्वास' तथा 'पारस्परिक पूरकता' पर आधारित एक जीवंत सामाजिक व्यवस्था है। इस दृष्टि में समाज का निर्माण बाह्य अनुशासन, विधिक नियंत्रण अथवा शक्ति-संतुलन से नहीं होता, बल्कि व्यक्तियों के मध्य स्थापित न्यायपूर्ण संबंधों से होता है। इसलिए समाज का वास्तविक आधार व्यक्ति नहीं, बल्कि व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य संबंध हैं। जब ये संबंध मानवीय मूल्यों पर आधारित होते हैं, तब परिवार से लेकर समस्त मानव समाज तक समरसता की निरंतरता स्थापित होती है। मध्यस्थ दर्शन समाज को परिवार का स्वाभाविक विस्तार मानता है। परिवार वह प्रथम संस्था है जहाँ व्यक्ति 'विश्वास', 'सम्मान', 'स्नेह', 'वात्सल्य', 'ममता', 'श्रद्धा', 'गौरव', 'कृतज्ञता' और 'प्रेम' जैसे मानवीय मूल्यों का अनुभव करता है और उन्हें व्यवहार में जीना सीखता है। यही

[1] मध्यस्थ-दर्शन वाङ्मय में इन शब्दों की विशेष व्याख्या की गयी है।

मूल्य आगे समाज में सहयोग, सहभागिता और उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण का आधार बनते हैं। इस प्रकार मानवीय समाज किसी अनुबंध (contract) या शक्ति-संतुलन का परिणाम नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण संबंधों की निरंतरता का स्वाभाविक विस्तार है। इसी आधार पर मध्यस्थ दर्शन 'अखण्ड समाज' (undivided society) की कल्पना करता है, जहाँ संपूर्ण मानवता स्वयं को एक परिवार के रूप में अनुभव करती है और 'सार्वभौम व्यवस्था' (universal order) की स्थापना की दिशा में अग्रसर होती है।

मानवीय समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें 'न्याय' सामाजिक जीवनशैली का आधार बनता है। मध्यस्थ दर्शन में 'न्याय' का अर्थ केवल विधिक निर्णय या दण्ड व्यवस्था नहीं है, बल्कि प्रत्येक संबंध में निहित स्वाभाविक अपेक्षाओं की पहचान तथा उनकी पूर्ति है। माता-पिता और संतान, गुरु और शिष्य, पति-पत्नी, भाई-बहन, मित्र तथा समाज के अन्य सदस्यों के मध्य संबंध तभी स्थायी और समरस बनते हैं जब वे विश्वास, सम्मान, उत्तरदायित्व और पारस्परिक पूरकता पर आधारित हों। इस प्रकार सामाजिक स्थिरता बाहरी नियंत्रण से नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा न्यायपूर्ण व्यवहार अपनाने से उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप समाज में 'अभय' (fearlessness), सहयोग और विश्वास का वातावरण विकसित होता है, जो किसी भी स्थायी सामाजिक व्यवस्था की मूल आवश्यकता है।

मध्यस्थ दर्शन में समृद्धि और सहभागिता को भी मानवीय समाज के अनिवार्य आधार माना है। समृद्धि को परिवार के स्तर पर देखा जाता है जहाँ सम्मानजनक जीवन सुनिश्चित करने हेतु प्रत्येक परिवार के लिए आवश्यक भौतिक साधनों की पर्याप्त उपलब्धता हो। इसी प्रकार सहभागिता को परिवारों के बीच उत्तरदायित्वों के संबंध के रूप में देखा गया है। इसलिए आर्थिक व्यवस्था का उद्देश्य सहयोग और पूरकता द्वारा सामूहिक समृद्धि को सुनिश्चित करना माना गया है। यह दृष्टिकोण समकालीन सहभागितापूर्ण शासन (Participatory Governance) तथा समावेशी विकास (Inclusive Development) की अवधारणाओं के साथ संवाद स्थापित करता है, किंतु उनका आधार बाह्य नीतियों के स्थान पर मानवीय चेतना और संबंधों में निहित मानता है।

मानवीय समाज का अंतिम उद्देश्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति 'सुख', 'समृद्धि', 'अभय' और 'सह-अस्तित्व' का अनुभव करते हुए दूसरों के 'कल्याण' में भी सहभागी बन सके।[2] इस व्यवस्था में सामाजिक संस्थाएँ स्वयं में लक्ष्य नहीं हैं, बल्कि मानवीय संबंधों में न्याय, विश्वास और पारस्परिक पूरकता की निरंतरता बनाए रखने के साधन हैं। इस प्रकार मानवीय समाज, मध्यस्थ दर्शन के अस्तित्वगत सिद्धांतों का सामाजिक एवं संस्थागत रूप है, जो सह-अस्तित्व के दर्शन को व्यावहारिक जीवन में मूर्त रूप प्रदान करता है। यही अवधारणा अगले अनुभाग का आधार बनती है, जिसमें पारस्परिक पूरकता को व्यक्ति, परिवार, समाज, प्रकृति तथा समग्र अस्तित्व के मध्य संबंधों का मूल संचालन सिद्धांत माना गया है।

5. मानवीय जीवन के प्रत्येक स्तर पर पारस्परिक पूरकता

मध्यस्थ दर्शन का एक मौलिक प्रतिपादन यह है कि पारस्परिक पूरकता सम्पूर्ण अस्तित्व तथा मानवीय जीवन का स्वाभाविक संचालन सिद्धांत है। सह-अस्तित्व की व्यवस्था में प्रत्येक इकाई अपनी विशिष्टता बनाए रखते हुए अन्य इकाइयों की निरंतरता और विकास में योगदान करती है। अतः अस्तित्व का आधार प्रतिस्पर्धा या संघर्ष नहीं, बल्कि पूरकता है। मानव, अपनी चेतना और सम्यक् समझ के कारण, इस सार्वभौमिक व्यवस्था को पहचानने तथा अपनी जीवनशैली, संबंधों और सामाजिक व्यवहार को उसके अनुरूप व्यवस्थित करने में सक्षम है। इस दृष्टि से पारस्परिक पूरकता केवल एक नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व की व्यवहारगत अभिव्यक्ति है, जिसके माध्यम से व्यक्ति, परिवार, समाज और प्रकृति के मध्य समरसता की निरंतरता स्थापित होती है।

पारस्परिक पूरकता का आरंभ व्यक्ति के भीतर 'जीवन' (चैतन्य इकाई) और शरीर के मध्य संतुलन से होता है। जब व्यक्ति चेतना की आकांक्षाओं और शरीर की आवश्यकताओं के मध्य उचित भेद को समझ लेता है, तब उसका जीवन संतुलित, संयमित और

[2] मध्यस्थ-दर्शन वाङ्मय में इन शब्दों पर विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है।

उत्तरदायित्वपूर्ण बनता है। यह आंतरिक समरसता उसके व्यवहार में परिलक्षित होती है और परिवार में 'विश्वास', 'सम्मान', 'स्नेह', 'वात्सल्य', 'ममता', 'श्रद्धा', 'गौरव', 'कृतज्ञता' तथा 'प्रेम' जैसे संबंध-मूल्यों का आधार बनती है। परिणामस्वरूप परिवार केवल जैविक इकाई नहीं रहता, बल्कि मानवीय मूल्यों के संवर्धन और पारस्परिक पूरकता के प्रथम सामाजिक संस्थान के रूप में विकसित होता है।

परिवार से आगे यही सिद्धांत समाज में सहयोग, सहभागिता और न्यायपूर्ण व्यवस्था के रूप में विकसित होता है। मध्यस्थ दर्शन के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता और क्षमता के अनुरूप उत्पादन, सेवा, निर्णय-निर्माण तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों में योगदान देता है, जबकि समाज प्रत्येक व्यक्ति और परिवार के गरिमापूर्ण जीवन-यापन हेतु आवश्यक व्यवस्थाओं की निरंतरता सुनिश्चित करता है। इस प्रकार सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ या प्रतिस्पर्धात्मक श्रेष्ठता प्राप्त करना नहीं, बल्कि प्रत्येक परिवार की समृद्धि तथा समाज की सामूहिक प्रगति सुनिश्चित करना है। यहाँ सामाजिक संबंधों की निरंतरता का आधार 'न्याय' बनता है तथा सहभागिता समाज की सृजनात्मक शक्ति का माध्यम। इस दृष्टिकोण में व्यक्तिगत कल्याण और सामूहिक कल्याण परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं।

मध्यस्थ दर्शन पारस्परिक पूरकता के सिद्धांत को मानव समाज तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे प्रकृति तथा समग्र अस्तित्व के साथ मानव के संबंधों तक विस्तारित करता है। प्रकृति को केवल संसाधनों का स्रोत नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व की अभिन्न व्यवस्था माना गया है, जिसके साथ मानव का संबंध संरक्षण, संवर्धन और उत्तरदायित्व पर आधारित होना चाहिए। इसलिए उत्तरदायी उत्पादन, संयमित उपभोग, संसाधनों का न्यायपूर्ण उपयोग तथा पर्यावरणीय संतुलन पारस्परिक पूरकता की स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ हैं। यह दृष्टिकोण समकालीन पारिस्थितिक नैतिकता (Ecological Ethics) तथा सतत विकास (Sustainable Development) के उन विचारों के साथ संवाद स्थापित करता है, जो मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित संबंधों को विकास की अनिवार्य शर्त मानते हैं।

इस प्रकार पारस्परिक पूरकता मध्यस्थ दर्शन में केवल सामाजिक सद्भाव का सिद्धांत नहीं, बल्कि व्यक्ति से लेकर समग्र अस्तित्व तक व्याप्त संबंधों की आधारभूत व्यवस्था है। यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि सम्यक् समझ से न्यायपूर्ण संबंध उत्पन्न होते हैं, न्यायपूर्ण संबंधों से विश्वास विकसित होता है, विश्वास से सहयोग और सहभागिता सुदृढ़ होती है तथा सहयोग से समृद्ध, समरस और सतत समाज का निर्माण होता है। यही कारण है कि मध्यस्थ दर्शन में पारस्परिक पूरकता को मानवीय समाज का आधार तथा सतत मानव विकास का केंद्रीय सिद्धांत माना गया है। इसी सिद्धांत को सामाजिक संस्थाओं के स्तर पर व्यवस्थित रूप देने के लिए मध्यस्थ दर्शन मानवीय समाज के कार्यकरण के पाँच आयामों की अवधारणा प्रस्तुत करता है, जिनकी चर्चा अगले अनुभाग में की गई है।

6. मानवीय समाज के व्यावहारिक पाँच आयाम

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानवीय समाज केवल मानवीय मूल्यों पर आधारित संबंधों का समूह नहीं है, बल्कि एक ऐसी सुव्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था है जिसकी निरंतरता कुछ मूलभूत कार्यों के संतुलित संचालन पर निर्भर करती है। आचार्य ए. नागराज ने इन आवश्यक कार्यों को पाँच परस्पर संबद्ध आयामों—शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य-संयम, उत्पादन-कार्य, विनिमय-कोष तथा न्याय-सुरक्षा—के रूप में प्रतिपादित किया है। ये पाँचों आयाम स्वतंत्र या पृथक संस्थागत क्षेत्र नहीं हैं, बल्कि समाज के ऐसे परस्पर पूरक कार्य हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति, परिवार और समुदाय के मध्य समरसता, समृद्धि तथा न्याय की निरंतरता बनी रहती है। इनका समन्वित संचालन ही मानवीय समाज को स्थायित्व, संतुलन और आत्मनिर्भरता प्रदान करता है।

इन आयामों में शिक्षा-संस्कार को समाज का आधारभूत आयाम माना गया है, क्योंकि यही व्यक्ति में सम्यक् समझ, मानवीय मूल्यों और उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण का विकास करता है। मध्यस्थ दर्शन में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन, सूचना या व्यावसायिक दक्षता प्राप्त करना नहीं है, बल्कि व्यक्ति को सह-अस्तित्व की वास्तविकता का बोध

कराना तथा उसे न्यायपूर्ण और उत्तरदायी जीवन जीने के योग्य बनाना है। इसी प्रकार स्वास्थ्य–संयम व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा व्यवहारगत संतुलन का आधार है। संयम का अर्थ केवल अनुशासन नहीं, बल्कि आवश्यकतानुसार उपभोग, संतुलित जीवनशैली तथा संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग से है, जिसके बिना न तो व्यक्ति का विकास संभव है और न ही समाज की स्थिरता।

तीसरा आयाम उत्पादन–कार्य समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से संबंधित है। मध्यस्थ दर्शन में उत्पादन का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना नहीं, बल्कि प्रत्येक परिवार की आवश्यकताओं के अनुरूप समृद्धि सुनिश्चित करना है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार उत्पादक कार्य में सहभागी होता है, जिससे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। उत्पादन के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा चौथा आयाम विनिमय–कोष है, जिसका उद्देश्य संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण, उत्तरदायित्वपूर्ण विनिमय तथा भविष्य के लिए आवश्यक संरक्षण सुनिश्चित करना है। यहाँ विनिमय को प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त करने का माध्यम न मानकर पारस्परिक हित और सहयोग की प्रक्रिया के रूप में समझा गया है। इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था का उद्देश्य कुछ व्यक्तियों की समृद्धि नहीं, बल्कि प्रत्येक परिवार की गरिमापूर्ण जीवन-व्यवस्था सुनिश्चित करना है।

पाँचवाँ आयाम न्याय–सुरक्षा है, जो संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का नैतिक और संस्थागत आधार प्रदान करता है। मध्यस्थ दर्शन में न्याय का अर्थ प्रत्येक मानवीय संबंध में निहित स्वाभाविक अपेक्षाओं की पहचान तथा उनकी निरंतर पूर्ति से है। जब संबंध न्यायपूर्ण होते हैं, तब समाज में विश्वास, सहयोग और अभय का वातावरण विकसित होता है। परिणामस्वरूप सुरक्षा बाह्य नियंत्रण, दण्ड या भय पर आधारित न होकर सामाजिक विश्वास और उत्तरदायित्वपूर्ण सहभागिता से उत्पन्न होती है। इस दृष्टि से न्याय–सुरक्षा केवल शासन का विषय नहीं, बल्कि संपूर्ण सामाजिक जीवन का आधार है।

इन पाँचों आयामों का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि ये परस्पर निर्भर एवं पूरक हैं। शिक्षा–संस्कार सम्यक् समझ का विकास करता है; स्वास्थ्य–संयम सक्षम एवं संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण करता है; उत्पादन–कार्य आवश्यक समृद्धि सुनिश्चित करता है; विनिमय–कोष संसाधनों के न्यायपूर्ण उपयोग एवं संरक्षण को व्यवस्थित करता है; तथा न्याय–सुरक्षा समाज में विश्वास, समरसता और अभय की निरंतरता बनाए रखता है। इस प्रकार ये पाँचों आयाम मिलकर पारस्परिक पूरकता को सामाजिक संस्थाओं में मूर्त रूप देते हैं और मानवीय समाज के लिए एक ऐसी संस्थागत संरचना निर्मित करते हैं, जो न्यायपूर्ण, समृद्ध, समरस तथा सतत मानव विकास का आधार बनती है।

समकालीन दृष्टि से देखा जाए तो ये पाँच आयाम संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के विभिन्न पक्षों यथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, उत्तम स्वास्थ्य, समावेशी आर्थिक विकास, असमानताओं में कमी तथा न्यायपूर्ण संस्थाओं के साथ संवाद स्थापित करते हैं। किंतु मध्यस्थ दर्शन इन सभी को पृथक नीतिगत क्षेत्रों के रूप में नहीं, बल्कि एक एकीकृत मानवीय व्यवस्था के परस्पर पूरक आयामों के रूप में देखता है। यही इसकी मौलिक विशेषता है, जो इसे प्रचलित विकास प्रतिमानों से भिन्न और अधिक समग्र बनाती है (United Nations, 2015; Sachs et al., 2019)।

7. सतत मानव विकास के लिए मध्यस्थ दर्शन की प्रासंगिकता

इक्कीसवीं शताब्दी में सतत मानव विकास (Sustainable Human Development) वैश्विक नीति, शिक्षा, शासन तथा विकास अध्ययन का एक केंद्रीय विषय बन चुका है। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals – SDGs) ने गरीबी, स्वास्थ्य, शिक्षा, लैंगिक समानता, जलवायु परिवर्तन और संस्थागत सुदृढ़ता जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण आयामों को समाहित किया है, फिर भी समकालीन विकास-विमर्श यह स्वीकार करता है कि केवल नीतिगत सुधार, आर्थिक वृद्धि और तकनीकी नवाचार मानवता के समक्ष उपस्थित जटिल संकटों का स्थायी समाधान प्रदान नहीं कर सकते (United Nations, 2015; IPCC, 2023)। पर्यावरणीय असंतुलन, सामाजिक विखंडन, मानसिक तनाव, बढ़ती असमानताएँ तथा मानवीय संबंधों में विश्वास का क्षरण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि विकास का प्रश्न मूलतः मानव की समझ, जीवन-दृष्टि और व्यवहार से जुड़ा हुआ है। इस संदर्भ में मध्यस्थ दर्शन एक ऐसा वैकल्पिक दृष्टिकोण

प्रस्तुत करता है, जो सतत मानव विकास का आधार बाह्य संसाधनों या संस्थागत व्यवस्थाओं के स्थान पर सम्यक् समझ, न्यायपूर्ण संबंधों तथा सह-अस्तित्वमूलक जीवन-दृष्टि में स्थापित करता है।

मध्यस्थ दर्शन की विशेषता यह है कि यह विकास को आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और पारिस्थितिकी क्षेत्रों में विभाजित करके नहीं देखता, बल्कि उन्हें एक ही मानवीय व्यवस्था के परस्पर पूरक आयामों के रूप में समझता है। इसके अनुसार व्यक्ति का सुख, परिवार की समरसता, समाज का न्याय, अर्थव्यवस्था की समृद्धि तथा प्रकृति का संतुलन एक-दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं। इसलिए विकास का उद्देश्य केवल आय, उत्पादन या उपभोग में वृद्धि नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज के मध्य ऐसी व्यवस्था स्थापित करना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सम्मानपूर्वक जीवन जी सके तथा दूसरों के कल्याण में सहभागी बन सके। इस प्रकार मध्यस्थ दर्शन प्रतिस्पर्धा से पूरकता, असीमित उपभोग से आवश्यकतानुसार समृद्धि, तथा बाह्य नियंत्रण से आत्मसंयम और उत्तरदायित्वपूर्ण सहभागिता की ओर विकास की दिशा परिवर्तित करता है। यह दृष्टिकोण समकालीन Human Development और Well-being आधारित विकास प्रतिमानों के साथ सार्थक संवाद स्थापित करता है।

मध्यस्थ दर्शन की प्रासंगिकता केवल वैचारिक स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सार्वजनिक नीति (Public Policy), शिक्षा, शासन, अर्थव्यवस्था तथा संस्थागत विकास के लिए भी महत्त्वपूर्ण दिशानिर्देश प्रदान करता है। इस दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सम्यक् समझ और मानवीय मूल्यों का विकास होना चाहिए; शासन का आधार न्याय, सहभागिता और उत्तरदायित्व होना चाहिए; आर्थिक व्यवस्था का लक्ष्य प्रत्येक परिवार की समृद्धि सुनिश्चित करना होना चाहिए; तथा सामाजिक संस्थाओं का उद्देश्य विश्वास, सहयोग और पारस्परिक पूरकता को सुदृढ़ करना होना चाहिए। इस प्रकार भौतिक प्रगति को नैतिक उत्तरदायित्व और पारिस्थितिक संरक्षण के साथ जोड़ा जाता है। परिणामस्वरूप, सामाजिक असमानता, हिंसा, उपभोगवाद और पर्यावरणीय संकट जैसी समस्याओं के मूल कारणों को संबोधित करने के लिए एक समग्र वैचारिक आधार प्राप्त होता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक Systems Thinking, Ecological Ethics तथा Transformative Education की अवधारणाओं के साथ भी गहन साम्य रखता है।

इस दृष्टि से मध्यस्थ दर्शन सतत मानव विकास के विमर्श में एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक और व्यावहारिक योगदान प्रस्तुत करता है। यह सतत विकास की अवधारणा को केवल पर्यावरण संरक्षण या आर्थिक नियोजन तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे मानवीय चेतना के विकास, न्यायपूर्ण सामाजिक संबंधों, उत्तरदायित्वपूर्ण संस्थाओं और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्वपूर्ण सहभागिता तक विस्तारित करता है। आज जब वैश्विक समुदाय ऐसे विकास प्रतिमान की खोज में है जो समानता, न्याय, सामाजिक समरसता और पारिस्थितिक संतुलन को एक साथ सुनिश्चित कर सके, तब मध्यस्थ दर्शन एक अस्तित्वगत (Existential) तथा सभ्यतामूलक (Civilizational) रूपरेखा के रूप में उभरता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सतत विकास को बाह्य परिवर्तन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि मानव की समझ, संबंधों और सामाजिक व्यवस्था के रूपांतरण की प्रक्रिया के रूप में देखता है। यही दृष्टिकोण इसे समकालीन विकास-विमर्श में एक मौलिक और सार्थक वैकल्पिक प्रतिमान के रूप में स्थापित करता है।

8. उपसंहार

सैद्धांतिक दृष्टि से यह शोधपत्र सतत मानव विकास के समकालीन विमर्श में महत्त्वपूर्ण योगदान का प्रयास है। सतत विकास के प्रचलित साहित्य में 'समझ' के आयाम पर पर्याप्त चर्चा नहीं मिलती, जो मध्यस्थ-दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण आयाम है। मध्यस्थ दर्शन ऐसा कर पाता है क्योंकि वह 'सह-अस्तित्व' को अस्तित्व का शाश्वत सत्य प्रस्तुत कर, इस सत्य को समझने का प्रस्ताव दे रहा है। इस कारण मध्यस्थ-दर्शन हमें सस्टेनेबिलिटी की अस्तित्वगत रूपरेखा प्रस्तुत करता है - सस्टेनेबिलिटी कोई विचारधारा नहीं बल्कि इस अस्तित्व का स्वाभाविक चरित्र है।

समकालीन विमर्श में अस्तित्व दर्शन का प्रस्ताव यक़ीनन एक मौलिक योगदान सिद्ध हो सकता है।

मध्यस्थ-दर्शन के व्यावहारिक पक्ष को धरातल पर ले जाने के लिए 'शिक्षा-संस्कार' आयाम पर ए.पी.टी.यू. (पहले जिसका नाम यू.पी.टी.यू. था), आई.आई.आई.टी.-हैदराबाद में बी.टेक. विद्यार्थियों के लिए "ह्यूमन वैल्यूज़" कोर्स के माध्यम से काफ़ी कार्य किया गया है। इनसे दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उभरे हैं – 1. वैश्वीकरण व सूचना-प्रौद्योगिकी से उत्पन्न बाहरी प्रभाव, शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से सस्टेनेबल जीवनशैली की ओर किए जा रहे प्रयास में में अवरोध पैदा कर रहा, और 2. 'सम्यक् समझ' (सह-अस्तित्व की अस्तित्वपरक समझ) विकसित करने के लिए 'जीवन जागृति' (consciousness awakening) के लिए विभिन्न मेडिटेशन विधियों का समावेश कैसे किया जाए। भविष्य में इस दिशा में गहन शोध की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. Arya, R.S. (1995) "Sustainable Agriculture System and Development" (Doctoral dissertation, IIT Delhi).
2. Babu, G. (2020). *Studies on the inherent interconnectedness and co-existence in nature for evolving and evaluating sustainable socio-technological systems* (Doctoral dissertation, IIT Delhi).
3. Capra, F., & Luisi, P. L. (2014). *The systems view of life: A unifying vision.* Cambridge University Press.
4. George, A. (1994) "Study of a Tribal Society in Kerala in Search of a Holistic Worldview" (Doctoral dissertation, IIT-Delhi).
5. Intergovernmental Panel on Climate Change. (2023). *Climate change 2023: Synthesis report*. IPCC. https://www.ipcc.ch/report/ar6/syr/
6. Meadows, D. H. (2008). *Thinking in systems: A primer*. Chelsea Green Publishing.
7. Nagraj, A. (2009). Samadhanatmak Bhautikvaad. Jeevan Vidya Prakashan.
8. Nagraj, A. (2009). Aavartansheel Arthashastra. Jeevan Vidya Prakashan.
9. Nagraj, A. (2009). Vyavaharvaadi Samajshastra. Jeevan Vidya Prakashan.
10. Rockström, J., Gupta, J., Qin, D., Lade, S. J., Abrams, J. F., Andersen, L. S., Armstrong McKay, D. I., Bai, X., Bala, G., Broadgate, W., et al. (2023). Safe and just Earth system boundaries. *Nature, 619*(7968), 102–111. https://doi.org/10.1038/s41586-023-06083-8
11. Sachs, J. D., Schmidt-Traub, G., Kroll, C., Lafortune, G., Fuller, G., & Woelm, F. (2019). *Sustainable Development Report 2019*. Bertelsmann Stiftung.
12. Sterling, S. (2001). *Sustainable education: Re-visioning learning and change.* Green Books.
13. United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 agenda for sustainable development.* United Nations.
14. United Nations Development Programme. (2022). *Human Development Report 2021/2022: Uncertain times, unsettled lives: Shaping our future in a transforming world.* UNDP.
15. UNESCO. (2021). *Reimagining our futures together: A new social contract for education.* UNESCO Publishing.

चेतना की पारिस्थितिकी: भारतीय समाज और संधारणीयता (सस्टेनेबिलिटी)

नंदिता शाह

डिज़ाइन परामर्शदाता एवं प्रशिक्षिका (फैशन एवं शिल्प), नवी मुंबई

ई-मेल:

nandita.shah.research@gmail.com

सारांश

इस शोधपत्र का प्रमुख तर्क यह है कि भारत का तत्कालीन पर्यावरण संकट वास्तव में एक सभ्यतागत विफलता है जो कि हमारी सभ्यतागत दृष्टिकोण के परित्याग के कारण हुई है। पारम्परिक भारतीय दृष्टि ने इस धरा को उपभोग (भोग) का स्रोत न मान कर्त्तव्य (कर्म) की भूमि माना है।

आधुनिकता के प्रभाव में हुआ दृष्टि परिवर्तन भारत में पर्यावरण संकट का मूल कारण है। उत्तराखंड के हथकरघा बुनकरों और राजस्थान के राइका पशुपालकों के बीच एक दशक के अध्ययन के आधार पर यह पत्र प्रस्तावित करता है कि पारंपरिक भारतीय समाज प्रकृति को चैतन्यमयी पहचानकर सस्टेनेबल जीवनशैली से जीते आया है।

आनंद कुमारस्वामी द्वारा प्रस्तावित श्रम तत्वमीमांसा (metaphysics of labor) को आधार मानकर हस्तकला के औद्योगीकरण का परीक्षण करते हुए यह शोधपत्र दर्शाता है कि कैसे उत्पादन विधि का धर्म[1] से विच्छेद होने के कारण सामाजिकता और पारिस्थितिकी दोनों का विनाश हुआ है। पारम्परिक बुद्धिमत्ता ने उत्पादन विधि के क्षेत्र में उन्नत सामग्री विज्ञान (Materials Science) को रूप दिया है। जैसे, रसशास्त्र में भस्मीकरण (calcination and purification process) ने आधुनिक नैनो-प्रौद्योगिकी से सदियों पहले जैव-अनुकूल (biocompatible) जड़ी-बूटी-युक्त धातुओं के नैनोकणों को तैयार किया, जिससे न्यूनतम सामग्री पदचिह्न (material footprint) के माध्यम से जैव-उपलब्धता (bioavailability) को बेहतर बनाने में सहायता मिली।

यह शोधपत्र प्रस्ताव देता है कि सस्टेनेबिलिटी के लिए साक्षी भाव (witness consciousness) की पुनर्स्थापना आवश्यक है।

[1] धर्म शब्द की शास्त्रीय परिभाषा "धारयति इति धर्मः" है। नवज्योति सिंह के अनुसार, धर्म का आशय उन विधियों और प्रवृत्तियों से है जो मानव सहज होती हैं, जो मानवीयता का आधार बनती हैं। मध्यस्थ-दर्शन के प्रणेता अग्रहार नागराज ने "अस्तित्वपरक प्रयोजन" के अर्थ में भी इसका प्रयोग किया है। सामान्य बोल-चाल में धर्म शब्द "गुण", "कर्त्तव्य" और "मज़हब" के अर्थ में भी इस्तेमाल होता है।

मुख्य शब्द: सस्टेनेबिलिटी; Ecology of Consciousness; Indian Knowledge Systems (IKS); प्रकृति-पुरुष; साक्षी भाव; धर्म; Indigenous knowledge

1. प्रगति का संकुचन स्वरूप

मारवाड़ के ग्रामीण इलाकों में जब किसी राइका चरवाहे से पूछा जाता है कि उसके पास कितने पशु हैं, तो वह अक्सर उन्हें ज़ोर से गिनने से मना कर देता है। ऐसा करना अशुभ मानता है; झुंड की भलाई कोई ऐसा आंकड़ा नहीं है जिसे जोड़कर देख लिया जाए, बल्कि यह एक ऐसा रिश्ता है जिसे सहेजा जाना चाहिए। दायित्वों के एक जीवंत ताने-बाने को एक व्यावसायिक आंकड़े तक सीमित करने से इनकार करने की यही वह प्रवृत्ति है, जिसे आधुनिक भारत ने खो दिया है।

भारत का पर्यावरण संकट मूल रूप से प्रौद्योगिकी या नीति की विफलता नहीं है, बल्कि उस सिद्धांत का एक सभ्यतागत परित्याग है जो इस पृथ्वी को केवल भोग की वस्तु मानने के बजाय कर्म (कर्त्तव्य) की भूमि मानता है। उत्तराखंड के वन गुर्जर परिवार कार्बन पदचिह्न (carbon footprint) पर चर्चा नहीं करते, और राइका समुदाय के पास पारिस्थितिक संतुलन के लिए कोई विशिष्ट शब्द नहीं है। फिर भी, उनका जीवन एक ऐसे स्थायित्व (निरंतरता) को साकार करता है जिसकी नकल करने में जटिल आधुनिक ढांचे भी विफल रहते हैं। हमने उन दार्शनिक और नैतिक ढांचों को छिन्न-भिन्न कर दिया है, जिनके भीतर सहजता और सादगी से जीना जीवन का एक सामान्य स्वरूप हुआ करता था।

औपनिवेशिकोत्तर (Post-colonial) आज़ाद भारत ने प्रगति को पश्चिमी औद्योगिक मापदंडों से मापा है, जो इस धारणा पर आधारित है कि प्रकृति दोहन की जाने वाली एक निर्जीव वस्तु है, विकास अपने आप में अच्छा है और मानवीय मूल्य उपभोग से परिभाषित होते हैं। हमने इन विकल्पों को अपनी संस्थाओं, नीतियों और इच्छाओं के रूप में स्वीकार कर लिया। जैसा कि आनंद कुमारस्वामी (1947) ने भारतीय संक्रमण (transition) की अपनी आलोचनाओं में चेतावनी देते हुए कहा था कि पश्चिमी उद्योगवाद को बिना सोचे-समझे अपनाना उपयोगिता और संस्कृति के बीच एक हिंसक विभाजन पैदा करता है, जिससे एक सामान्य नागरिक यंत्रीकृत भूख का महज़ एक पुर्जा बनकर रह जाता है। जैसा कि कुमारस्वामी (1956) ने तर्क दिया था, पारंपरिक कारीगर का व्यवसाय कभी भी एक साधारण आर्थिक लेन-देन नहीं था, बल्कि एक पवित्र अनुष्ठान (liturgical operation) था जहाँ उद्योग और कला, भौतिक आवश्यकता और आध्यात्मिक उद्देश्य, संरचनात्मक रूप से अविभाज्य थे।

आदिलाबाद के रविंद्र शर्मा जिन्हें पारम्परिक कलाओं में महारथ हासिल थी और जिनके भारतीय कला-दर्शन पर अनेक विवेचन हैं, उनके अनुसार हिंदुस्तानी समाज की सदियों पुरानी स्थिरता और मज़बूती का मूल कारण पारम्परिक समग्र जीवन दृष्टि (Holistic Perspective) में छिपा है। इसे बेहद सरल शब्दों में निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

> *"नदी जब धीमे-धीमे बहती है तो बहुत कुछ बदलता है। वायु जब मंद-मंद बहती है तो बहुत कुछ बदलता है। जब यह दोनों तीव्र गति में आ जाये तो बहुत नाश हो जाता है। इस तरह जब जीवनशैली धीमी गति की हो तो बहुत कुछ बदलता हैं। जीवनशैली अगर तीव्र गति की हो जाए तो बहुत कुछ खत्म हो जाता है। जीवनशैली धीमी होती है तो सोच की गति तीव्र होती है। और जीवनशैली तीव्र गति की हो जाए तो सोच की गति एकदम मंद पड़ जाती है"।*
>
> **(रविन्द्र शर्मा, 2016)**

बड़े पैमाने पर 'उत्पादन' के लिए संसाधनों के केंद्रीकरण, एक ही संकेंद्रित क्षेत्र में ऊर्जा के अत्यधिक उपयोग और उसी सीमित क्षेत्र में कचरे के निपटान की आवश्यकता होती है। इसका परिणाम ज़हरीली नदियाँ, बंजर होती मिट्टी और सांस लेने योग्य न रह गई हवा के रूप में सामने आता है। गांधी जी ने कहा था कि पृथ्वी के पास हर किसी की ज़रूरत के लिए तो पर्याप्त है, लेकिन किसी एक के लोभ के लिए नहीं। ज़रूरत सीमित और स्वाभाविक होती है; लेकिन लालच—एक ऐसी इच्छा जो किसी बड़े व्यवस्था-क्रम में अपनी वास्तविक स्थिति के बोध से कट चुकी हो—असीमित होता है। एक सीमित धरती पर असीमित भूख का केवल एक ही अंजाम (मंज़िल) हो सकता है। भारत और इटली के शीर्ष फैशन संस्थानों में एक

डिज़ाइनर के रूप में प्रशिक्षित होने के बाद, मैंने फैशन और कपड़ा क्षेत्र में कई साल बिताए—जो पृथ्वी पर सबसे अधिक पारिस्थितिक तबाही मचाने वाले उद्योगों में से एक है, क्योंकि इसे अंतहीन और इस्तेमाल करके फेंक दी जाने वाली इच्छाओं को पैदा करने के लिए ही तैयार किया गया है। मैं वहाँ से एक बुनियादी सवाल के साथ वापस लौटी: वस्तु निर्माण (making) के वास्तविक उद्देश्य की एक बिल्कुल अलग समझ को अपनाते हुए चीज़ों का उत्पादन करने का आखिर क्या अर्थ होगा?

2. प्रकृति- एक जीवित बृहद् संसार

भारतीय परंपरा प्रकृति को निर्जीव वस्तु के रूप में देखने से इनकार करती है। सांख्य और वेदांत दर्शन में, प्रकृति (भौतिक संसार) अस्तित्व का एक गतिशील और बुद्धिमान आधार है जो पुरुष (सार्वभौमिक चेतना) द्वारा जीवंत है। जंगल, नदी और पशु चेतना से युक्त कर्ताओं (agents) का एक समुदाय है, जिसमें मनुष्य एक प्रतिभागी (हिस्सा) है, न कि उसका स्वामी या संप्रभु।

यह बात सूक्ष्म-समष्टि (micro-macrocosmic) के इस अंतर्ज्ञान से और अधिक स्पष्ट हो जाती है: "यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे" —अर्थात जो इस शरीर में है, वही संपूर्ण ब्रह्मांड में है। जिन पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से मानव शरीर बना है, उन्हीं से यह संसार बना है। इसलिए, किसी नदी को ज़हरीला बनाना वास्तव में अपनी ही शारीरिक संरचना के एक तत्व को दूषित करना है। आयुर्वेद परम्परा में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि जब बाहरी वातावरण में गुणवत्ता क्षीण होती है, तब मानव शरीर विज्ञान के भीतर तदनुसार गुणवत्ता क्षीण होती है।

यह वास्तविकता तब बिल्कुल प्रत्यक्ष और जीवंत हो उठती है जब आप नील (indigo), मजीठ की जड़ (madder root) या अनार के छिलके जैसे प्राकृतिक रंगों के साथ काम करते हैं। ये केवल कच्चे माल (inputs) नहीं हैं; ये अपने भीतर उस मिट्टी, मौसम और पानी की भौतिक बुद्धिमत्ता को समेटे हुए होते हैं। इन्हें पेट्रोकेमिकल से बने सिंथेटिक (कृत्रिम) रंगों से बदल देना इस गहरे रिश्ते को खामोश कर देता है, जिससे एक आत्मीय संवाद महज़ एक व्यापारिक लेन-देन में बदल जाता है। चेतना (जीवन का संचार करने वाली शक्ति) समस्त जीवन में प्रवाहित होती है। इस संसार को कर्ताओं (subjects) के एक साझा समुदाय के रूप में देखने का स्वाभाविक परिणाम ही अहिंसा का आचरण है। स्थायित्व (sustainability) वास्तव में सही और संतुलित संबंधों की एक नैतिक और आध्यात्मिक स्थिति है। नीतियां बाहरी व्यवहार को तो बाध्य कर सकती हैं, लेकिन वे आत्मीय संबंध पैदा नहीं कर सकतीं। उसके लिए चेतना में बदलाव की आवश्यकता होती है, जहाँ बाहरी साधन—जैसे कार्बन टैक्स, निर्धारित लक्ष्य और प्रौद्योगिकियाँ—नहीं पहुँच सकते।

3. हस्तकला का बिखरना: एक व्यावहारिक अध्ययन

इस विघटन (disruption) का सबसे स्पष्ट और मापने योग्य रूप हमारी पारंपरिक हस्तकला में दिखाई देता है, जहाँ दर्शन, पारिस्थितिकी (ecology) और आजीविका मिलकर एक एकल, एकीकृत ताने-बाने (matrix) का निर्माण करते थे।

उत्तराखंड के हथकरघा बुनकरों का उदाहरण लें। वहाँ बुनकर, चरवाहा, किसान और कताई करने वाले एक-दूसरे पर निर्भर नेटवर्क (पारस्परिक तंत्र) के रूप में काम करते थे। स्थानीय ऊन की कतरन (shearing) से कताई और बुनाई की जीवनावधि (longevity) और उसकी पहनने योग्य उपयोगिता अधिकतम हो जाती थी। वे लोग सामग्रियों को इतने करीब से जानते-समझते थे कि उसे बर्बाद करने का कोई सवाल ही नहीं उठता था। हालाँकि, पावरलूम (बिजली से चलने वाले करघों) और सिंथेटिक (कृत्रिम) धागों के आने से इस स्थानीय तार्किकता का ताना-बाना बिखर गया। दूर की औद्योगिक मिलों से आने वाले एक्रिलिक और पॉलिएस्टर के धागों ने क्षेत्रीय ऊन की जगह ले ली, जिसके कारण पहाड़ियों से स्थानीय समुदाय गायब हो गए। पौधों से मिलने वाले प्राकृतिक रंगों का स्थान ज़हरीले रासायनिक रंगों ने ले लिया, जिसने मिलों से निकले हुए पानी को खतरनाक औद्योगिक कचरे में बदल दिया।

बुनकर, जो कभी सामग्री से जुड़े समूचे ज्ञान की पूरी शृंखला का संरक्षक हुआ करता था, अब वह एक औद्योगिक पुर्ज़े में बदलकर रह गया है, जो एक औद्योगिक मशीन का पेट भरने और गुमनाम सामग्रियों के सहारे दूरदराज़ के बाज़ार के लिए उत्पादन करने

को मजबूर है। रविन्द्र शर्मा के अनुसार, पारंपरिक कारीगर एक मानकीकृत (standardized) बाज़ार के बजाय एक 'समाज' का हिस्सा था। एक समाज विभिन्न संरचनात्मक स्तरों पर सामंजस्य के साथ सह-अस्तित्व में रहता है, जो "एक आकार, एक कीमत सबके लिए" वाले व्यावसायिक मॉडल का प्रतिरोध करता है।

इस बदलाव ने निर्माण (making) को उसके धर्म से वंचित कर दिया। पारंपरिक हस्तकला एक कर्म (कर्त्तव्य) प्रधान साधना थी जहाँ बुनाई के माध्यम से 'स्वधर्म' (व्यक्तिगत वैश्विक कर्त्तव्य) की पूर्ति होती थी। गीता की 'निष्काम कर्म' की शिक्षा—अर्थात पूर्ण समर्पण और कुशलता के साथ कर्म करना लेकिन उसके फल के प्रति आसक्ति न रखना—करघे पर पूरी एकाग्रता और संरचनात्मक ईमानदारी के रूप में जीवंत होती थी। औद्योगीकरण ने इसे बदल दिया, जिसे कुमारस्वामी (1934) ने कारीगर का एक "बुद्धिहीन उपकरण" (unintelligent instrument) के रूप में होने वाला पतन कहा है—जिसका परिणाम 'कर्म-विहीन निर्माण' के रूप में सामने आया। यानी केवल लाभ के लिए उत्पादन, जो सामग्री, समुदाय या पारिस्थितिक परिणामों से पूरी तरह कट चुका है। जैसा कि कुमारस्वामी (1956) ने प्रतिपादित किया था, जब कला को उपयोगिता से अलग कर दिया जाता है, तब उद्योग क्रूड हो जाता है और विनिर्माण (manufacturing) मानव व वैश्विक संतुलन के व्यवस्थित विनाश का रूप ले लेता है।

राजस्थान के राइका समुदाय का उदाहरण एक पशुपालन और चरवाहा परिप्रेक्ष्य से इसी पतन (collapse) को दर्शाता है। उनका खानाबदोश या प्रवासी जीवन—जिसे अक्सर सरकारी नीतियों द्वारा एक पिछड़ेपन के रूप में खारिज कर दिया जाता है और उन्हें एक जगह बसाने की कोशिश की जाती है—वास्तव में एक अत्यंत परिष्कृत और उन्नत भूमि प्रबंधन प्रणाली है। चारागाहों की क्षमता के साथ तालमेल बैठाते हुए मौसमी चक्रों में प्रवास करना, चारागाहों को फिर से हरा-भरा होने और पोषित होने का समय देता है। जब व्यावसायिक बाड़बंदी (commercial fencing) और सिकुड़ती साझा ज़मीनों (commons) के कारण इनके प्रवास के रास्ते बाधित होते हैं, तो पीढ़ियों से संचित पारिस्थितिक ज्ञान का एक पूरा खज़ाना ढह जाता है। आज राइका समुदाय जिस आधुनिक गरीबी का सामना कर रहा है, वह उनके पारंपरिक ढांचे की विफलता नहीं है, बल्कि एक औद्योगिक दृष्टिकोण द्वारा उस ढांचे को जबरन छिन्न-भिन्न करने का सीधा परिणाम है।

4. अविस्मरणीय समुदाय—कुछ उदाहरण

कुछ विशिष्ट समुदाय व्यावहारिक जीवन में जिए जाने वाले स्थायित्व (sustainability) का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। मैं राजस्थान के बिश्नोई समुदाय को न केवल उनके इतिहास के माध्यम से जानती हूँ, बल्कि उनके घरों के माध्यम से भी जानती हूँ, जहाँ घायल हिरण के बच्चों (शावकों) को अपने ख़ुद के बच्चों की तरह पाला-पोसा जाता है, और जहाँ किसान काले हिरणों द्वारा चर ली गई फसलों को सह-जीवों को दिए जाने वाले एक स्वाभाविक किराए (लगान) के रूप में देखते हैं। जीवंत संसार के प्रति उनका यह सम्मान साझा चेतना की एक सहज, पूर्व-तार्किक (pre-rational) और सुस्थापित स्वीकृति है।

यह दर्शन ऐतिहासिक रूप से सन 1730 में खेजड़ली गाँव में उस समय प्रकट हुआ, जब जोधपुर के महाराजा के सैनिक एक नए महल के निर्माण के लिए खेजड़ी के पेड़ों को काटने पहुँचे। अमृता देवी एक पवित्र पेड़ से लिपट गईं और शहीद हो गईं, जिसके बाद उनकी तीनों बेटियों ने भी यही किया। महाराजा द्वारा पेड़ काटने पर रोक लगाने और उस पूरे क्षेत्र को स्थायी रूप से संरक्षित घोषित करने से पहले, पेड़ों की रक्षा करते हुए कुल 363 बिश्नोइयों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। बिश्नोई समुदाय के लिए, एक पारिस्थितिकी तंत्र (ecosystem) की रक्षा करना कोई सोच-समझकर किया गया बहादुरी का कारनामा नहीं था, बल्कि अपने परिवार की रक्षा करने जैसा था।

1970 के दशक में गढ़वाल की पहाड़ियों में हुआ चिपको आंदोलन भी इसी नैतिक धरातल से उपजा था। जब गाँव की महिलाओं ने कुल्हाड़ियों और पेड़ों के बीच अपने शरीरों को ढाल बना लिया, तो वे वास्तव में एक जीवंत उपस्थिति के रूप में जंगल के साथ अपने अस्तित्वगत संबंध को स्थापित कर रही थीं। ये पारिस्थितिकी तंत्र (ecosystems) सदियों तक इसलिए बने रहे क्योंकि इनका प्रबंधन समुदायों द्वारा किया जाता था। औपनिवेशिक वन कानूनों ने, जीवंत जंगलों को राज्य की संपत्ति में बदल दिया, इस बंधन

को तोड़ दिया और पारिस्थितिक क्षरण (तबाही) की शुरुआत की। चिपको आंदोलन ने यह साबित कर दिया कि जो लोग एक पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर रहते हैं, वही इसके सबसे विश्वसनीय रक्षक होते हैं, और उनके पास वैज्ञानिक विशेषज्ञों के समान ही एक व्यावहारिक व आनुभविक अधिकार (empirical authority) होता है।

5. चेतना की पुनर्प्राप्ति

समस्या की मूल जड़ मानवीय इच्छाओं के भीतर निवास करती है। सबसे महत्त्वपूर्ण और यक्ष प्रश्न यह है कि किस प्रकार का मनुष्य, अपने स्वयं के मन के साथ किस तरह के संबंध को साधकर, स्थायी और संतुलित रूप से जीने (living sustainably) में सक्षम हो सकता है।

भारतीय परंपरा 'साक्षी भाव'—यानी द्रष्टा चेतना (the witness consciousness)—का मार्ग सुझाती है। वेदांत में, स्वयं (आत्मन) की सबसे गहरी परत वह निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ जागरूकता है जो अनुभवों के प्रवाह में बहे बिना या उसमें डूबे बिना केवल उनका अवलोकन करती है। साक्षी भाव को जीवन में उतारने से व्यक्ति किसी वस्तु का सम्यक् मूल्यांकन कर सकता है और उसकी उपयोगिता का उचित मूल्यांकन ले सकता है।

यही भाव गांधी जी द्वारा प्रतिपादित 'ज़रूरत और लालच' के बीच के अंतर का आधार है; ज़रूरत सीमित होती है, जबकि लालच वह ज़रूरत है जो अहंकार (ego) के कारण फूल जाती है और अत्यधिक उपभोग (hyper-consumption) पर टिकी अर्थव्यवस्था द्वारा लगातार उकसाई जाती है। साक्षी भाव का अभ्यास करने वाला व्यक्ति इच्छाओं के आकर्षण को महसूस तो करता है, लेकिन वह संयम और अपरिग्रह (non-possession) को बनाए रखता है। वह इन्हें किसी अभाव या वंचना के रूप में नहीं, बल्कि आत्म-ज्ञान की अभिव्यक्ति के रूप में देखता है।

भले ही आधुनिक व्यावसायिक बाज़ारों ने योग को 'ग्लोबल वेलनेस' (वैश्विक कल्याण) के रूप में एक बिकाऊ वस्तु (commodify) बना दिया है, लेकिन इसका वास्तविक अनुशासन मन का व्यवस्थित और सचेत नियंत्रण है। जो समाज अपनी खुद की इच्छाओं का अवलोकन करने में असमर्थ होता है, वह तब तक उपभोग करता चला जाता है जब तक कि उसके संसाधनों का आधार पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाता। यही आंतरिक अनुशासन किसी भी स्थायी और दीर्घकालिक सभ्यता (sustainable civilization) की मनोवैज्ञानिक नींव है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिए यह समझ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यदि इंजीनियरों को स्थिरता (sustainability) को विशुद्ध रूप से एक तकनीकी पहेली के रूप में देखना सिखाया जाए—जैसे कि केवल बेहतर ईंधन, अधिक कुशल औद्योगिक प्रक्रियाएँ, या बेहतर अपशिष्ट प्रबंधन (Waste Management)—तो वे केवल संसाधनों का दोहन करने वाले एक पुराने मॉडल (extractive paradigm) के ही अधिक कुशल संस्करण तैयार करेंगे। एक अपरिवर्तित और बेलगाम मानवीय लालसा के तहत काम करने वाली तकनीकी प्रतिभा केवल संसाधनों का और अधिक कुशलता और चालाकी से दोहन ही कर सकती है। इसके विपरीत, यदि हमारे तकनीकी विशेषज्ञ 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' को एक बुनियादी डिज़ाइन सिद्धांत (core design principle) के रूप में स्वीकार करते हैं, और पारंपरिक शिल्प व चरवाहा प्रणालियों की व्यवस्थित बुद्धिमत्ता को आधुनिक बुनियादी ढांचे (infrastructure) में एकीकृत करते हैं, तो वे विकास के ऐसे मॉडल पेश कर सकते हैं जो पश्चिमी औद्योगिक प्रतिमान से कहीं आगे देखते हैं।

6. उपसंहार, आशय (प्रभाव) और संस्तुति

वैश्विक पर्यावरण संकट को केवल बाज़ार-संचालित नीतिगत निर्देशों, कार्बन मेट्रिक्स (मापदंडों) या कॉरपोरेट 'ग्रीनवॉशिंग' (दिखावटी पर्यावरण-हितैषी होने का ढोंग) के माध्यम से हल नहीं किया जा सकता है। वास्तविक पारिस्थितिक संतुलन के लिए मानवीय चेतना में एक सभ्यतागत बदलाव की आवश्यकता है—यानी पृथ्वी को दोहन और उपभोग (भोग) की वस्तु मानने के बजाय कर्त्तव्य (कर्म) की भूमि के रूप में समझने की ओर लौटना। कुमारस्वामी (1947) की बात को दोहराएँ तो, जो सभ्यता उद्योग को कला से, या निर्माण को अर्थ से अलग करती है, वह आध्यात्मिक और भौतिक तरीके से आत्महत्या करती है।

टिकाऊपन (स्थायित्व) एक नैतिक और आध्यात्मिक स्थिति है जो प्रकृति और पुरुष (चेतना) में निहित है। यह स्वदेशी ढांचा वैज्ञानिक सटीकता को खारिज नहीं करता; बल्कि, यह सामग्री इंजीनियरिंग की एक परिष्कृत परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। रसशास्त्र में, भस्मीकरण की पद्धति ने आधुनिक नैनोविज्ञान (नैनोसाइंस) से सदियों पहले जैव-अनुकूल (बायोकम्पैटिबल) जड़ी-बूटी-युक्त धातुओं के नैनोकणों को संश्लेषित करने के लिए नियंत्रित, बार-बार (विशेष फ़रनैस डिज़ाइन में प्रक्रिया की पुनरावृत्ति) कैल्सीनेशन (निस्तापन) का उपयोग किया। न्यूनतम सामग्री पदचिह्न (मटेरियल फुटप्रिंट) के साथ लक्षित चिकित्सा प्रभावकारिता प्राप्त करके, इन प्राचीन तकनीकों ने न्यूनतम हस्तक्षेप के माध्यम से अधिकतम उपयोगिता हासिल की, जो संयम और अपरिग्रह के सिद्धांतों के बिल्कुल अनुरूप है।

पारिस्थितिक संतुलन के लिए यह याद रखना आवश्यक है कि मनुष्य इस जीवित संसार का एक भागीदार है, इसका मालिक नहीं। कुमारस्वामी (1956) का मूलभूत सिद्धांत कि पारंपरिक कारीगर कोई विशेष प्रकार का व्यक्ति नहीं होता, बल्कि हर व्यक्ति एक विशेष प्रकार का कारीगर होता है जो ब्रह्मांडीय व्यवस्था के अनुरूप कार्य करता है, एक स्थायी भविष्य के लिए आधार रेखा बना हुआ है। हस्तकला, पशुपालन और बिश्नोई जैसे समुदायों के जीवंत विश्वास की स्थायी परंपराएं इस बात का जीवंत प्रमाण हैं कि मानवता इस ग्रह को नष्ट किए बिना भी गरिमा और सार्थकता के साथ जी सकती है। भारत के सामने चुनौती समय रहते इस स्वदेशी, एकीकृत ज्ञान को सुनने और समझने की है।

आशय (प्रभाव)

इंजीनियरिंग के तौर-तरीकों को नए सिरे से परिभाषित करना: स्थायित्व (sustainability) को केवल एक तकनीकी समाधान मानना मानवता को उपभोग के मूल कारण को जाने बिना, संसाधनों का अधिक कुशलता से दोहन करने की अनुमति देता है। 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' (जो इस शरीर में है, वही ब्रह्मांड में है) को डिज़ाइन सिद्धांत के रूप में लागू करने से उन्नत इंजीनियरिंग का पर्यावरण-केंद्रित (eco-centric) नैतिकता के साथ सह-अस्तित्व हो सकता है।

पीढ़ीगत बुद्धिमत्ता का नुकसान: "कर्म-विहीन निर्माण" (karma-less making) की ओर बढ़ना—जैसे कि स्थानीय ऊन के स्थान पर सिंथेटिक एक्रिलिक का उपयोग करना और वनस्पति रंगों (प्लांट डाइस) की जगह पेट्रोकेमिकल कचरे (अपशिष्टों) का उपयोग करना—संरचनात्मक पारिस्थितिक नुकसान का कारण बनता है। साथ ही, यह सदियों से क्षेत्रीय परीक्षण (फील्ड-टेस्टेड) पर्यावरणीय डेटा को भी मिटा देता है, जो शुद्ध सिद्धांत आधारित विधि (pure mechanism) के सांस्कृतिक और आर्थिक पतन के संबंध में कुमारस्वामी (1934) की चेतावनियों की पुष्टि करता है।

जीवित ज्ञान का अधिकार: चिपको जैसे आंदोलन और बिश्नोइयों का ऐतिहासिक बलिदान यह दिखाते हैं कि स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र (इकोसिस्टम) पर निर्भर समुदाय ही उसके सबसे प्रभावी संरक्षक होते हैं। यह स्थिति ऊपर से थोपे गए (टॉप-डाउन), पूरी तरह से तकनीकी-प्रबंधकीय (टेक्नोक्रेटिक) संसाधन प्रबंधन मॉडल को चुनौती देती है।

संस्तुति

अंतःविषय (Transdisciplinary) आई.के.एस. (Indian Knowledge System)-इंजीनियरिंग वर्टिकल्स स्थापित करना: ऐसे शोध उपक्रमों (research initiatives) की शुरुआत की जाए जो आधुनिक नैनोविज्ञान को भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) के साथ एकीकृत करते हों। भस्मीकरण जैसी प्रक्रियाओं की रिवर्स-इंजीनियरिंग और मानकीकरण (standardization) करने से हरित रासायनिक प्रक्रियाओं और शून्य-अपशिष्ट (zero-waste), चक्रिय सामग्रियों (circular materials) के विकास को दिशा मिल सकती है।

तकनीकी डिज़ाइन में पारंपरिक ज्ञान का समावेश करना: पारंपरिक कारीगरी और पशुपालन प्रबंधन में समाहित व्यावहारिक आंकड़ों को समकालीन बुनियादी ढांचे (इन्फ्रास्ट्रक्चर) के डिज़ाइन में शामिल किया जाए; इसे एक स्थिर लोककथा या किस्से-कहानियों के रूप में देखने के बजाय सक्रिय प्रणालीगत बुद्धिमत्ता (systemic intelligence) के रूप में माना जाए।

तकनीकी पाठ्यक्रम में चेतना (साक्षी भाव) को शामिल करना: इंजीनियरिंग शिक्षा का विस्तार करके उसमें संयम की मनोवैज्ञानिक प्रथाओं को शामिल किया जाए। नवप्रवर्तकों (innovators) को साक्षी भाव का प्रशिक्षण देने से उन्हें तकनीकी इच्छाओं की गति को नियंत्रित करने में मदद मिलती है, जिससे वे ऐसी प्रणालियों का डिज़ाइन तैयार कर पाते हैं जो मानवता को इस जीवंत संसार के एक भागीदार के रूप में देखती हैं।

आभार

मेरे उन सभी गुरुओं, विद्वानों और समुदाय के बुज़ुर्गों के प्रति मेरी हार्दिक कृतज्ञता, जिनके मार्गदर्शन ने इस शोध पत्र को आकार दिया है। डॉ. हर्ष सत्या का हृदय से धन्यवाद, जिन्होंने इतने विचारोत्तेजक और सुस्पष्ट रूप से प्रस्तुत किए गए विषय (brief) के साथ मुझे 'जिज्ञासा' में योगदान देने के लिए आमंत्रित किया। श्री मुर्तजा गांधी का विशेष धन्यवाद, जिन्होंने इस शोध पत्र पर विचार-विमर्श करने और इसे तैयार करने में अपना अमूल्य समय दिया। डॉ. रमन कुमार के प्रति गहरा आभार, जिन्होंने इस शोध पत्र को लिखने के विद्वत्तापूर्ण सत्यापन (scholarly validation) और दृष्टिकोण के संबंध में महत्त्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान की। श्री निलय भावसार की त्वरित सहायता के लिए आभार। सबसे महत्त्वपूर्ण रूप से, मैं श्री पीराराम जी धायल बिश्नोई तथा राजस्थान और उत्तराखंड के समुदाय के बुज़ुर्गों की ऋणी हूँ, जिनके जीवंत उदाहरण और प्राकृतिक संसार की रक्षा इस बात का व्यावहारिक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि मानवता प्रकृति के साथ पूर्ण सामंजस्य में रह सकती है। मैं स्वर्गीय श्री ज्योतिबा (Enzo di Martino) की सदैव आभारी हूँ, जिन्होंने राइका समुदाय, उनके जीवन के तरीकों और भारतीय संस्कृति की गहनता के विषय में अनेक अंतर्दृष्टियाँ साझा कीं। अंत में, परंतु किसी भी रूप में कम महत्त्वपूर्ण नहीं, मैं श्री पवन गुप्त जी (सिद्ध, मसूरी) की आभारी हूँ, जो एक मार्गदर्शक और निरंतर प्रेरणा का स्रोत रहे हैं, और जिन्होंने इस संवाद को जीवंत और सक्रिय बनाए रखा है।

संदर्भ

1. Bishnoi, P.D., 2025. Oral Traditions, Land Tenures, and Wildlife Co-existence in the Marwar Ecosystem. Personal interview, Sanchore, Rajasthan, 14 August 2023.
2. Kumaraswamy, A.K., 1934. The Transformation of Nature in Art. Cambridge: Harvard University Press.
3. Kumaraswamy, A.K., 1947. Am I My Brother's Keeper? New York: John Day Company.
4. Kumaraswamy, A.K., 1956. The Bugbear of Literacy. London: Dennis Dobson.
5. Gandhi, M.K., 1927. An Autobiography: The Story of My Experiments with Truth. Ahmedabad: Navajivan Prakashan.
6. Sharma, R., 2016. Samaaj aur Shilp: Conversation Series on Indian Vocation and Ecology. Wardha: Artisan Trust.
7. Köhler-Rollefson, I., 2016. Camel Cultures of India. Sahapedia. Uplabdh: https://www.sahapedia.org/camel-cultures-of-india (Accessed on : 20 June 2026).

एग्री स्टैक: भारत की डिजिटल कृषि क्रांति (सहयोग और समावेश पर आधारित डिज़ाइन)

डॉ. देवेश चतुर्वेदी

पूर्व सचिव (कृषि), भारत सरकार

ई-मेल:

devesh.chaturvedi123@gmail.com



सारांश

यह लेख "एग्री स्टैक" को भारत की डिजिटल कृषि क्रांति के रूप में प्रस्तुत करता है, जो किसानों की पहचान, भूमि अभिलेखों और फसल संबंधी जानकारी को एकीकृत करने वाला एक आधुनिक डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म है। भारत सरकार द्वारा "डिजिटल एग्रीकल्चर मिशन" के अंतर्गत विकसित यह प्रणाली किसानों को योजनाओं और सेवाओं का लाभ पारदर्शी, सरल और तेज़ तरीके से उपलब्ध कराने का प्रयास करती है। एग्री स्टैक की मुख्य संरचना तीन प्रमुख रजिस्ट्रियों—किसान, फार्म और फसल—पर आधारित है, जिनके माध्यम से भूमि स्वामित्व, बोई गई फसल तथा किसान की डिजिटल पहचान का सत्यापित डेटाबेस तैयार किया जाता है।

लेख में बताया गया है कि डिजिटल फसल सर्वेक्षण, जियो-रेफरेंसिंग, मोबाइल तकनीक और सैटेलाइट आधारित डेटा संग्रहण ने कृषि प्रशासन को अधिक सटीक और प्रभावी बनाया है। इससे सरकारी योजनाओं, न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद, फसल बीमा, आपदा राहत तथा प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) में पारदर्शिता और दक्षता बढ़ी है।

एग्री स्टैक किसानों को बार-बार दस्तावेज़ सत्यापन की आवश्यकता से मुक्त करता है तथा ऋण, बीमा और कृषि परामर्श जैसी सेवाओं तक उनकी पहुँच आसान बनाता है। लेख यह भी रेखांकित करता है कि यह पहल कृषि क्षेत्र में नवाचार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित सेवाओं और डेटा-आधारित नीति निर्माण को प्रोत्साहित करेगी। इस प्रकार, एग्री स्टैक भारत को डिजिटल और आत्मनिर्भर कृषि अर्थव्यवस्था की दिशा में आगे बढ़ाने वाला एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

मुख्य शब्द: एग्री-स्टैक, किसान-आई.डी., फसल सर्वेक्षण, डिजिटल प्रणाली, भू अभिलेख

1. पृष्ठभूमि

भारत के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार कृषि सेक्टर भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ बना हुआ है, जिसपर देश का लगभग 46.1% कार्यबल निर्भर है[1]। पिछले पाँच वर्षों में कृषि और संबद्ध क्षेत्र की औसत वार्षिक वृद्धि दर लगभग 4.42%[2] रही है। पिछले दशक से सरकार उत्पादन/उत्पादकता

बढ़ाने, फसल विविधीकरण करने, खेती की लागत कम करने, कृषि उत्पाद का उचित मूल्य किसानों को उपलब्ध कराने, जलवायु परिवर्तन से या अन्य प्रकार के जोख़िम को कम करने जैसी रणनीतियों के माध्यम से किसानों की आय बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयासरत है।

केंद्र सरकार या राज्य सरकारों की सर्वोच्च प्राथमिकता है कि उनके द्वारा संचालित योजनाओं के विभिन्न लाभ किसानों को सुविधापूर्ण और पारदर्शी रूप में प्राप्त हों। कोई भी किसान (चाहे वह भूमिधर हो, किरायेदारी पर हो या बटाई पर खेती करने वाला हो) किसी योजना का लाभ प्राप्त करने का हकदार है या नहीं, यह तय करने के लिए उसके स्वामित्व में खेती योग्य भूमि तथा उसपर ज़मीन पर बोई गई फ़सल की जानकारी होना आवश्यक है। देश के विभिन्न राज्यों में भू प्रबंधन तथा भू अभिलेखों के रख रखाव की अलग-अलग व्यवस्थाएं इस कार्य को और भी चुनौतीपूर्ण बना देती हैं।

यू.एन.डी.पी.[7] के अनुसार, "डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर (डी.पी.आई.) बुनियादी डिजिटल सिस्टम का एक स्तंभ है जो आधुनिक समाज की रीढ़ है। डी.पी.आई. नागरिकों, व्यवसायिओं और सरकारों के बीच सुरक्षित एवं आसान बातचीत को मुमकिन बनाता है। यह संस्थाओं के प्रति नागरिकों का भरोसा बढ़ाने में भी मदद कर सकता है[8]।"

श्रीवास्तव और उनके साथियों (2025)[6] ने यह निष्कर्ष निकाला है कि "डी.पी.आई. ने भारत में सेवाओं की डिलीवरी को बेहतर बनाने और आर्थिक विकास को बढ़ाने में मदद की है"। उन्होंने इस बात पर भी ज़ोर दिया है कि कमज़ोर तबके के लोगों को इंटरनेट, स्मार्टफ़ोन और डिजिटल साक्षरता की सुविधा मिले। बेरिया (2022)[5] ने भारत में कृषि मंत्रालय द्वारा एग्री स्टैक के ढांचे के रूप में विकसित किए जा रहे भारतीय डिजिटल इकोसिस्टम फॉर एग्रीकल्चर (आई.डी.ई.ए.) ढांचे पर प्रकाश डाला है। इस ढांचे की प्रमुख विशेषताओं में किसानों के डेटा की सुरक्षा करते हुए व्यक्तिगत विस्तार सेवाएं प्रदान करना, इंटरऑपरेबिलिटी मानकों को अपनाना, पीपीपी ढांचे का लाभ उठाना और किसानों के लिए उपयोगी बड़े पैमाने पर अभिनव नवाचार कर सुविधा प्रदान करना सम्मिलित है।

एक मानकीकृत किसान डेटाबेस, जिसमे भूमि के स्वामित्व तथा बोई गयी फसलों की जानकारी अद्यतित रूप से उपलब्ध हो, की आवश्यकता तथा महत्त्व को समझते हुए, केंद्र सरकार ने वर्ष 2024 में "डिजिटल एग्रीकल्चर मिशन" आरम्भ किया। मिशन के अंतर्गत कृषि सेक्टर के लिए डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर (डी.पी.आई.) की स्थापना की व्यवस्था है। कृषि के इस डी.पी.आई. का एक स्तंभ - एग्री स्टैक अब एक परिवर्तनकारी बदलाव लाने वाली पहल बनकर उभर रहा है। एग्री स्टैक में यूँ तो 30 रजिस्ट्री होनी हैं, परन्तु तीन प्रकार की रजिस्ट्री सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, यह हैं - खेत (अर्थात फार्म), किसान (फार्मर) और बोई गई फसल (क्रॉप)। एग्री स्टैक भारत की खेती के सफ़र में एक नया अध्याय जोड़ने का संकेत देता है - जो आने वाले समय में माननीय प्रधानमंत्री के 2047 तक विकसित भारत के विज़न की पूर्ति के लिए सहायक होगा।

फार्म रजिस्ट्री में "जियो-रेफरेंस्ड" (Geo-Referenced) कृषि भूमि का डेटाबेस होता है, भूमिधर के हर प्लॉट को एक यूनिक फार्म आई.डी. दी जाती है। दूसरी रजिस्ट्री में, हर भूस्वामी को एक यूनिक फार्म आई.डी. दी जाती है, जिसमें उस किसान के हक़ वाले हर प्लॉट से जुड़ी ज़रूरी जानकारी होती है, साथ ही सह-स्वामित्व होने की स्थिति में उस प्लॉट में हिस्सेदारी का भी विवरण अंकित होता है। इस डेटा को राज्य द्वारा अनुरक्षित अधिकारों के रिकॉर्ड से सक्रिय रूप से जोड़ा गया है ताकि विरासत, बिक्री आदि के कारण से स्वामित्व में कोई भी बदलाव किसान रजिस्ट्री में तत्काल ही अद्यतित हो जाए। तीसरी रजिस्ट्री में हर प्लॉट पर बोई गई फसल का विवरण दर्ज होता है, जो हर मौसम में बुवाई पूरी होने के बाद किए गए डिजिटल फसल सर्वे से प्राप्त होता है।

इस मिशन को केंद्र-राज्य के बीच मज़बूत सहयोग से लागू किया जा रहा है, जिसमें अत्याधुनिक तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। एग्री स्टैक एक फ़ेडरेटेड डेटाबेस है, जिसका मालिकाना हक राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के पास है, परन्तु विभिन्न सेवाएँ देने अथवा नीति निर्धारण हेतु केंद्र सरकार इसे प्रयोग में ला सकती है। इसका उद्देश्य देश के प्रत्येक किसान के लिए एक सत्यापित डिजिटल पहचान बनाना, जिसमें किसान के स्वामित्व की प्रत्येक भूमि तथा उस

पर बोई गयी फसलों का विवरण उपलब्ध हो। इस विवरण के उपलब्ध होने से विभिन्न योजनाओं की डिजिटल सर्विस डिलीवरी संभव हो सकेगी और इन्हें प्राप्त करने के लिए किसानों को बार-बार किसी शासकीय कार्यालय जाकर अपनी पहचान, ज़मीन का मालिकाना हक या फ़सल की जानकारी का भौतिक सत्यापित विवरण प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होगी। किसानों से जुड़ी जानकारी तक पहुँच एक मज़बूत सहमति आधारित प्रणाली (कंसेंट सिस्टम) के माध्यम से होती है, जिससे डेटा निजता (Data Privacy) और डेटा संरक्षण (Data Protection) अधिनियमों से जुड़े प्रावधानों का सख्ती से पालन होता है।

2. कागज़ के रिकॉर्ड से डिजिटल प्रणाली तक की यात्रा

दशकों तक, कृषि योग्य भूमि का प्रबंधन कागज़ पर आधारित रिकॉर्ड और मैनुअल सर्वे पर निर्भर रहा है , जो प्रायः नागरिक केन्द्रित नहीं था और भ्रष्टाचार का भी कारण बनता था। एग्री स्टैक इस विरासत से हटकर एक बड़े बदलाव का पथ दिखाता है। किसानों की पहचान को डिजिटाइज़ करके और उन्हें भूमि और फसल के डेटा से जोड़कर, यह भारतीय कृषि सेक्टर की एक भरोसेमंद और अद्यतित तस्वीर बनाता है।

इस सफ़र में जुलाई 2026 तक 10 करोड़ से ज़्यादा किसान आई.डी. बनाना एग्री स्टैक के उपयोग में एक महत्त्वपूर्ण कदम रहा है। किसानों को अब अपनी पात्रता के लिए बार-बार सत्यापन नहीं कराना होगा, वे अब डिजिटल पहचान के माध्यम से विभिन्न सेवाओं को प्रयोग कर सकते हैं। एग्री स्टैक सरकारी एजेंसियों द्वारा लाभार्थियों की पहचान में त्रुटियों को दूर करने और जानबूझ कर किये गए फर्ज़ी आवेदन की पहचान कर उन्हें निरस्त करने में सहायता प्रदान करता है।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि एग्री स्टैक मुख्य रूप से किसानों द्वारा विभिन्न योजनाओं या सेवाओं का लाभ उठाने का एक सशक्त माध्यम है, लेकिन यह भू अभिलेख या भू स्वामित्व का विकल्प नहीं है, भले ही भू अभिलेखों से जुड़ जाने से इसके सत्यापित और प्रमाणिक होने की गारंटी हो।

3. डिजिटल फसल सर्वेक्षण: समय से फसल जानकारी

2025-26 में, 24 राज्यों द्वारा मोबाइल, जियोटैगिंग और सैटेलाइट का प्रयोग करके 600 से ज़्यादा ज़िलों में लगभग 30 करोड़ प्लॉट पर डिजिटल फसल सर्वे संपन्न कराया गया। यह पुराने सर्वे के तरीकों से काफी अलग है, जो प्रायः विलम्ब से पूरे हो पाते थे और जिनमें गड़बड़ियां/गलतियां होने की संभावना अधिक होती थी।

एग्री स्टैक पैदावार का अनुमान, खरीद का प्रबंधन और उत्पादन का सटीक अनुमान लगाने में मदद करता है। यह सूखे, बाढ़ या कीट की वजह से फसल पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव की जल्दी पहचान करके आपदा से निपटने की तैयारी को भी मज़बूत बनाता है। इसका प्रयोग किसानों की समय पर मदद करने और फसल संबंधी सलाह देने तथा आपदा से क्षति की स्थिति में शीघ्र सहायता पहुँचाने के लिए किया जा रहा है।

4. सहयोग और समावेश पर आधारित डिज़ाइन

पूरे देश में भू प्रशासन में भिन्नता को ध्यान में रखते हुए, एग्री स्टैक की संरचना में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन करने का लचीलापन या फ्लेक्सिबिलिटी है, साथ ही इंटर-ऑपरेबिलिटी सुनिश्चित करने के लिए सामान्य मानक बनाए गए हैं, जिनसे राज्यों और केंद्र की प्रणालियों के बीच आसानी से डेटा का आदान-प्रदान सुचारू रूप से (एक्सचेंज) हो सके।

उदाहरण के लिए, कुछ राज्य ऐसे हैं जहाँ भू अभिलेख दशकों से अद्यतित नहीं हुए हैं और उनमें पुरखों के नाम अभी भी दर्ज हैं। यद्यपि भू अभिलेखों को अद्यतित करने तथा वास्तविक भूमिधर का नाम दर्ज करने के लिए लगातार प्रयास जारी हैं, लेकिन इस बीच, उत्तराधिकारी किसान संबंधित भूमि पर राज्य के राजस्व विभाग से सत्यापन के बाद अपनी किसान आई.डी. बनवा सकते हैं, ताकि सरकारी योजनाओं का लाभ उठा सकें।

जहां भी, राज्य के कानून अनुमति देते हैं और राज्य सहमत होते हैं, वहां बटाईदार या शेयरक्रॉपर और किराए पर खेती करने वाले किसानों को भी भूस्वामी द्वारा अधिकृत करने (ओनर-ऑथराइज़ेशन सिस्टम) के आधार पर योजनाओं या सेवाओं का लाभ प्रदान करने के लिए सम्मिलित किया जा सकता है।

पूर्वोत्तर राज्यों में, जहाँ सामुदायिक स्वामित्व (कम्युनिटी ओनरशिप) ज़्यादा है, जियो-कोऑर्डिनेट-आधारित प्रमाणीकरण से एग्री स्टैक में किसानों को सम्मिलित किया जा सकता है।

5. मिशन के सकारात्मक परिणाम

एग्री स्टैक ने कृषि क्षेत्र में डिजिटल सेवाओं को सुदृढ़ करते हुए किसानों तक सरकारी योजनाओं और वित्तीय सेवाओं की पहुँच को सरल, पारदर्शी और प्रभावी बनाया है। एकीकृत एवं सत्यापित डेटा के माध्यम से बेहतर कृषि-शासन, लक्षित लाभ वितरण और साक्ष्य-आधारित नीति निर्माण को बढ़ावा मिला है। साथ ही, किसानों के लिए ऋण, बीमा, बाजार एवं कृषि-परामर्श जैसी सेवाओं की उपलब्धता में सुधार की संभावनाएँ बढ़ी हैं।

5.1 किसानों को प्राप्त होने वाले लाभ

एग्री स्टैक से वर्तमान में किसानों को योजनाओं का लाभ पाने के लिए कम फॉर्म भरने होंगे , स्थानीय कार्यालयों के भी कम चक्कर लगाने होंगे और पारदर्शिता व बिना भ्रष्टाचार के शासकीय योजनाओं का पूरा लाभ लेने में सहायता मिलेगी। भू-स्वामित्व और फसल के कालक्रम का अद्यतित डिजिटल विवरण उपलब्ध रहने से विभिन्न बैंकों और बीमा कंपनियों को जोखिम का अनुमान लगाने और किसानों की आवश्यकताओं के अनुसार ऋण उपलब्ध कराने में सहायता मिल रही है।

एग्री स्टैक में किसान समूहों को मज़बूत करने की क्षमता है। सत्यापित डेटा से किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) की उपज का सटीक अनुमान लगाया जाता है और सामूहिक रूप से बेहतर कीमतों के लिए मोलभाव करने तथा कार्यशील पूंजी प्राप्त करने में मदद मिलती है।

भूमि तथा बोई गई फसलों के विवरण को मृदा स्वास्थ्य कार्ड के साथ एकीकृत करने से कृषि-प्रसार (एग्रीकल्चर एक्सटेंशन) में आमूलचूल परिवर्तन लाने की क्षमता है, क्योंकि अब किसानों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप सटीक सलाह उपलब्ध कराई जा सकती है, वो भी बहुत कम कीमत पर। किसान स्थानीय हालात के आधार पर बुवाई का सही समय, सिंचाई के शेड्यूल, उचित पोषक तत्वों के प्रयोग और कीट प्रबंधन पर व्यक्तिगत सलाह (पर्सनलाइज्ड गाइडेंस) प्राप्त कर सकते हैं।

5.2 शासन और नीति निर्माण में सकारात्मक प्रभाव

एग्री स्टैक गवर्नेंस प्रक्रिया में सुधार और प्रमाण या डेटा पर आधारित नीति निर्माण का अवसर प्रदान करता है। नीति निर्माताओं के पास फसल के पैटर्न का विश्लेषण करने, मांग-पूर्ति के बीच के अंतर का अनुमान लगाने और बाज़ार दरों में उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए समय पर दखल देने के लिए सटीक और समय पर डेटा उपलब्ध होता है।

समय-समय पर मिलने वाले नकद या सामग्री अनुदान का वितरण, फ़सल बीमा, न्यूनतम समर्थन मूल्य पर सरकारी खरीद, या क्रेडिट संबंधी सभी लेन-देन - ये सभी कार्य डिजिटल माध्यम से और आसानी से किए जा सकते हैं। आधार पेमेंट गेटवे यह सुनिश्चित करते हैं कि लाभ सही लाभार्थी को मिले। यह प्रणाली सरकारी खर्च के लिए एक स्पष्ट डिजिटल निशान (ट्रेल) बनाकर सरकारी अनुदान वितरण की पारदर्शिता और जवाबदेही बढ़ाती है।

यह देखा गया है कि केंद्र और राज्य स्तर पर मंत्रालय और कुछ मामलों में, मंत्रालयों के विभिन्न प्रभागों द्वारा भी योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए अपने-अपने पृथक किसान डेटाबेस बनाए गए हैं। एग्री स्टैक एक एकीकृत डिजिटल डेटाबेस बनाकर कृत्रिम अवरोधों को तोड़ता है, जिससे कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन, सहकारिता, राजस्व, खाद्य प्रसंस्करण, उर्वरक, क्रेडिट और इंश्योरेंस जैसे सभी क्षेत्रों में समान सत्यापित डेटा का प्रयोग किया जा सकता है। इससे न सिर्फ़ क्रियान्वयन क्षमता में सुधार होता है, बल्कि किसानों को अलग-अलग योजनाओं का लाभ प्राप्त करने के लिए विभिन्न पोर्टल पर पंजीकरण करने की आवश्यकता भी नहीं होती है।

कई राज्यों ने एग्री स्टैक को सफलतापूर्वक लागू किया है। उत्तर प्रदेश सरकार न्यनतम समर्थन मूल्य आधारित खरीद के लिए एग्री स्टैक का प्रयोग कर किसानों का सत्यापन निर्बाध से कर रही है। छत्तीसगढ़ ने भी पिछले खरीफ मौसम में धान खरीद के लिए किसानों को पंजीकृत करने के लिए एग्री स्टैक का प्रयोग किया। मध्य प्रदेश ने प्रधान मंत्री अन्नदाता आय संरक्षण अभियान (PM ASHA) के अंतर्गत सोयाबीन किसानों को मूल्य-अंतर (Price Deficiency) की सहायता उपलब्ध कराने के लिए इसी डेटाबेस का प्रयोग किया गया। महाराष्ट्र आपदा राहत सहित अपनी सभी योजनाओं में प्रत्यक्ष लाभ अंतरण के लिए एग्री स्टैक का प्रयोग कर रहा है।

6. नवाचार को उत्प्रेरित करना

एग्री स्टैक का समरूप डिज़ाइन विशेष रूप से कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग करते हुए नवाचार के लिए एक सकारात्मक माहौल प्रदान करता है। जैसे-जैसे एग्री स्टैक और विकसित होगा वैसे-वैसे स्टार्टअप्स के लिए ऐसे एप्लिकेशन बनाए जाएंगे जो फसल डेटा, मौसम के अनुमान और बाज़ार भाव को सुविधाजनक रूप से किसानों को उपलब्ध करा सकते हैं।

माननीय वित्त मंत्री ने हाल ही में अपने उद्बोधन में एग्री स्टैक को "भारत की अगली बड़ी उपलब्धि[3]" और "अगली UPI जैसी क्रांति[4]" के रूप में प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार भारत आत्मनिर्भर और ग्लोबल फ़ूड बास्केट बन रहा है, उसी प्रकार एग्री स्टैक एक भविष्योन्मुख सुधार है जहाँ डेटा किसानों को मज़बूत बनाता है, तकनीक शासन को मज़बूत करती है और आपसी सहयोग से तरक्की होती है।

संदर्भ

1. आर्थिक सर्वेक्षण-2025-26, अध्याय 6, कृषि और खाद्य प्रबंधन: उत्पादकता बढ़ाना, आय सुरक्षित करना और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना, पृष्ठ 225।
2. आर्थिक सर्वेक्षण-2025-26, अध्याय 6, कृषि और खाद्य प्रबंधन: उत्पादकता बढ़ाना, आय सुरक्षित करना और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना पृष्ठ 227।
3. वित्त मंत्री का संबोधन, https://www.youtube.com/watch?v=OlLCYu_b8PI पर उपलब्ध है।
4. वित्त मंत्री का भाषण, HYPERLINK "https://www.youtube.com/shorts/pqcBfcqzHjE"https://www.youtube.com/shorts/pqcBfcqzHjE पर उपलब्ध है।
5. Beria Abhishek, 2022, "India Digital Ecosystem of Agriculture and AgriStack: An Initial Assessment" – Research Report, ICT India Working Paper 68, Columbia University, Earth Institute, Center for Sustainable Development (CSD), New York, NY. https://hdl.handle.net/10419/250913 par uplabdh hai.
6. श्रीवास्तव शलभी, नैनी स्वामी, देवाशीष शर्मा, 2025, "भारत के डिजिटल पब्लिक इन्फ्रास्ट्रक्चर के आर्थिक प्रभाव को मापना- एक आकलन", चर्चा पत्र 26 मई 2025, सेंटर फ़ॉर सोशल एंड इकनोमिक प्रोग्रेस. https://csep.org/wp-content/uploads/2025/05/Measuring-the-Economic-Impact-of-Indas-Digital-Public-Infrastructure-An-Assessment-1.pdf पर उपलब्ध है।
7. यूएनडीपी, डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर, https://www.undp.org/digital/digital-public-infrastructure.pdf पर उपलब्ध है।
8. यूएनडीपी, डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर के ज़रिए एसडीजीस को तेज़ करना, डीपीआई की क्षमता का एक कलेक्शन,https://www.undp.org/sites/g/files/zskgke326/files/2023-08/accelerating_the_sdgs_through_digital_public_ infrastructure.pdf पर उपलब्ध है।

नोट: बाकी सभी डेटा सोर्स: कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार

भारत में दिव्यांगजन समावेशन से मानवीय समाज की ओर एक क़दम (आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एन.डी.एफ.डी.सी की भूमिका)

डॉ. विनीत राणा

राष्ट्रीय दिव्यांगजन वित्त और विकास निगम

ई-मेल:

nhfdcvineetrana@gmail.com

सारांश

भारत में दिव्यांगजन समावेशन के बदलते दृष्टिकोण तथा उनके आर्थिक सशक्तिकरण में राष्ट्रीय दिव्यांगजन वित्त और विकास निगम (NDFDC) की भूमिका इस लेख का प्रमुख विषय है। इसमें बताया गया है कि दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016, यू.डी.आई.डी. (UDID), समावेशी शिक्षा, आरक्षण तथा विभिन्न सरकारी पहलों ने दिव्यांगजनों के अधिकार-आधारित विकास को नई दिशा दी है। इसके बावजूद उच्च शिक्षा, रोज़गार एवं वित्तीय समावेशन में उनकी भागीदारी अपेक्षाकृत सीमित है, जिससे शिक्षा और आर्थिक अवसरों के विस्तार की आवश्यकता बनी हुई है। लेख में उच्च शिक्षा को दिव्यांगजनों की आर्थिक आत्मनिर्भरता की आधारशिला बताया गया है। गुणवत्तापूर्ण एवं सुलभ शिक्षा, छात्रवृत्तियों, अनुकूल शिक्षण वातावरण तथा वित्तीय सहायता के माध्यम से प्रतिभाशाली दिव्यांग विद्यार्थियों को आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किए जा सकते हैं। इसी उद्देश्य से NDFDC भारत एवं विदेश में उच्च शिक्षा हेतु ₹50 लाख तक का शिक्षा ऋण मात्र 4 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पर उपलब्ध कराता है, जिससे आर्थिक संसाधनों का अभाव उनकी शिक्षा में बाधा न बने। NDFDC रियायती ऋण, कौशल विकास, स्वरोजगार एवं उद्यमिता संवर्धन के माध्यम से दिव्यांगजनों के आर्थिक सशक्तिकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है। 'दिव्य कला मेला' जैसी पहलें दिव्यांग कलाकारों एवं उद्यमियों को राष्ट्रीय बाज़ार से जोड़कर उनकी आय और सामाजिक स्वीकार्यता को बढ़ावा देती हैं। स्थापना से अब तक निगम ₹1,800 करोड़ से अधिक की वित्तीय सहायता प्रदान कर 2.74 लाख से अधिक दिव्यांगजनों को लाभान्वित कर चुका है। लेख का निष्कर्ष है कि विकसित भारत 2047 के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दिव्यांगजनों को शिक्षा, कौशल, वित्त, तकनीक एवं बाज़ार तक समान अवसर उपलब्ध कराना आवश्यक है। NDFDC की शिक्षा ऋण, रियायती वित्त, कौशल विकास तथा उद्यमिता

संवर्धन संबंधी पहले दिव्यांगजन को केवल एक लाभार्थी न बनाकर, आत्मनिर्भर नागरिक और राष्ट्र निर्माण में सक्रिय योगदानकर्ता बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

मुख्य शब्द: दिव्यांगजन समावेशन, आर्थिक सशक्तिकरण, वित्तीय समावेशन, राष्ट्रीय दिव्यांगजन वित्त और विकास निगम (NDFDC), रियायती ऋण, समावेशी विकास, रियायती उच्च शिक्षा ऋण, दिव्य कला मेला

1. प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक प्रगति तभी संभव है, जब विकास का लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग तक समान रूप से पहुँचे। दिव्यांगजन केवल सामाजिक संवेदना के पात्र नहीं, बल्कि देश की बहुमूल्य मानव पूंजी हैं। उन्हें शिक्षा, रोजगार, वित्तीय सेवाओं और उद्यमिता के समान अवसर उपलब्ध कराना सामाजिक न्याय के साथ-साथ आर्थिक विकास की भी अनिवार्य शर्त है। सामाजिक सततता में विभिन्न सामाजिक आयामों का समावेशन दीर्घकालिक सुख-शांति के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

भारत ने पिछले दो दशकों में दिव्यांगता के प्रति अपने दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। कल्याण आधारित सोच से आगे बढ़ते हुए अब अधिकार, समान अवसर, गरिमा, सुगम्यता और समावेशी विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है। परिणामस्वरूप दिव्यांगजन आज केवल सहायता प्राप्त करने वाले नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण के सक्रिय सहभागी के रूप में उभर रहे हैं।

जनगणना 2011 के अनुसार देश में लगभग 2.68 करोड़ दिव्यांगजन हैं। ऐसे में उनकी शिक्षा, कौशल, रोजगार और वित्तीय समावेशन को मज़बूत किए बिना समावेशी विकास की कल्पना अधूरी है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के अनुसार श्रम बाज़ार में दिव्यांगजनों की सीमित भागीदारी से किसी भी देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में उसके 3 से 7 प्रतिशत तक की वार्षिक हानि हो सकती है। भारत के लिए यह केवल सामाजिक नहीं, बल्कि आर्थिक चुनौती भी है। इस शोधपत्र में एन.डी.एफ.डी.सी. द्वारा किए जा रहे प्रयासों की एक झलक प्रस्तुत है।

2. सुदृढ़ विधिक एवं नीतिगत आधार

भारत में दिव्यांगजन समावेशन को संविधान में निहित समानता, गरिमा और सामाजिक न्याय के मूल्यों से शक्ति मिलती है। दिव्यांगजन के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (UNCRPD) 2006 के अनुरूप लागू **दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम**, 2016 ने दिव्यांगता की मान्यता प्राप्त श्रेणियों को 7 से बढ़ाकर 21 किया तथा शिक्षा, रोजगार, सुगम्यता और सामाजिक सुरक्षा के अधिकारों को और मज़बूत बनाया।

राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, **1999**, भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम, **1992** तथा दिव्यांगजनों के लिए विशिष्ट पहचान पत्र **(UDID)** परियोजना जैसी पहलें इस व्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ बनाती हैं। आज सरकारी उच्च शिक्षण संस्थानों में 5 प्रतिशत तथा सरकारी नौकरियों में 4 प्रतिशत आरक्षण, यू.डी. आई.डी. (UDID) जैसी डिजिटल पहलें और विभिन्न कल्याणकारी योजनाएँ दिव्यांगजनों के लिए अवसरों का दायरा लगातार बढ़ा रही हैं। विशेष रूप से UDID परियोजना ने दिव्यांगजनों के लिए एकीकृत डिजिटल पहचान प्रणाली विकसित कर छात्रवृत्तियों, आरक्षण, सहायक उपकरणों तथा अन्य कल्याणकारी योजनाओं तक उनकी पहुंच को अधिक सरल, पारदर्शी और प्रभावी बनाया है।

3. शिक्षा: सशक्तिकरण की पहली सीढ़ी

शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास के साथ, आर्थिक आत्मनिर्भरता की सबसे मज़बूत आधारशिला है। पिछले वर्षों में दिव्यांगजनों की शिक्षा तक पहुँच में

उल्लेखनीय सुधार हुआ है, फिर भी उच्च शिक्षा में उनकी भागीदारी अपेक्षाकृत कम है। उपलब्ध आंकड़े दर्शाते हैं कि देश में लगभग 13 प्रतिशत दिव्यांगजन माध्यमिक (मैट्रिक) स्तर तक शिक्षित हैं, जबकि केवल लगभग 5 प्रतिशत ही स्नातक स्तर तक पहुंच पाते हैं। अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण (AISHE 2021-22) के अनुसार देश के उच्च शैक्षणिक संस्थानों में पंजीकृत लगभग 4 करोड़ विद्यार्थियों में दिव्यांग विद्यार्थियों की संख्या लगभग 88 हजार (0.22%) है, जो इस दिशा में और अधिक प्रयासों की आवश्यकता को दर्शाती है। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि उच्च शिक्षा में दिव्यांग विद्यार्थियों के नामांकन को बढ़ावा देने के लिए और अधिक प्रभावी प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

इसी उद्देश्य से दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग (DEPwD) प्री-मैट्रिक, पोस्ट-मैट्रिक, टॉप क्लास एजुकेशन, राष्ट्रीय फेलोशिप तथा राष्ट्रीय विदेशी छात्रवृत्ति जैसी अनेक योजनाएँ संचालित कर रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 भी समावेशी एवं सुलभ शिक्षा व्यवस्था को प्रोत्साहित करती है। इन पहलों से दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और रोज़गार के बेहतर अवसरों का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग (DEPwD) ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की दिव्यांगताओं के लिए विशेषीकृत राष्ट्रीय संस्थानों की स्थापना की है। ये संस्थान दृष्टिबाधिता, श्रवणबाधिता, अस्थि एवं शारीरिक दिव्यांगता, बौद्धिक दिव्यांगता, बहु-दिव्यांगता, मानसिक स्वास्थ्य तथा भारतीय सांकेतिक भाषा जैसे क्षेत्रों में कार्यरत हैं। इनके माध्यम से दिव्यांगता पुनर्वास से संबंधित सेवा मॉडल विकसित किए जाते हैं, विशेषज्ञ मानव संसाधन तैयार किए जाते हैं तथा अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाता है। ये संस्थान स्नातक, स्नातकोत्तर, एम.फिल. एवं पीएच. डी. स्तर तक उच्च शिक्षा कार्यक्रम संचालित करते हैं, जिनमें दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए आरक्षित सीटों का प्रावधान है। इन पाठ्यक्रमों का विनियमन भारतीय पुनर्वास परिषद (RCI) द्वारा किया जाता है, जिससे उनकी गुणवत्ता एवं मानकों को सुनिश्चित किया जा सके।

आई.आई.टी. रुड़की द्वारा जारी जे.ई.ई. (एडवांस्ड) 2026 के आंकड़े उत्साहवर्धक हैं। इस परीक्षा में 3,052 दिव्यांग अभ्यर्थियों ने पंजीकरण कराया, जिनमें से 2,864 दोनों प्रश्नपत्रों में सम्मिलित हुए तथा 887 अभ्यर्थियों ने परीक्षा उत्तीर्ण की। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (IITs) में बेंचमार्क दिव्यांगता वाले विद्यार्थियों के लिए लगभग 870 सीटें आरक्षित हैं, जिससे अधिकांश सफल अभ्यर्थियों को आई. आई.टी. में प्रवेश प्राप्त करने का उचित अवसर उपलब्ध हो सकता है। अब यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि इन विद्यार्थियों को अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए, आवश्यकता होने पर आर्थिक सहायता के साथ-साथ सुगम्य शिक्षण वातावरण और उनकी ज़रूरत के अनुरूप अध्ययन सामग्री भी मिले।

4. आर्थिक सशक्तिकरण : कल्याण से आत्मनिर्भरता की ओर

दिव्यांगजनों के लिए कानूनी संरक्षण और शिक्षा आवश्यक हैं, किन्तु वास्तविक सशक्तिकरण आर्थिक आत्मनिर्भरता से ही संभव है। यद्यपि शिक्षा और नीतिगत समर्थन में उल्लेखनीय सुधार हुआ है, फिर भी दिव्यांगजनों की श्रमबल भागीदारी राष्ट्रीय औसत से कम बनी हुई है। इसे ध्यान में रखते हुए सरकार का दृष्टिकोण अब कल्याण से आगे बढ़कर आर्थिक सशक्तिकरण की ओर केंद्रित हुआ है, जिसमें कौशल विकास, उद्यमिता, वित्तीय समावेशन तथा बाज़ारोन्मुख आजीविका को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है।

शिक्षा और रोज़गार के अवसरों के विस्तार के साथ-साथ स्वरोजगार को भी आर्थिक आत्मनिर्भरता का एक प्रभावी माध्यम माना जा रहा है। NAP-SDP/ PM DAKSH तथा केंद्रीय बजट 2026-27 में घोषित 'दिव्यांग कौशल योजना' जैसी पहल उद्योगोन्मुख कौशल विकास के माध्यम से दिव्यांगजनों की रोज़गार क्षमता और स्वरोज़गार के अवसरों को बढ़ाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम हैं। सरकार द्वारा समर्थित कौशल विकास कार्यक्रमों में पारंपरिक एवं आधुनिक दोनों प्रकार के व्यवसायों को सम्मिलित किया गया है। पारंपरिक क्षेत्रों में हाथ की कढ़ाई, पीतल शिल्प, आभूषण निर्माण, लकड़ी की नक्काशी, सिलाई आदि जैसे रोज़गारोन्मुख प्रशिक्षण दिए जाते हैं, जिनके लिए आवश्यक उपकरणों एवं मशीनों की भी व्यवस्था की जाती है। इसके साथ ही सॉफ्टवेयर विकास, विजुअल कम्युनिकेशन डिज़ाइन, ग्रीन हाइड्रोजन प्लांट तकनीशियन, वीडियो ब्लॉगर तथा टेलीहेल्थ सेवा

समन्वयक जैसे आधुनिक एवं उभरते क्षेत्रों में भी प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है, जिससे दिव्यांगजनों के लिए नए रोज़गार एवं स्वरोज़गार के अवसर सृजित हो रहे हैं। इन प्रयासों को राष्ट्रीय दिव्यांगजन वित्त और विकास निगम (NDFDC) द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे रियायती वित्त सहयोग से और अधिक मज़बूती मिल सकती है।

5. एन.डी.एफ.डी.सी : वित्तीय सहायता से आगे, आत्मनिर्भरता की ओर

दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग (DEPwD), सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत राष्ट्रीय दिव्यांगजन वित्त और विकास निगम (NDFDC) दिव्यांगजनों के आर्थिक सशक्तिकरण का प्रमुख राष्ट्रीय संस्थान है। वर्ष 1997 में स्थापित यह निगम रियायती ऋण, शिक्षा ऋण, कौशल विकास तथा उद्यमिता को बढ़ावा देकर दिव्यांगजनों को आत्मनिर्भर बनाने का कार्य कर रहा है।

निगम की दिव्यांगजन स्वावलंबन योजना (DSY) के अंतर्गत स्वरोज़गार, उच्च शिक्षा, आवास तथा सहायक उपकरणों आदि के लिए ₹50 लाख तक का रियायती ऋण उपलब्ध कराया जाता है। स्वरोज़गार ऋण पर 5 से 9 प्रतिशत वार्षिक तथा शिक्षा ऋण पर मात्र 4 प्रतिशत वार्षिक ब्याज लिया जाता है। यह सुविधा राज्य चैनलाइजिंग एजेंसियों, चुनिंदा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के माध्यम से देशभर में उपलब्ध है।

5.1 'दिव्य कला मेला': प्रतिभा को बाज़ार से जोड़ने की पहल

एन.डी.एफ.डी.सी. केवल वित्त उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं है। 'दिव्य कला मेला' के माध्यम से यह दिव्यांग शिल्पकारों, कलाकारों और उद्यमियों को राष्ट्रीय स्तर पर अपने उत्पादों के प्रदर्शन और विपणन का मंच भी उपलब्ध करा रहा है।

दिसंबर 2022 से अब तक देश के विभिन्न शहरों में 30 दिव्य कला मेलों का आयोजन किया जा चुका है, जिनमें 2,300 से अधिक दिव्यांग प्रतिभागियों ने भाग लिया और लगभग ₹24 करोड़ की बिक्री दर्ज की गई। इस पहल ने न केवल दिव्यांग उद्यमियों की आय बढ़ाई है, बल्कि समाज में उनकी क्षमता और रचनात्मकता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण भी विकसित किया है।

इसी प्रकार एनडीएफडीसी, NAP-SDP–PM DAKSH के अंतर्गत कौशल विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा विभिन्न छात्रवृत्तियों एवं अन्य योजनाओं के लिए केंद्रीय नोडल एजेंसी (CNA) के रूप में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

6. उपलब्धियाँ

अपनी स्थापना से अब तक एन.डी.एफ.डी.सी. ने देशभर में ₹1,800 करोड़ से अधिक की रियायती वित्तीय सहायता प्रदान कर 2.74 लाख से अधिक दिव्यांगजनों को लाभान्वित किया है। 98 प्रतिशत निधि उपयोग तथा 96.67 प्रतिशत संचयी वसूली दर इस बात का प्रमाण हैं कि सामाजिक उत्तरदायित्व और वित्तीय अनुशासन साथ-साथ चल सकते हैं। आज एन.डी.एफ.डी.सी. दिव्यांगजनों के आर्थिक सशक्तिकरण का एक विश्वसनीय और प्रभावी मॉडल बन रहा है।

दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग (DEPwD) की विभिन्न छात्रवृत्ति योजनाएँ और एन.डी.एफ.डी.सी. की अत्यंत रियायती शिक्षा ऋण योजना यह सुनिश्चित कर रही हैं कि आर्थिक अभाव किसी भी प्रतिभाशाली दिव्यांग विद्यार्थी के उच्च शिक्षा प्राप्त करने में बाधा न बने।

एन.डी.एफ.डी.सी. के माध्यम से भारत और विदेश में उच्च शिक्षा के लिए ₹50 लाख तक का शिक्षा ऋण मात्र 4 प्रतिशत वार्षिक ब्याज पर उपलब्ध कराया जाता है। यह सुविधा पंजाब नेशनल बैंक, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ इंडिया, आईडीबीआई बैंक, जम्मू एवं कश्मीर बैंक तथा विभिन्न क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के माध्यम से उपलब्ध है। दूसरी ओर, दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग की छात्रवृत्ति योजनाएँ शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विद्यार्थियों को आर्थिक संबल प्रदान कर उन्हें आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं। इन पहलों का उद्देश्य केवल वित्तीय सहायता देना नहीं, बल्कि यह विश्वास जगाना है कि योग्यता और संकल्प के आगे आर्थिक सीमाएँ बाधा नहीं बनेंगी।

7. उपसंहार

आज भारत में दिव्यांगजन समावेशन केवल सामाजिक कल्याण का विषय नहीं, बल्कि समावेशी और विकसित भारत के निर्माण का आधार बन चुका है। सुदृढ़ कानून, आरक्षण, छात्रवृत्ति, कौशल विकास, डिजिटल पहल, सुलभ वित्त और उद्यमिता को प्रोत्साहन देने वाली योजनाओं ने दिव्यांगजनों के लिए नए अवसरों के द्वार खोले हैं।

इन प्रयासों में राष्ट्रीय दिव्यांगजन वित्त और विकास निगम (NDFDC) की भूमिका उल्लेखनीय है। रियायती वित्त, शिक्षा ऋण, कौशल विकास, स्वरोज़गार और दिव्य कला मेला जैसी पहलों के माध्यम से निगम दिव्यांगजनों को सहायता का पात्र नहीं, बल्कि आत्मनिर्भर उद्यमी, कुशल पेशेवर और राष्ट्र निर्माण के सक्रिय भागीदार बना रहा है।

विकसित भारत 2047 का सपना तभी साकार होगा, जब प्रत्येक दिव्यांगजन को शिक्षा, कौशल, वित्त, तकनीक और बाज़ार तक पहुँच के समान अवसर प्राप्त होंगे। जब उनकी प्रतिभा को अवसर मिलेगा, तब उनका सशक्तिकरण केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं रहेगा, बल्कि भारत की सामाजिक प्रगति और आर्थिक समृद्धि का भी आधार बनेगा। यही समावेशी विकास का वास्तविक स्वरूप है और आत्मनिर्भर भारत की सच्ची पहचान भी।

संदर्भ

1. Buckup, S. (2009). *The Price of Exclusion: The Economic Consequences of Excluding People with Disabilities from the World of Work* (Employment Working Paper No. 43). Antarrashtriya Shram Sangathan (International Labour Organization – ILO). Available at: https://www.ilo.org/publications/the-price-of-exclusion-economic-consequences-excluding-people-disabilities-world
2. Vishva Bank (World Bank). (2009). *People with Disabilities in India: From Commitments to Outcomes*. Vishva Bank. Available at: https://documents.worldbank.org/en/publication/documents-reports/documentdetail/577801468259486686/people-with-disabilities-in-india-from-commitments-to-outcomes
3. Sanyukt Rashtra (United Nations). (2006). *Convention on the Rights of Persons with Disabilities (CRPD)* (Divyaang Vyaktiyon ke Adhikaron Sambandhi Abhisamay). Available at: https://www.un.org/development/desa/disabilities/convention-on-the-rights-of-persons-with-disabilities.html
4. Sanyukt Rashtra (United Nations). (2015). *Transforming Our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development* (Hamari Duniya ka Roopantaran: Satat Vikas Hetu 2030 Agenda). Available at: ps://sdgs.un.org/2030agenda
5. *Status of Disability in India: A Review of Policy, Schemes, and Facts on Disability*. National Institute of Urban Affairs. 2020.
6. Ashoka University. (2023). *The Future of Disability Inclusion in Higher Education – White Paper.* Department of Empowerment of Persons with Disabilities (DEPwD), Ministry of Social Justice and Empowerment, Government of India. Official website. Available at: https://depwd.gov.in/
7. National Handicapped Finance and Development Corporation (NHFDC), Government of India. Official website. Available at: https://www.nhfdc.nic.in/

देशज अक्षरों से वैश्विक मुद्राक्षर - अभिकल्प तक

आशीष कुमार

डिज़ाइन विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल: artandtypes@gmail.com

सारांश

यह लेख भारतीय लिपियों के लिए विकसित नि:शुल्क मुद्राक्षर (Typeface/Font) 'ब्राह (Braah)' के निर्माण और उसके सांस्कृतिक महत्त्व को प्रस्तुत करता है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार देशज दृश्य परंपराओं और स्थानीय अक्षर-रूपों से प्रेरणा लेकर एक ऐसा मुद्राक्षर विकसित किया गया, जो भारतीय सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हुए वैश्विक डिजिटल संचार में भी प्रभावी रूप से उपयोग किया जा सके। साथ ही, यह लेख मुद्राक्षर को केवल लेखन का माध्यम नहीं, बल्कि भाषा, संस्कृति और तकनीक के बीच एक महत्त्वपूर्ण सेतु के रूप में देखने का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: भारतीय लिपियाँ, मुद्राक्षर, गुरुमुखी, टाइपफेस, दृश्य संस्कृति, वैश्विक संचार

भूमिका

डिजिटल संचार के वर्तमान दौर में मुद्राक्षर (Typeface/Font) हमारी संस्कृति के ऐसे माध्यम बन चुके हैं, जिनकी उपस्थिति होती तो है, पर अक्सर दिखाई नहीं देती। लेकिन, उनका प्रभाव बहुत गहरा होता है। मुद्राक्षर केवल किसी भाषा को लिखने का साधन नहीं हैं, बल्कि वे उसके इतिहास, सांस्कृतिक पहचान और दृश्य परंपरा का एक सजीव ज्ञान कोश हैं। साथ ही, वे यह भी तय करते हैं कि इस डिजिटल परिवर्तन के युग में किसी भाषा और उसकी लिपि को किस रूप में देखा और समझा जाएगा।

अक्सर मुद्राक्षर की चर्चा उसकी सुंदरता, पठनीयता या ब्रांड पहचान के संदर्भ में की जाती है, जबकि उसकी सांस्कृतिक भूमिका भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। मानव सभ्यता के विकास में लिपियों ने ज्ञान के संरक्षण, विचारों के आदान-प्रदान और सामाजिक परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। समय के साथ हस्तलिखित पांडुलिपियों से मुद्रण और फिर डिजिटल माध्यमों तक की यात्रा में लिपियों का स्वरूप और उनका उपयोग निरंतर बदलता रहा है। प्रत्येक तकनीकी परिवर्तन ने लिपियों की भूमिका और उनके प्रति लोगों की समझ को भी प्रभावित किया है।

यह लेख **'ब्राह (Braah)'**, एक गुरुमुखी मुद्राक्षर के विकास पर आधारित एक डिज़ाइन अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार एक मुक्त-स्रोत भारतीय मुद्राक्षर डिजिटल माध्यमों में व्यापक उपयोग के द्वारा भारतीय लिपियों की वैश्विक पहचान को सशक्त बना सकता है। **'ब्राह'** मुद्राक्षर

के विकास और उसके सार्वजनिक उपयोग के माध्यम से यह लेख दिखाता है कि मुद्राक्षर सांस्कृतिक सॉफ्ट पावर के प्रभावी माध्यम के रूप में भी कार्य कर सकते हैं।

यह अध्ययन टाइप डिज़ाइन की एक वैकल्पिक सोच भी प्रस्तुत करता है। सामान्यतः बहुभाषी मुद्राक्षरों में लैटिन लिपि को आधार मानकर भारतीय लिपियों को उसके अनुरूप विकसित किया जाता है। इसके विपरीत, **'ब्राह'** परियोजना में गुरुमुखी लिपि को मूल डिज़ाइन प्रणाली के रूप में अपनाया गया और उसके आधार पर लैटिन सहयोगी मुद्राक्षर विकसित किया गया। इस दृष्टिकोण ने बहुभाषी मुद्रण (typography) में लंबे समय से चली आ रही उस परंपरा को चुनौती दी, जिसमें लैटिन लिपि को प्राथमिक स्थान दिया जाता रहा है।

इस अध्ययन के अनुसार टाइप डिज़ाइन केवल अक्षरों का निर्माण भर नहीं है। यह तकनीक, संस्कृति, भाषा, सुगमता (Accessibility) और वैश्विक संचार के संगम पर स्थित एक रचनात्मक प्रक्रिया है। नि:शुल्क मुद्राक्षर सांस्कृतिक आधारभूत ढाँचे (Cultural Infrastructure) का निर्माण करते हैं, जो यह निर्धारित करते हैं कि डिजिटल दुनिया में भाषाएँ किस प्रकार उपयोग की जाएँगी और हमारी सांस्कृतिक पहचान किस रूप में अभिव्यक्त होगी।

मुख्य विषय

1. प्रेरणा और शोध की शुरुआत

हर शोध या डिज़ाइन परियोजना के पीछे कोई न कोई व्यक्तिगत अनुभव या जिज्ञासा होती है। **ब्राह (Braah)** मुद्राक्षर के विकास की प्रेरणा भी मेरे बचपन के एक अनुभव से जुड़ी है।

मेरे गृहनगर हल्दौर (उत्तर प्रदेश) में मेरे घर के पास एक ऐतिहासिक गुरुद्वारा है, जिसका संबंध प्रथम सिख गुरु **नानक देव जी** से माना जाता है। *जनमसाखियों* के अनुसार, गुरु नानक देव जी के इस



चित्र 1: पुराना और नया गुरुद्वारा, हल्दौर, उत्तर प्रदेश (स्रोत: लेखक)

स्थान पर आगमन के बाद स्थानीय लोगों और तत्कालीन शासक ने मिलकर इस गुरुद्वारे का निर्माण कराया (चित्र 1)। बचपन में यह गुरुद्वारा मेरे लिए केवल आसपास का एक परिचित स्थान था, लेकिन एक घटना ने इसे देखने का मेरा नज़रिया बदल दिया।

एक दिन मैंने गुरुद्वारे के बाहर एक साइन-बोर्ड कलाकार को टिन के बोर्ड पर गुरुमुखी अक्षर हाथ से लिखते हुए देखा। उस समय मुझे गुरुमुखी पढ़नी नहीं आती थी, फिर भी उन अक्षरों की बनावट, उनकी लय और ब्रश की सहज गति ने मुझे बहुत आकर्षित किया। ऐसा लगा मानो अक्षर केवल लिखे नहीं जा रहे हों, बल्कि आकार ले रहे हों। उन्हें देखते-देखते मेरे भीतर अक्षरों की दुनिया को समझने की उत्सुकता जाग उठी।

जब मैंने कलाकार से पूछा कि वह क्या लिख रहे हैं, तो उन्होंने बताया कि यह गुरुद्वारे के जीर्णोद्धार कार्य से संबंधित सूचना है, जिसे कार सेवा के सहयोग से पूरा किया जा रहा है तथा राज्य सरकार का भी इसमें सहयोग है। कला में मेरी रुचि देखकर उन्होंने मुझे भी एक अक्षर बनाने का अवसर दिया। मेरा पहला प्रयास सफल नहीं था, लेकिन उसी क्षण से अक्षरों के स्वरूप को समझने और उन्हें बनाने की जिज्ञासा मेरे भीतर गहराई से बस गई।

समय के साथ मैंने स्वयं गुरुमुखी लिपि सीखनी शुरू की। बाद में मुझे कार सेवा के स्वयंसेवकों के साथ बैनर और धार्मिक संदेश लिखने में सहयोग करने का अवसर भी मिला। इन अनुभवों ने गुरुमुखी लिपि के साथ मेरा एक भावनात्मक और दृश्य संबंध स्थापित किया, जिसने आगे चलकर टाइप डिज़ाइन के प्रति मेरी रुचि को दिशा दी।

वर्षों बाद, डिज़ाइन शिक्षा के दौरान मैंने एक देवनागरी मुद्राक्षर विकसित किया, जिसे बाद में आई.आई.टी. बॉम्बे के आई.डी.सी. डिज़ाइन स्कूल ने अपने हिंदी लोगो (Logo) और द्विभाषी संचार प्रणाली में अपनाया। इस अनुभव से मुझे यह समझने का अवसर मिला कि टाइप डिज़ाइन केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि किसी संस्था, भाषा और संस्कृति की पहचान को भी सशक्त बनाने का माध्यम है। इसके बावजूद गुरुमुखी लिपि के प्रति बचपन की जिज्ञासा मेरे मन में बनी रही और मैंने उसे एक डिज़ाइनर की दृष्टि से समझने का निर्णय लिया।

जब मैंने गुरुमुखी टाइपोग्राफी का गहराई से अध्ययन किया, तो यह महसूस हुआ कि डिजिटल परिवेश में इसके विकास के सामने कई चुनौतियां हैं। कंप्यूटर तकनीक के शुरुआती दौर में लैटिन लिपि को प्राथमिकता मिली, जबकि भारतीय लिपियों को बाद में डिजिटल प्रणालियों में शामिल किया गया। इसके कारण तकनीकी सीमाओं, कम व्यावसायिक निवेश और सीमित शोध के चलते भारतीय लिपियों के लिए मुद्राक्षर विकास अपेक्षाकृत धीमा रहा।

2. समस्या का स्वरूप

उपलब्ध गुरुमुखी मुद्राक्षरों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हुआ कि मुक्त-स्रोत (Open Source) स्वरूप में उपलब्ध उपयोगी व आकर्षक डिस्प्ले मुद्राक्षरों की संख्या बहुत कम है। अधिकांश मुद्राक्षर लंबे पाठ (Body Text) के लिए विकसित किए गए हैं, जबकि शैलीगत विविधता सीमित है। इसके अतिरिक्त, कई मुद्राक्षर ऐसे लाइसेंस के अंतर्गत उपलब्ध हैं, जिनके कारण उनका स्वतंत्र उपयोग और विकास आसान नहीं है। एक और महत्त्वपूर्ण कमी यह थी कि अधिकांश गुरुमुखी मुद्राक्षर के साथ ऐसे लैटिन अक्षर उपलब्ध नहीं थे, जो उनके दृश्य स्वरूप से मेल खाते हों। इससे बहुभाषी डिज़ाइन और वैश्विक संचार में उनका उपयोग बहुत सीमित हो जाता है।

इन्हीं अवलोकनों से इस अध्ययन का मुख्य प्रश्न सामने आया—क्या भारतीय दृष्टिकोण को आधार बनाकर ऐसा गुरुमुखी मुद्राक्षर विकसित किया जा सकता है, जो अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखते हुए वैश्विक स्तर पर भी उपयोगी हो? साथ ही, क्या लैटिन सहयोगी (Companion) मुद्राक्षर को भारतीय लिपि की डिज़ाइन-तर्क प्रणाली के आधार पर विकसित किया जा सकता है, बजाय इसके कि भारतीय लिपियों को हमेशा लैटिन के अनुरूप ढाला जाए?

इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने के उद्देश्य से **'ब्राह'** मुद्राक्षर का विकास किया गया। यह परियोजना केवल एक नए मुद्राक्षर के निर्माण तक सीमित नहीं है, बल्कि भारतीय लिपियों को केंद्र में रखकर वैश्विक स्तर पर उपयोगी, सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील और तकनीकी रूप से सक्षम टाइप डिज़ाइन की संभावनाओं को प्रस्तुत करने का एक प्रयास भी है।

3. कार्यप्रणाली एवं अभिकल्प प्रक्रिया

'ब्राह' मुद्राक्षर के विकास में अभ्यास-आधारित शोध (Practice-based Research) पद्धति अपनाई गई। इस पद्धति में डिज़ाइन की वास्तविक प्रक्रिया को ही शोध का महत्त्वपूर्ण आधार माना जाता है। अर्थात्, केवल सिद्धांतों का अध्ययन ही नहीं, बल्कि स्वयं डिज़ाइन करते हुए प्राप्त अनुभव और निष्कर्ष भी शोध का हिस्सा होते हैं।

इस मुद्राक्षर के विकास के लिए सबसे पहले गुरुमुखी लिपि से संबंधित दृश्य सामग्री एकत्र की गई। इसमें पारंपरिक साइनबोर्ड, हस्तलिखित अक्षर, मुद्रित सामग्री और ऐतिहासिक संदर्भों का अध्ययन शामिल था। इसके बाद गुरुमुखी मुद्राक्षर के विकासक्रम और उसकी दृश्य विशेषताओं का अध्ययन किया गया। अक्षरों की बनावट, अनुपात, रेखाओं की मोटाई, वक्रता और उनके आपसी संतुलन का विश्लेषण किया गया। इन अध्ययनों के आधार पर अनेक प्रारंभिक रेखाचित्र (स्केच) तैयार किए गए, जिन्हें लगातार संशोधित और परिष्कृत किया गया। इस क्रमिक प्रक्रिया के माध्यम से **ब्राह** मुद्राक्षर का अंतिम स्वरूप विकसित हुआ (चित्र 2)।



चित्र 2. अनुसंधान कार्यप्रणाली

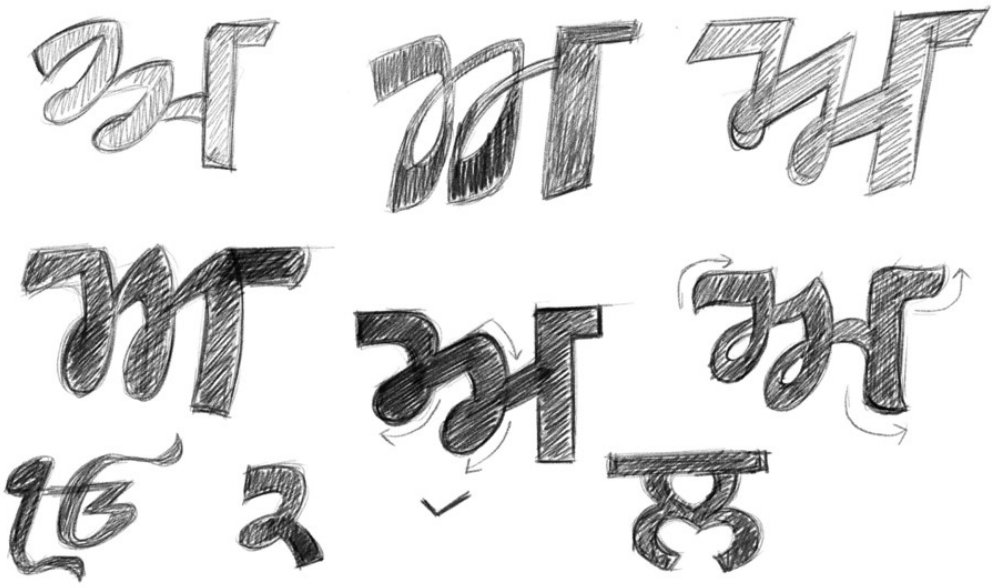
इस प्रकार, यह अध्ययन दर्शाता है कि टाइप डिज़ाइन केवल अक्षरों का निर्माण नहीं, बल्कि अवलोकन, प्रयोग, विश्लेषण और निरंतर सुधार पर आधारित एक शोध प्रक्रिया भी है। ऐसी अभ्यास-आधारित शोध पद्धति डिज़ाइनर को समस्याओं को समझने, नए समाधान विकसित करने और उनके परिणामों का मूल्यांकन करने का अवसर प्रदान करती है।

3.1 अनुसंधान और प्रारंभिक रेखांकन

- ऐतिहासिक विकास
- देशज टाइपोग्राफी का अध्ययन
- प्रारंभिक रेखाचित्र

इस प्रक्रिया की शुरुआत देशज टाइपोग्राफी के व्यापक दृश्य प्रलेखन (Visual Documentation) से हुई। इसके अंतर्गत हस्तलिखित साइनबोर्ड, पुस्तकों के आवरण, धार्मिक प्रकाशन, वाहनों पर लिखे अक्षर, पोस्टर तथा स्थानीय व्यावसायिक ग्राफिक्स का विशेष रूप से अध्ययन किया गया। इन स्रोतों से यह समझने में सहायता मिली कि औपचारिक टाइपोग्राफिक प्रणालियों से बाहर लिपि किस प्रकार व्यवहार करती है। साथ ही, उपकरणों, सामग्री और लेखन की गति के प्रभाव से उत्पन्न उसकी विविध अभिव्यक्तियाँ भी सामने आईं।

यह चरण एक प्रकार के दृश्य नृवंशविज्ञान (Visual Ethnography) के रूप में कार्य करता है, जिसके माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया कि दैनिक सांस्कृतिक परिवेश में टाइपोग्राफी किस प्रकार मौजूद रहती है और उपयोग में आती है। इन अवलोकनों ने ऐसी डिज़ाइन दिशा निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जो अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी होने के साथ-साथ समकालीन उपयोग की आवश्यकताओं को भी पूरा कर सके (चित्र 3)।



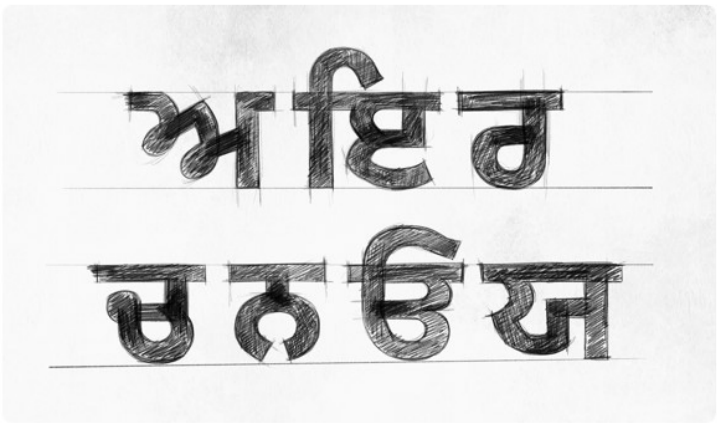
चित्र 3: प्रारंभिक रेखांकन अन्वेषण

3.2 संरचना

- मूल अक्षरों की पहचान
- मूल अक्षरों का रेखांकन
- अनुपात का निर्धारण
- आधारभूत संरचना का निर्धारण

अगले चरण में प्रस्तावित मुद्राक्षर की संरचनात्मक दिशा निर्धारित की गई। इस प्रक्रिया में सबसे पहले उन सामान्य अक्षरों की पहचान की गई, जिनमें पूरे अक्षर-समूह की प्रमुख दृश्य विशेषताएँ विद्यमान थीं। इसके बाद इन मूल अक्षरों का रेखांकन किया गया तथा उनके अनुपात निर्धारित किए गए। इन्हीं के आधार पर एक ऐसा दृश्य व्याकरण (Visual Grammar) विकसित किया गया, जिसने शेष अक्षरों के निर्माण की संरचनात्मक रूपरेखा प्रदान की (चित्र 4)।

No.	Root Letter	Derived Letters
1	ਅ	ਆ ਐ ਔ ਮ ਸ ਸ਼ ਮ
2	ਇ	ਈ ਏ ਬ
3	ਰ	ਗ ਗ਼ ਹ ਕ
4	ਚ	ਦ ਜ ਜ਼ ੜ ਵ ਛ ਝ ਢ
5	ਨ	ਟ ਠ ਲ ਲ਼ ਫ ਫ਼ ਢ ਣ
6	ਓ	ਉ ਊ ਤ ੜ ਡ ਭ
7	ਯ	ਧ ਥ ਪ ਖ ਖ਼ ਘ

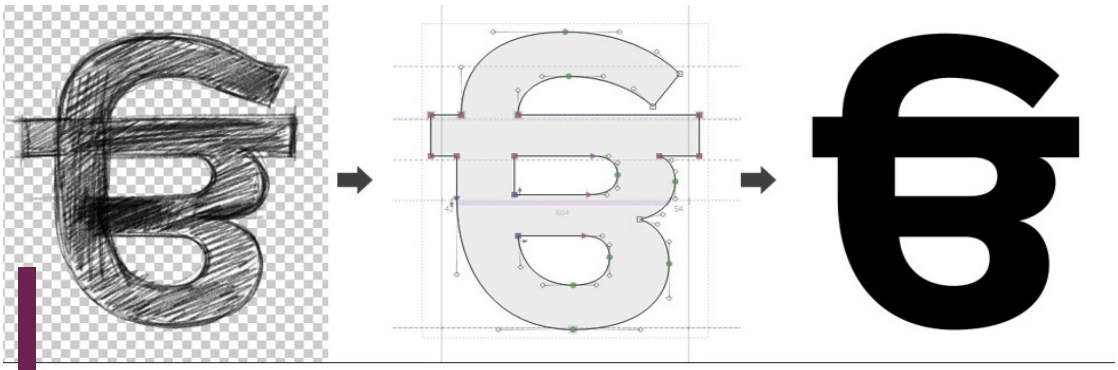


चित्र 4: समानता के आधार पर मूल अक्षरों का समूहकरण एवं रेखांकन

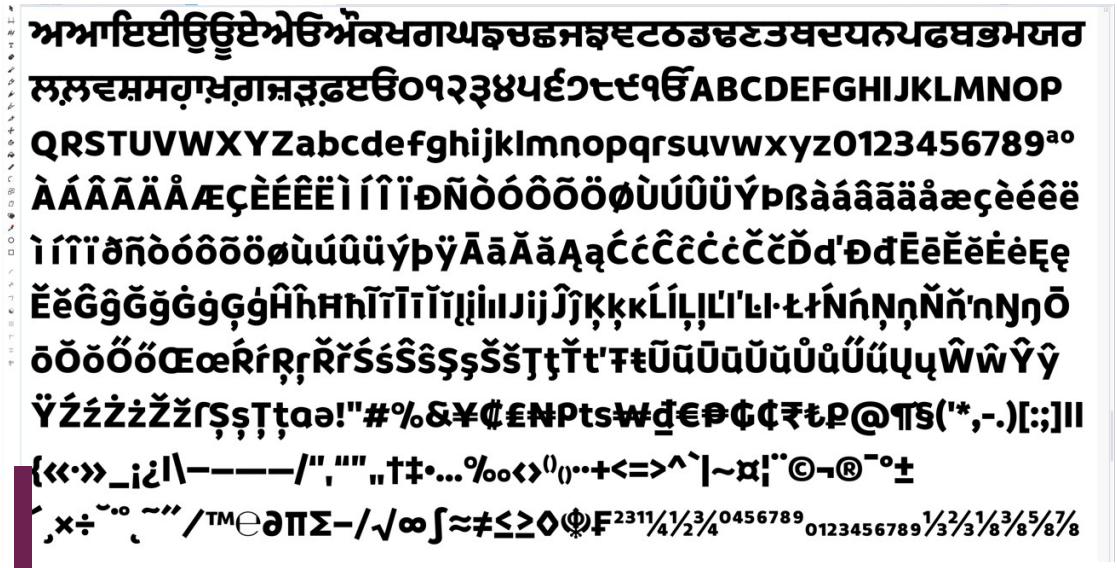
3.3 अभिकल्प

- डिजिटलीकरण
- अक्षर-समूह का विस्तार
- लैटिन अक्षर-समूह का अभिकल्प

पिछले चरण में संरचनात्मक दिशा निर्धारित होने के बाद मूल अक्षरों (Root Letters) का डिजिटलीकरण किया गया तथा उनमें आवश्यक परिष्करण किए गए (चित्र 5)। इसके आधार पर गुरुमुखी लिपि के लिए पूर्ण अक्षर-समूह (Character Set) विकसित किया गया। साथ ही, गुरुमुखी के समानांतर एक लैटिन सहयोगी (Latin Companion) अक्षर-समूह का भी अभिकल्प तैयार किया गया। इसमें शैलीगत विशेषताओं की प्रत्यक्ष नकल करने के बजाय, अनुपातों की समानता, दृश्य घनत्व (Visual Density) के संतुलन तथा समग्र दृश्य स्वर (Tonal Matching) के आधार पर लैटिन अक्षरों का विकास किया गया। इससे दोनों लिपियाँ बिना किसी शैलीगत वर्चस्व के एक-दूसरे के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से उपयोग की जा सकीं (चित्र 6)।



चित्र 5: डिजिटलीकरण प्रक्रिया : रेखांकनों को फ़ोटोशॉप में संशोधित कर फ़ॉन्ट निर्माण सॉफ़्टवेयर में संदर्भ के रूप में रखकर अंतिम ग्लिफ़ तैयार किया गया।

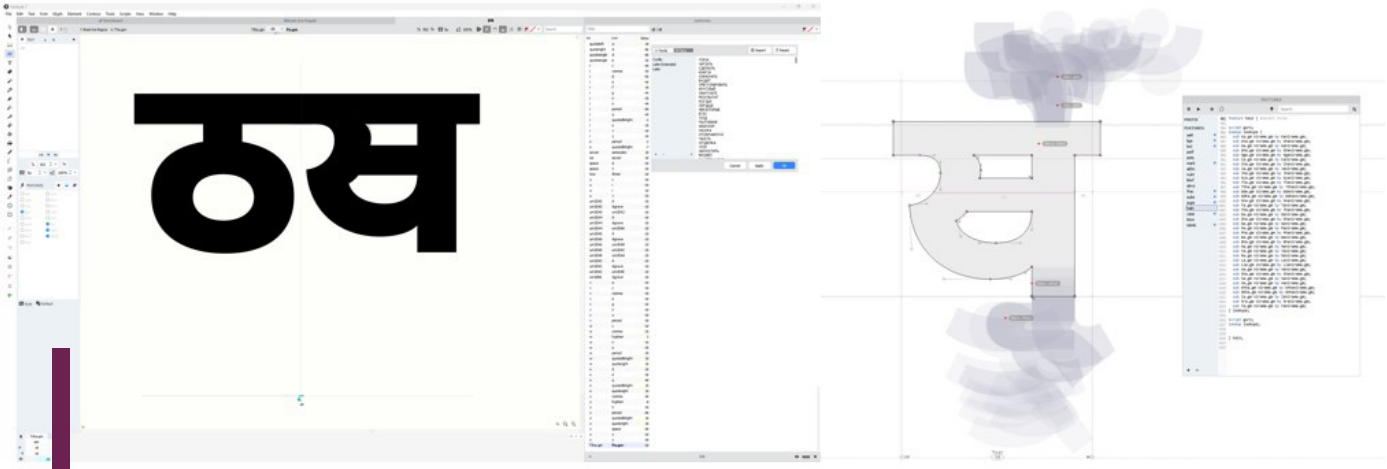


चित्र 6: गुरुमुखी एवं लैटिन लिपियों का पूर्ण अक्षर-समूह

3.4 विकास

- स्पेसिंग एवं कर्निंग
- परीक्षण

मुद्राक्षर के तकनीकी विकास में अक्षरों के बीच उचित दूरी (Spacing) तथा विशेष अक्षर-युग्मों के बीच संतुलित अंतर (Kerning) निर्धारित किया गया। इसके अतिरिक्त, विभिन्न स्क्रीन पर प्रदर्शन (Screen Testing) और डिजिटल रेंडरिंग (Digital Rendering) के लिए मुद्राक्षर का अनुकूलन (Optimisation) भी किया गया। साथ ही, यूनिकोड (Unicode) मानकों तथा विभिन्न ब्राउज़र, ऑपरेटिंग सिस्टम और डिजिटल उपकरणों के साथ संगतता (Cross-platform Compatibility) सुनिश्चित की गई, ताकि मुद्राक्षर का उपयोग सभी प्रमुख डिजिटल मंचों पर सहजता से किया जा सके (चित्र 7)।



चित्र 7: टाइपफ़ेस को कार्यात्मक बनाने के लिए स्पेसिंग, कर्निंग तथा अन्य आवश्यक प्रक्रियाएँ।

3.5 प्रकाशन एवं निःशुल्क उपलब्धता

- गूगल फ़ॉन्ट्स को प्रस्ताव
- गूगल फ़ॉन्ट्स के लिए फ़ॉन्ट परीक्षण
- प्रकाशन

अंतिम चरण में मुद्राक्षर के वितरण (Distribution) की रणनीति पर कार्य किया गया। Google Fonts के साथ सहयोग के परिणामस्वरूप **ब्राह** मुद्राक्षर को SIL Open Font License के अंतर्गत एक मुक्त-स्रोत (Open Source) परियोजना के रूप में प्रकाशित किया गया। यह निर्णय इस विचार को प्रतिबिंबित करता है कि टाइपोग्राफी केवल एक डिज़ाइन उत्पाद नहीं, बल्कि सार्वजनिक उपयोग के लिए उपलब्ध एक आधारभूत अवसंरचना (Public Infrastructure) भी है। मुक्त उपलब्धता (Open Access) मुद्राक्षर के व्यापक उपयोग को बढ़ावा देती है, नए प्रयोगों को प्रोत्साहित करती है तथा इसे विविध भाषाई और संचार संबंधी संदर्भों में उपयोग के लिए सुलभ बनाती है।

4. अभिकल्प के परिणाम : 'ब्राह' मुद्राक्षर

इस शोध का प्रमुख परिणाम 'ब्राह (Braah)' के रूप में सामने आया, जो इस अध्ययन के मुख्य अभिकल्प (Design Artifact) के रूप में विकसित एक समकालीन मुक्त-स्रोत (Open Source) गुरुमुखी डिस्प्ले मुद्राक्षर है (चित्र 8)। इसे एक आकर्षक, प्रभावशाली और सहज डिस्प्ले मुद्राक्षर के रूप में अभिकल्पित किया गया है, जो संरचनात्मक स्पष्टता और अभिव्यक्तिपूर्ण सौंदर्य के बीच संतुलन बनाए रखते हुए अपनी विशिष्ट दृश्य पहचान स्थापित करता है। इस मुद्राक्षर का विकास मुख्यतः उन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया गया है, जहाँ अक्षरों का दृश्य प्रभाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है, जैसे—ब्रांड पहचान, शीर्षक, सांस्कृतिक संचार, प्रदर्शनियां तथा इंटरफ़ेस। इसके अभिकल्प में सुदृढ़ स्ट्रोक संरचना, खुले आंतरिक रिक्त स्थान (Open Counters) तथा समान भार-वितरण (Consistent



चित्र 8: 'ब्राह' टाइपफ़ेस के स्पेसिमेन चित्र

Weight Distribution) पर विशेष ध्यान दिया गया है, जिससे यह स्पष्ट रूप से पठनीय होने के साथ-साथ अपनी विशिष्ट दृश्य पहचान भी बनाए रखता है।

इस परियोजना की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि गुरुमुखी के साथ-साथ एक लैटिन सहयोगी (Latin Companion) अक्षर-समूह का समानांतर विकास है। सामान्यतः भारतीय लिपियों को लैटिन टाइपोग्राफी के अनुरूप विकसित किया जाता है, जबकि इस परियोजना में यह प्रक्रिया उलट दी गई। लैटिन अक्षरों का अभिकल्प गुरुमुखी अक्षरों के अनुपात, दृश्य लय और समग्र स्वरूप के आधार पर किया गया। इससे गुरुमुखी लिपि परियोजना का मूल आधार बनी रही और साथ ही बहुभाषी उपयोग की आवश्यकता भी पूरी हो सकी।

ब्राह मुद्राक्षर गुरुमुखी, लैटिन तथा विस्तारित लैटिन (Extended Latin) अक्षर-समूहों का समावेश करता है, जिसके कारण इसका उपयोग विश्व की 500 से अधिक भाषाओं में किया जा सकता है। यह बहुभाषी क्षमता इस परियोजना का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य थी, जिससे एक भारतीय मुद्राक्षर केवल क्षेत्रीय उपयोग तक सीमित न रहकर वैश्विक डिजिटल संचार का भी प्रभावी हिस्सा बन सके।

मुक्त-स्रोत (Open Source) रूप में प्रकाशित होने के कारण ब्राह मुद्राक्षर को डिज़ाइनर, शिक्षक, शैक्षणिक संस्थान तथा सॉफ़्टवेयर डेवलपर बिना किसी आर्थिक बाधा के अपनाकर उपयोग कर सकते हैं। यह निर्बाध पहुँच (Open Access) इसके व्यापक उपयोग, निरंतर विकास और वास्तविक सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव की संभावनाओं को बढ़ाती है।

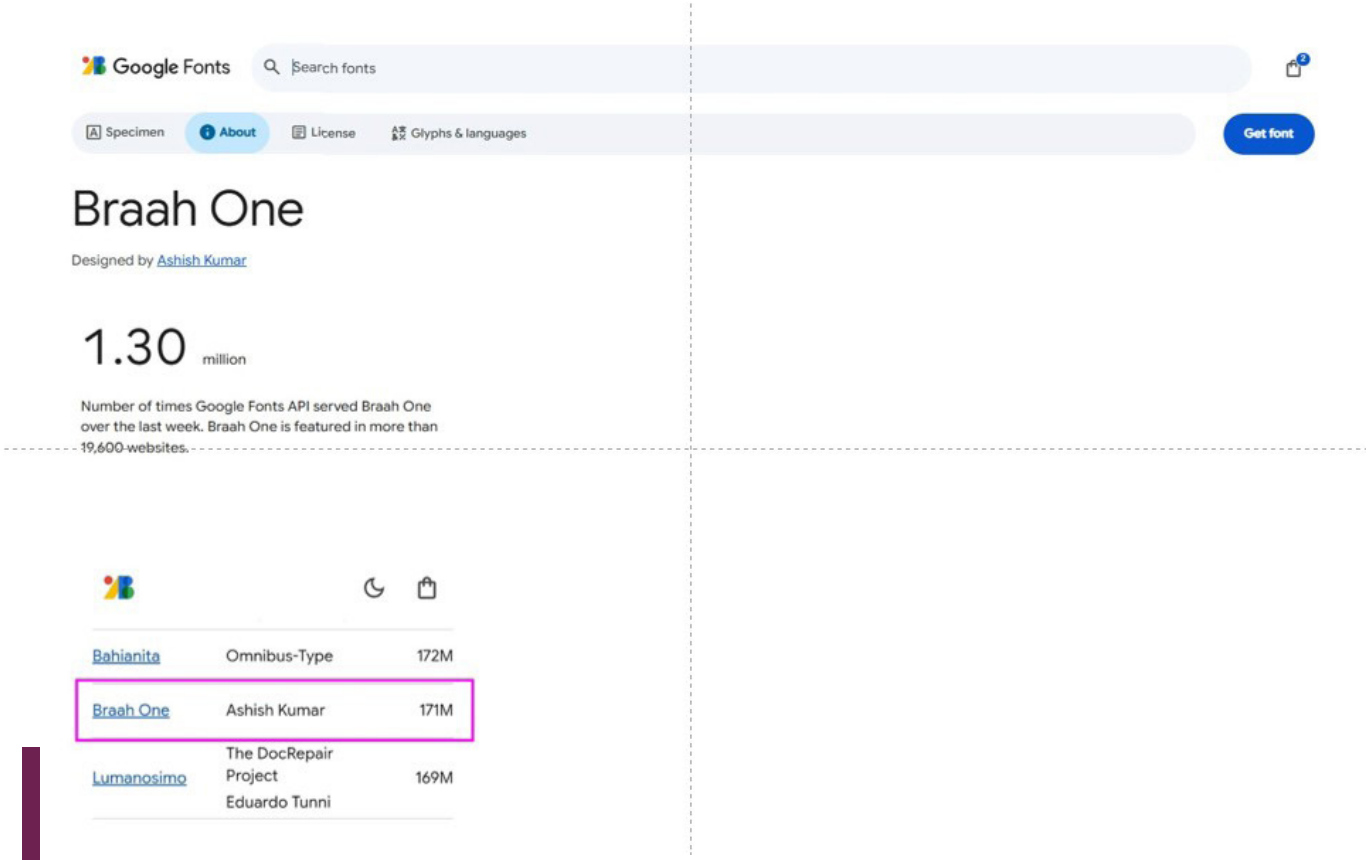
इस प्रकार ब्राह केवल एक शोध परियोजना नहीं, बल्कि भारतीय भाषाओं और वैश्विक डिज़ाइन समुदाय के लिए एक साझा डिजिटल संसाधन के रूप में स्थापित होता है।

5. सामाजिक एवं वैश्विक प्रभाव

ब्राह (Braah) मुद्राक्षर का प्रभाव यह दर्शाता है कि टाइपोग्राफी केवल अक्षरों का स्वरूप निर्धारित करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक आधारभूत अवसंरचना (Cultural Infrastructure) के रूप में भी कार्य कर सकती है। प्रकाशित होने के बाद से इस मुद्राक्षर का उपयोग 170 मिलियन से अधिक उपयोगकर्ताओं द्वारा किया जा चुका है। यह 20,000 से अधिक वेबसाइटों पर प्रयुक्त हो रहा है तथा Adobe Fonts जैसे प्रमुख मंचों पर भी उपलब्ध है। इस स्तर पर इसकी स्वीकृति यह प्रमाणित करती है कि मुक्त-स्रोत (Open Source) डिज़ाइन दैनिक डिजिटल संचार को सूक्ष्म किंतु प्रभावी ढंग से प्रभावित कर सकता है।

गुरुमुखी लिपि के लिए अभिव्यक्ति की नई संभावनाएं विकसित करने तथा उसके साथ एक उपयुक्त लैटिन सहयोगी (Latin Companion) अक्षर-समूह तैयार करने के कारण यह परियोजना गुरुमुखी की पहचान को बनाए रखते हुए उसे समकालीन और अंतरराष्ट्रीय संचार माध्यमों में प्रभावी रूप से उपयोग करने में सहायक सिद्ध हुई है।

इस प्रकार की परियोजनाएँ यह स्थापित करती हैं कि टाइपोग्राफी केवल अतीत की सांस्कृतिक धरोहर का



चित्र 9: ब्राह फ़ॉन्ट के अबाउट पेज के अंश तथा गूगल फ़ॉन्ट्स एनालिटिक्स के स्क्रीनशॉट।

संरक्षण नहीं करती, बल्कि लिपियों को निरंतर विकसित होने वाली दृश्य प्रणालियों (Visual Systems) के रूप में भी देखती है। इससे भारतीय लिपियाँ आधुनिक तकनीकी परिवेश में अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखते हुए सक्रिय रूप से भागीदारी कर सकती हैं।

अंततः **ब्राह** यह भी दर्शाता है कि डिज़ाइनर केवल दृश्य रूपों का निर्माण करने वाले व्यक्ति नहीं होते, बल्कि वे सांस्कृतिक पारिस्थितिकी (Cultural Ecosystem) के महत्त्वपूर्ण सहभागी भी होते हैं। मुक्त-स्रोत वितरण के माध्यम से टाइप डिज़ाइन विशिष्ट वर्ग तक सीमित न रहकर सुगमता (Accessibility), प्रतिनिधित्व (Representation) और सहभागिता (Participation) का प्रभावी माध्यम बन जाता है।

6. निष्कर्ष

मुक्त-स्रोत (Open Source) टाइपोग्राफी केवल डिज़ाइन तक सीमित नहीं है। यह भाषाओं और लिपियों की सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने, उन्हें अधिक सुलभ बनाने तथा वैश्विक संचार में उनका प्रभावी प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। अक्सर किसी लिपि से हमारा पहला परिचय उसके अर्थ से नहीं, बल्कि उसके दृश्य स्वरूप से होता है। अक्षरों की बनावट और शैली ही किसी भाषा और संस्कृति की पहली पहचान बनाती है।

ब्राह (Braah) मुद्राक्षर इसका एक उदाहरण है। इस प्रकार के मुद्राक्षरों का विकास और उन्हें मुक्त-स्रोत रूप में उपलब्ध कराना केवल एक डिज़ाइन परियोजना नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संरक्षण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। आधुनिक डिजिटल तकनीकों के माध्यम से लिपियों को अधिक लोगों तक पहुँचाया जा सकता है, जिससे शिक्षा, संचार और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के नए अवसर विकसित होते हैं।

आज जब भाषाएँ और लिपियाँ डिजिटल माध्यमों के ज़रिए भौगोलिक सीमाओं से परे पहुँच रही हैं, तब वे अपने साथ अपनी संस्कृति, इतिहास और पहचान भी

लेकर चलती हैं। इस पूरी प्रक्रिया में टाइपोग्राफी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह निर्धारित करती है कि कोई भाषा डिजिटल दुनिया में कैसी दिखाई देगी, उसे किस रूप में पढ़ा और समझा जाएगा तथा उसकी दृश्य पहचान किस प्रकार सुरक्षित रहेगी।

इस दृष्टि से टाइप डिज़ाइन केवल एक पेशा नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक दायित्व भी है। डिज़ाइनर केवल सुंदर अक्षरों का निर्माण नहीं करते, बल्कि वे यह भी सुनिश्चित करते हैं कि भाषाएँ और लिपियाँ बदलती तकनीकों के साथ जीवंत बनी रहें। एक मुक्त-स्रोत मुद्राक्षर भी वैश्विक स्तर पर किसी भाषा की उपस्थिति को सशक्त बना सकता है, सांस्कृतिक विविधता को संरक्षित कर सकता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए उसकी पहचान को सुरक्षित रख सकता है।

संदर्भ

1. Williams, E. (2008). A comparative study of the development of the Gurmukhi script. TypeCulture. https://typeculture.com/wp-content/uploads/2016/02/tc_article_50.pdf
2. Grewal, D. S. (2023, December 27). Travels of Guru Nanak: A brief. Sikh Philosophy Network. https://www.sikhphilosophy.net/threads/travels-of-guru-nanak-a-brief.54061/
3. Jagran. (2017, November 3). *1526 ई. में हल्दौर में आए थे श्री गुरुनानक देव जी - guru nanak comes in haldaur 1526*. https://www.jagran.com/uttar-pradesh/bijnor-guru-nanak-comes-in-haldour1526-16967593.html
4. Sharma, S. (2024, November 15). Bijnor News: 1526 में हल्दौर की धरा पर पड़े थे गुरु नानक देव के कदम [Bijnor News: Guru Nanak Dev's feet fell on the land of Haldaur in 1526]. Amar Ujala. https://www.amarujala.com/uttar-pradesh/bijnor/guru-nanak-devs-feet-fell-on-the-land-of-haldaur-in-1526-bijnor-news-c-14-mrt1038-707665-2024-11-15
5. Coles, S. (2012) The anatomy of type.
6. https://typeanatomy.com/
7. Dalvi, G. (2010) Conceptual model for Devanagari typeface.
8. Dalvi, G. (n.d.). Anatomy of Devanagari (1). Scribd. https://www.scribd.com/document/361285442/Anatomy-of-Devanagari-1

क्या जुगाड़ भी डिज़ाइन है? दिल्ली की मरम्मत संस्कृति और लोक-ज्ञान

गरिमा भारद्वाज
प्रो. सौरभ तिवारी

डिज़ाइन विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल:
[1]*GarimaBhardwajdesign.iitd.ac.in*
[2]*st@iitd.ac.in*



सारांश

यह लेख जुगाड़ को केवल तात्कालिक या कामचलाऊ उपाय नहीं, बल्कि स्थानीय अनुभव, कौशल और मरम्मत पर आधारित एक डिज़ाइन पद्धति के रूप में देखता है। इस लेख में दिल्ली की मरम्मत संस्कृति को उदाहरण बनाते हुए यह दिखाया गया है कि कारीगर पुरानी या खराब वस्तुओं को केवल ठीक नहीं करते, बल्कि उनमें नया मूल्य जोड़ते हैं, उनकी उपयोगी उम्र बढ़ाते हैं और उन्हें नए संदर्भों के योग्य बनाते हैं। यह जुगाड़ अपने स्थानीय संदर्भों में जन्म लेता है, पर इसके सिद्धांत औपचारिक और व्यापक डिज़ाइन विमर्श को भी दिशा दे सकते हैं। लेख का तर्क है कि औपचारिक डिज़ाइन शिक्षा और उद्योग मरम्मत, पुनः उपयोग, स्थानीय अनुकूलन, सामग्री की समझ और उपयोगकर्ता के निकट काम करने जैसी जुगाड़-आधारित प्रक्रियाओं से सीख सकते हैं। साथ ही, जुगाड़ की सुरक्षा, नैतिकता और राज्य की ज़िम्मेदारी से जुड़ी सीमाओं को भी स्वीकार किया गया है। इस प्रकार जुगाड़ को स्थानीय ज्ञान और अभ्यास से विकसित एक ऐसी डिज़ाइन सोच के रूप में समझा जा सकता है, जो वस्तुओं की उम्र बढ़ाती है, गुणवान बनाती है और उपभोक्ताओं को सक्रिय निर्माता में बदलती है।

मुख्य शब्द: जुगाड़, डिज़ाइन, दिल्ली, मरम्मत संस्कृति, स्थानीय ज्ञान, पुनः उपयोग

1. प्रस्तावना

आम तौर पर 'जुगाड़' का अर्थ किसी मुश्किल का तुरंत और कामचलाऊ समाधान निकालना माना जाता है। लेकिन डिज़ाइन के संदर्भ में जुगाड़ केवल अस्थायी उपाय नहीं है। यह उपलब्ध संसाधनों, स्थानीय कौशल, अनुभव और परिस्थिति की समझ के आधार पर समाधान बनाने की एक पद्धति भी है।

यह लेख दिल्ली को एक उदाहरण के रूप में लेता है, जहाँ मरम्मत करने वाले कारीगर जुगाड़ का उपयोग वस्तुओं को केवल चालू करने के लिए नहीं, बल्कि उनमें नया मूल्य जोड़ने के लिए करते हैं। वे खराब या पुरानी वस्तु की उपयोगी उम्र बढ़ाते हैं, उसके हिस्सों को नए काम में लगाते हैं और कई बार उसे उसके मूल उपयोग से अलग भूमिका भी देते हैं।

यहाँ जुगाड़ को औपचारिक डिज़ाइन की किसी विपरीत प्रक्रिया के रूप में नहीं देखा गया है। इसके बजाय यह पूछा गया है कि औपचारिक डिज़ाइन शिक्षा, उद्योग और अनुसंधान इन मरम्मत प्रक्रियाओं से क्या सीख सकते हैं। स्थानीय स्तर पर विकसित जुगाड़ की वास्तविकता उसके अपने सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भों में होती है। फिर भी, उससे मिलने वाली समझ मरम्मत योग्य उत्पादों, टिकाऊ सामग्री, लंबे जीवन-चक्र और उपयोगकर्ता-केंद्रित डिज़ाइन के व्यापक प्रश्नों को प्रभावित कर सकती है।

इसलिए लेख का मुख्य तर्क यह है कि जुगाड़ का ज्ञान *स्थानीय* संदर्भों में पैदा होता है, लेकिन वह व्यापक *वैश्विक* डिज़ाइन सोच को भी उपयोगी सिद्धान्त दे सकता है।

2. जुगाड़ और औपचारिक डिज़ाइन

आधुनिक डिज़ाइन का विकास मुख्य रूप से पश्चिमी औद्योगिक व्यवस्था के भीतर हुआ। इसमें डिज़ाइन को प्रायः बड़ी कंपनियों, औपचारिक प्रयोगशालाओं, शैक्षणिक संस्थानों और विशेषज्ञ स्टूडियो का कार्य माना गया। उत्पादों के निर्माण में मानकीकरण, बड़े पैमाने पर उत्पादन और तय अनुसंधान प्रक्रियाओं को महत्त्व दिया गया।

इस व्यवस्था में उपयोगकर्ता की भूमिका अक्सर तैयार वस्तु खरीदने और इस्तेमाल करने तक सीमित रहती है। कई उत्पादों को इस तरह बनाया जाता है कि उन्हें खोलना, बदलना या मरम्मत करना कठिन हो। कुछ मामलों में उत्पाद एक तय समय बाद पुराने या अनुपयोगी हो जाते हैं। इसे 'नियोजित अप्रचलन' या *planned obsolescence* कहा जाता है। इसके विपरीत, जुगाड़ और मरम्मत संस्कृति वस्तु को बंद और अंतिम उत्पाद के रूप में नहीं देखते। वस्तु को खोला जा सकता है, समझा जा सकता है, बदला जा सकता है और उसके जीवन अवधि को बढ़ाया जा सकता है। यहाँ उपयोगकर्ता और मरम्मत करने वाला व्यक्ति केवल उपभोक्ता नहीं रहता, बल्कि वस्तु के निर्माण और पुनर्निर्माण में सक्रिय भागीदार बन जाता है।



चित्र 1: औद्योगिक उत्पाद मरम्मत दुकान का एक दृश्य, जहाँ उपकरणों को नियोजित अप्रचलन (Planned Obsolescence) से बचाया जा रहा है

जुगाड़ कम संसाधनों में समाधान निकालने की क्षमता से जुड़ा है। इसी कारण इसे 'फ्रूगल इनोवेशन' से भी जोड़ा गया है। मुख्यधारा के प्रबंधन साहित्य में इसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए कम लागत में अधिक काम करने की रणनीति के रूप में प्रस्तुत किया गया है (Radjou *et al.*, 2012)। इस दृष्टि में जुगाड़ कंपनियों को कम आय वाले और उभरते बाज़ारों तक पहुँचने का साधन देता है।

लेकिन जुगाड़ को केवल कॉरपोरेट लागत घटाने की रणनीति बना देना उसके स्थानीय और सामाजिक संदर्भ को कमज़ोर कर सकता है। जब जुगाड़ को ऊपर से लागू की गई प्रबंधन पद्धति में बदल दिया जाता है, तो उसकी स्थानीय ज़रूरतों, असमानताओं और व्यवस्था को चुनौती देने की क्षमता कम हो सकती है (Butolia, 2018, 2022)।

इसलिए जुगाड़ की समझ उसके वास्तविक उपयोगकर्ताओं और स्थानीय परिस्थितियों से शुरू होनी चाहिए। इसके बाद ही उसके सिद्धांतों को व्यापक डिज़ाइन या प्रबंधन के संदर्भ में अपनाया जाना चाहिए।

3. जुगाड़ का स्थानीय और वैश्विक संदर्भ

भारतीय उपमहाद्वीप में जुगाड़ संसाधनों की कमी, संस्थागत उपेक्षा और उपलब्ध साधनों की सीमाओं के बीच विकसित हुआ। यह आम लोगों के अनुभव और ज़रूरतों से पैदा होने वाला नीचे से ऊपर की ओर विकसित तरीका है।

जुगाड़ जैसी रचनात्मकता केवल भारत में नहीं मिलती। केन्या की 'जुआ काली' परम्परा में कारीगर कबाड़ धातु से औज़ार और मशीनें बनाते हैं (King, 1996)। मैक्सिकन-अमेरिकी चिकानो संस्कृति में 'रास्क्वाचिस्मो' कम साधनों को सांस्कृतिक पहचान और राजनीतिक विरोध में बदलता है। ब्राज़ील में 'गाम्बियारा' रोज़मर्रा की तकनीकी समस्याओं के तात्कालिक और व्यावहारिक समाधान से जुड़ा है। फ्रांसीसी-भाषी अफ्रीका में 'सिस्तेम डी' आत्मनिर्भरता और उपलब्ध साधनों के उपयोग को दर्शाता है। चीन का 'शानझाई' तंत्र छोटे और अनौपचारिक स्तर पर इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों के बदलाव, पुनर्निर्माण और नवाचार से जुड़ा है।

क्षेत्र / संस्कृति	स्थानीय नाम	मुख्य विशेषता
केन्या	जुआ काली	कबाड़ धातु से खुले स्थानों में औज़ार और मशीनें बनाना
मैक्सिकन-अमेरिकी (चिकानो)	रास्क्वाचिस्मो	संसाधनों की कमी को सांस्कृतिक पहचान और राजनीतिक विरोध में बदलना
ब्राज़ील	गाम्बियारा	तकनीकी समस्याओं के तात्कालिक और व्यावहारिक समाधान
फ्रांसीसी-भाषी अफ्रीका	सिस्तेम डी	आत्मनिर्भरता और उपलब्ध संसाधनों के उपयोग की अनौपचारिक व्यवस्था
चीन	शानझाई	ज़मीनी स्तर पर विकसित अनौपचारिक इलेक्ट्रॉनिक्स तंत्र

ये सभी उदाहरण बताते हैं कि स्थानीय रचनात्मकता अलग-अलग क्षेत्रों में अपने सामाजिक और भौतिक संदर्भों के अनुसार विकसित होती है। इन प्रथाओं को एक ही नाम या सामान्य मॉडल में समेटना ठीक नहीं होगा। फिर भी, इनमें मरम्मत, पुनः उपयोग, अनुकूलन और सीमित संसाधनों के बीच समाधान बनाने जैसे साझा गुण मिलते हैं।

जुगाड़ का अर्थ उसके स्थानीय संदर्भ, भाषा, ज़रूरत और सामाजिक संबंधों के भीतर समझा जाना चाहिए। लेकिन इन स्थानीय अनुभवों से मिलने वाली सीख को टिकाऊ डिज़ाइन, मरम्मत का अधिकार, उत्पाद की लंबी उम्र और स्थानीय उत्पादन जैसे व्यापक प्रश्नों पर लागू किया जा सकता है।

4. दिल्ली की मरम्मत संस्कृति

दिल्ली के व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्रों में जुगाड़ कोई अलग सिद्धांत नहीं, बल्कि रोज़मर्रा की कार्य-पद्धति है। मरम्मत करने वाले कारीगर इसे केवल पेशे के रूप में नहीं जीते। यह उनके औज़ारों, कार्यस्थलों, सामग्री की समझ और काम करने के तरीके में दिखाई देता है।

मालवीय नगर के छतरी कारीगर और चाँदनी चौक के बर्तन तथा कपड़ा कारीगर बड़ी दुकानों पर निर्भर नहीं होते। उनकी कार्यशालाएँ बाँस, तिरपाल, पुरानी प्लास्टिक शीट और कबाड़ से बनी मोड़ने योग्य बेंचों से तैयार होती हैं। सुबह का फुटपाथ कुछ ही समय में मरम्मत की जगह बन जाता है और रात में फिर समेट लिया जाता है।

औज़ार रखने के लिए पुराने घी के कनस्तर, पेंट के डिब्बे और बदले हुए प्लास्टिक कंटेनर इस्तेमाल किए जाते हैं। इस तरह कार्यस्थल स्वयं जरूरत के अनुसार बदलने वाले डिज़ाइन का उदाहरण बन जाता है। यहाँ जुगाड़ केवल उस वस्तु में नहीं है जिसकी मरम्मत की जा रही है, बल्कि पूरी कार्य-व्यवस्था में मौजूद है।



चित्र 2: (बायाँ) मालवीय नगर में छतरी मरम्मत का कार्यस्थल, जहाँ उत्पाद को नियोजित अप्रचलन से बचाया जा रहा है। (दायाँ) हस्तनिर्मित तकनीकों और साधारण साधनों से छतरी की रिब (rib) ठीक करने की 'जुगाड़' प्रक्रिया।

नेहरू प्लेस और मुखर्जी नगर के इलेक्ट्रॉनिक तकनीशियन माइक्रो-सोल्डरिंग और छोटे पुर्जों की जाँच करते हैं। उनके कार्यस्थलों पर पुराने कम्प्यूटरों से निकाले गए पंखे, तारों से बने जाँच उपकरण और कबाड़ के सर्किट बोर्ड मिलते हैं। बड़ी तकनीकी कंपनियाँ कई उत्पादों को खोलना और मरम्मत करना कठिन बनाती हैं, लेकिन ये तकनीशियन अपने अनुभव से उन बाधाओं को पार करते हैं।

मायापुरी के मैकेनिकों के लिए कबाड़ में पड़ी गाड़ी का हर हिस्सा संभावित सामग्री है। ट्रक की पुरानी लीफ-स्प्रिंग से छेनी बनाई जा सकती है। अलग-अलग वाहनों के पुर्जों को जोड़कर ई-रिक्शा या छोटे मालवाहक वाहन तैयार किए जा सकते हैं। यहाँ कबाड़ बेकार सामग्री नहीं, बल्कि भविष्य के उपयोगों का भंडार है।

मालवीय नगर के कारीगर साइकिल की टूटी तीलियों, तारों और प्लास्टिक से छतरियाँ ठीक करते हैं। लाजपत नगर के फर्नीचर कारीगर लकड़ी के पैलेट और पुराने फोम से नई कुर्सियाँ बनाते हैं। दरियागंज में पुरानी किताबों की जिल्द दोबारा सिली जाती है। चाँदनी चौक में टूटे बर्तनों पर कलई की जाती है और पुराने कपड़ों को रफू या पैबंद से नया रूप दिया जाता है।

इन सभी उदाहरणों में मरम्मत केवल खराब वस्तु को उसकी पुरानी स्थिति में लौटाना नहीं है। मरम्मत करने वाला व्यक्ति वस्तु में नया श्रम, कौशल और उपयोग जोड़ता है। इस प्रक्रिया में वस्तु का आर्थिक, सामाजिक और उपयोगी मूल्य बढ़ता है। उसकी उम्र लंबी होती है और उसे फेंके जाने से बचाया जाता है।

इसलिए दिल्ली की मरम्मत संस्कृति को केवल संसाधनों की कमी से पैदा हुई मजबूरी नहीं माना जा सकता। यह ऐसी डिज़ाइन प्रक्रिया है जो वस्तुओं के जीवन-चक्र को आगे बढ़ाती है।

5. जुगाड़ से औपचारिक डिज़ाइन की सीख

दिल्ली की मरम्मत प्रथाएँ औपचारिक डिज़ाइन शिक्षा और उद्योग के लिए कई उपयोगी संकेत देती हैं।

पहला, किसी उत्पाद को केवल निर्माण और बिक्री तक सीमित नहीं देखना चाहिए। उसके पूरे जीवन-चक्र पर विचार करना चाहिए। इसमें मरम्मत, पुर्जों का बदलाव, पुनः उपयोग और अंत में सामग्री की वापसी शामिल होनी चाहिए।

दूसरा, उत्पादों को इस प्रकार बनाया जा सकता है कि उन्हें आसानी से खोला और ठीक किया जा सके। वर्तमान में कई उत्पाद बंद व्यवस्था के रूप में बनाए जाते हैं। मरम्मत कारीगरों की पद्धतियाँ दिखाती हैं कि उत्पाद की समझ, उसके पुर्जों तक पहुँच और स्थानीय स्तर पर बदलाव की संभावना उसकी उम्र बढ़ा सकती है।

तीसरा, डिज़ाइन शिक्षा स्थानीय कारीगरों को केवल अध्ययन की वस्तु न मानकर ज्ञान के साझेदार के रूप में देख सकती है। उनके पास सामग्री, टूट-फूट, उपयोग और मरम्मत से जुड़ा ऐसा अनुभव होता है जो औपचारिक प्रयोगशालाओं में आसानी से उपलब्ध नहीं होता।

चौथा, मरम्मत की प्रथाएँ सामग्री के प्रति संवेदनशीलता सिखाती हैं। कारीगर यह पहचानते हैं कि कौन-सा हिस्सा दोबारा इस्तेमाल हो सकता है, किस सामग्री को बदला जा सकता है और किस वस्तु को नए काम में लगाया जा सकता है।

पाँचवाँ, जुगाड़ उपयोगकर्ता और उसके संदर्भ के निकट रहकर काम करता है। समाधान किसी सामान्य या काल्पनिक उपभोक्ता के लिए नहीं, बल्कि किसी खास व्यक्ति, जगह और ज़रूरत के लिए तैयार किया जाता है। औपचारिक डिज़ाइन इस स्थानीय समझ से अधिक संवेदनशील और उपयोगी समाधान विकसित करना सीख सकता है।

इस सीख का अर्थ यह नहीं है कि औपचारिक डिज़ाइन जुगाड़ की नकल करे या उसे कॉरपोरेट मॉडल में बदल दे। इसके बजाय डिज़ाइन को जुगाड़ के पीछे मौजूद सिद्धांतों से सीखना चाहिए, जैसे मरम्मत योग्यता, संसाधनों का सावधानी से उपयोग, स्थानीय ज्ञान और वस्तुओं की लंबी उम्र।

6. स्वदेशी, प्लुरिवर्सल डिज़ाइन और स्थानीय ज्ञान

प्लुरिवर्सल डिज़ाइन यह मानता है कि दुनिया को समझने और बनाने का कोई एक ही सार्वभौमिक तरीका नहीं है। अलग-अलग समाजों, संस्कृतियों और ज्ञान परम्पराओं के अपने तरीके हो सकते हैं (Escobar, 2011, 2018)। जुगाड़ इस विचार को मजबूत करता है। यह दिखाता है कि उपयोगी और विकसित समाधान केवल औपचारिक प्रयोगशालाओं में नहीं बनते। वे रोज़मर्रा के जीवन, बाजार, सड़क, कार्यशाला और समुदाय के भीतर भी पैदा होते हैं।

इस दृष्टि से दिल्ली की मरम्मत संस्कृति एक *स्थानीय* ज्ञान-प्रणाली है। इसके तरीके स्थानीय सामग्री, बाज़ार, सामाजिक संबंध, उपलब्ध साधन और कारीगरों के अनुभव से जुड़े हैं। इन्हें उनके संदर्भ से अलग करके नहीं समझा जा सकता।

लेकिन इस स्थानीय ज्ञान का महत्त्व केवल दिल्ली तक सीमित नहीं है। इससे औपचारिक डिज़ाइन को मरम्मत योग्य उत्पाद, पुनः उपयोग, सामग्री की बचत और लंबी उम्र जैसे व्यापक सिद्धांत मिल सकते हैं। इस तरह स्थानीय ज्ञान वैश्विक डिज़ाइन विमर्श को प्रभावित करता है।

गांधी के स्वदेशी की तरह यह दृष्टि स्थानीय क्षमता, उत्पादन और आत्मनिर्भरता को महत्त्व देती है। लेकिन इसका उद्देश्य स्थानीय ज्ञान को रोमानी रूप देना नहीं है। इसका उद्देश्य यह समझना है कि औपचारिक और अनौपचारिक ज्ञान-प्रणालियाँ एक-दूसरे से कैसे सीख सकती हैं।



चित्र 3: सड़क और फुटपाथ पर आधारित स्थानीय ज्ञान-प्रणाली: हस्त-निर्मित तकनीकों से सामग्री की मरम्मत और जीवन-चक्र विस्तार।

7. जुगाड़ की सीमाएँ

जुगाड़ की प्रशंसा करते समय उसकी सीमाओं को भी समझना आवश्यक है (Birtchnell, 2011; Jauregui, 2014)।

बिना सुरक्षा जाँच और मानकों के बनाए गए जुगाड़ खतरनाक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, कृषि इंजनों से बने वाहनों में सही ब्रेक, सुरक्षा व्यवस्था और प्रदूषण नियंत्रण का अभाव हो सकता है।

जुगाड़ की अत्यधिक प्रशंसा सरकार को अपनी ज़िम्मेदारियों से बचने का अवसर भी दे सकती है। यदि जुगाड़ को राष्ट्रीय गुण मान लिया जाए, तो बुनियादी ढाँचे, स्वास्थ्य सेवाओं और सार्वजनिक परिवहन की कमियों को लोगों की रचनात्मकता के भरोसे छोड़ा जा सकता है।

कुछ स्थितियों में जुगाड़ नियम तोड़ने, भ्रष्टाचार या अवैध रास्ते अपनाने का रूप भी ले सकता है। इसलिए हर जुगाड़ को रचनात्मक, नैतिक या उपयोगी नहीं माना जा सकता। उसका मूल्यांकन सुरक्षा, प्रभाव और सामाजिक परिणामों के आधार पर होना चाहिए।

औपचारिक डिज़ाइन को जुगाड़ से सीखते समय इन सीमाओं को दूर करना होगा। स्थानीय लचीलापन और सामग्री की समझ को सुरक्षा, परीक्षण और ज़िम्मेदारी के साथ जोड़ना आवश्यक है।

8. निष्कर्ष

दिल्ली की मरम्मत संस्कृति यह दिखाती है कि जुगाड़ केवल किसी संकट का अस्थायी समाधान नहीं है। मरम्मत करने वाले कारीगर वस्तुओं में नया श्रम, उपयोग और मूल्य जोड़ते हैं। वे उत्पादों की उम्र बढ़ाते हैं, कबाड़ को सामग्री में बदलते हैं और बंद तकनीकों को दोबारा उपयोग योग्य बनाते हैं।

जुगाड़ की वास्तविकता उसके स्थानीय, सामाजिक और भौतिक संदर्भों में स्थित है। इसलिए उसे उसके *स्थानीय* संदर्भ से अलग करके केवल फ्रूगल इनोवेशन या कॉरपोरेट रणनीति में बदलना उचित नहीं होगा। फिर भी, मरम्मत योग्यता, पुनः उपयोग, स्थानीय अनुकूलन और सामग्री की बचत जैसे उसके सिद्धांत व्यापक *वैश्विक* डिज़ाइन विमर्श को महत्त्वपूर्ण सीख दे सकते हैं।

औपचारिक डिज़ाइन शिक्षा और उद्योग इन प्रथाओं से उत्पादों के लंबे जीवन-चक्र, खुली संरचना, स्थानीय मरम्मत और उपयोगकर्ता की सक्रिय भूमिका के बारे में सीख सकते हैं। इस प्रकार जुगाड़ औपचारिक डिज़ाइन का विकल्प मात्र नहीं, बल्कि उसकी सीमाओं को पहचानने और उसे अधिक टिकाऊ, संवेदनशील तथा स्थानीय संदर्भों से जुड़ा बनाने का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

संदर्भ

1. Birtchnell, T. (2011). Jugaad as systemic risk and disruptive innovation in India. *Contemporary South Asia,* 19(4), 357–372. https://doi.org/10.1080/09584935.2011.569702 (DOI)

2. Butoliya, D. (2018). Critical jugaad: A (post)critical investigation into marginal making practices from beyond the Anglo-European sphere. *Making Futures,* 5. (Just Tech)
3. Butoliya, D. (2022). Critical jugaad ontologies: Practices for a just future. *Diid: Disegno Industriale Industrial Design,* 76, 44–57. https://doi.org/10.30682/diid7622d (diid.it)
4. Escobar, A. (2011). Sustainability: Design for the pluriverse. *Development,* 54(2), 137–140. https://doi.org/10.1057/dev.2011.28 (ScienceOpen)
5. Escobar, A. (2018). *Designs for the pluriverse: Radical interdependence, autonomy, and the making of worlds.* Duke University Press. https://doi.org/10.1215/9780822371816 (Duke University Press)
6. Jauregui, B. (2014). Provisional agency in India: Jugaad and the legitimation of corruption. *American Ethnologist,* 41(1), 76–91. https://doi.org/10.1111/amet.12061
7. King, K. (1996). *Jua kali Kenya: Change and development in an informal economy,* 1970–95. Ohio University Press.
8. Radjou, N., Prabhu, J., & Ahuja, S. (2012). Jugaad innovation: *Think frugal, be flexible, generate breakthrough growth.* Jossey-Bass. (Wiley Online Library)
9. Tewari, Saurabh (2016). *Jugaad. The Bloomsbury Encyclopaedia of Design.* https://www.bloomsburyvisualarts.com/encyclopedia-chapter?docid=b-9781472596161&tocid=b-9781472596161-BED-ONLINE-011&st=

सवाई माधोपुर की ब्लैक पॉटरी (Black Pottery) परम्परा में कुम्हार का चाक: कारीगरों की परम्पराओं एवं सांस्कृतिक अर्थों का नृवंशविज्ञानात्मक (ethnographic) अध्ययन

शची त्रिपाठी

डिज़ाइन विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल:
ddz248306@design.iitd.ac.in

सारांश

कुम्हार का चाक केवल मिट्टी के बर्तनों को आकार देने वाला यांत्रिक उपकरण नहीं है, बल्कि भारतीय कुम्हार समुदाय के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग है। यह उपकरण पारम्परिक ज्ञान, कौशल, आजीविका, धार्मिक विश्वासों तथा सामुदायिक पहचान का वाहक भी है। प्रस्तुत शोधपत्र राजस्थान के सवाई माधोपुर ज़िले की कृष्ण मृद्भांड (ब्लैक पॉटरी) परम्परा के संदर्भ में कुम्हार के चाक के बहुआयामी महत्त्व का नृवंशविज्ञानात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। क्षेत्रीय अवलोकन, सहभागी निरीक्षण तथा स्थानीय कारीगरों के विस्तृत साक्षात्कारों से प्राप्त अनुभवजन्य जानकारी के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सवाई-माधोपुर के कुंभकारों के लिए चाक केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने वाला ज्ञान, पारिवारिक परम्परा, धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक निरंतरता का माध्यम है एवं चाक से जुड़ी पारम्परिक मान्यताएँ, अनुष्ठान और सांस्कृतिक मूल्य आज भी जीवित हैं। यह शोध पारम्परिक शिल्पों के संरक्षण, अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के दस्तावेज़ीकरण तथा शिल्प-केंद्रित डिज़ाइन अनुसंधान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: कुम्हार का चाक, कृष्ण मृद्भांड, सवाई माधोपुर, नृवंशविज्ञान, प्रजापति समुदाय, पारम्परिक शिल्प, अमूर्त सांस्कृतिक विरासत

1. प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक इतिहास में मृद्भांड निर्माण की कला मानव सभ्यता की प्राचीनतम और अत्यंत समृद्ध शिल्प परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करती है। (Fisher, 1993; Savage, 2025) इस विकास यात्रा में कुम्हार का चाक एक युगांतरकारी तकनीकी नवाचार के रूप में उभरा, जिसने मिट्टी को रूप देने की प्रक्रिया में अभूतपूर्व दक्षता और संतुलन का समावेश किया। यद्यपि प्रचलित शोध साहित्य में चाक के तकनीकी और यांत्रिक पहलुओं का विवरण प्रचुरता से मिलता है, किन्तु अधिकांश अध्ययन इसे केवल उत्पादन के एक भौतिक साधन के रूप में ही सीमित रखते हैं।

कुम्हार का चाक: एक संक्षिप्त परिचय

कुम्हार का चाक (जिसे स्थानीय भाषा में चाक, चक्र अथवा चक्का भी कहा जाता है) मात्र एक निर्जीव यांत्रिक यंत्र नहीं है, वरन यह मानवीय प्रज्ञा, सृजनात्मक शिल्प और सांस्कृतिक चेतना का एक जीवंत प्रतीक है। लगभग 5वीं सहस्राब्दी ईसा पूर्व के आसपास निकट पूर्व (Near East) में अपनी उत्पत्ति के साथ ही, चाक ने मृत्शिल्प (सिरैमिक्स कलाकृतियाँ) के इतिहास में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का सूत्रपात किया। (Berg, 2020; Foster, 1959; Violatti, 2014) हस्त-निर्मित बर्तनों की धीमी और कठिन प्रविधि को पीछे छोड़ते हुए, चाक ने घूर्णन गति (rotational energy) और केंद्र-अभिसारी बल (centripetal force) के समन्वय से मृद्भांडों के मानकीकरण और वृहद स्तर पर सृजन को सुगम बनाया।

राजस्थान के सवाई माधोपुर की लब्धप्रतिष्ठ कृष्ण मृद्भांड (ब्लैक पॉटरी) शैली में चाक एक 'जीवन चक्र' की भांति विद्यमान है। यह न केवल प्रजापति समुदाय की आजीविका का मुख्य आधार है, अपितु इसे भारतीय लोक-संस्कृति में अत्यंत पावन स्थान प्राप्त है, जहाँ 'चाक पूजा' जैसे मांगलिक अनुष्ठान सृजन की निरंतरता, समृद्धि और उर्वरता के प्रति अटूट



चित्र 1: चाक - प्रजापति समुदाय की आजीविका का मुख्य आधार, भगवतगढ़ (लेखिका, 2026)

विश्वास को अभिव्यक्त करते हैं। ऐतिहासिक पत्थर के चाक से लेकर आधुनिक विद्युत-चालित 'जुगाड़' तकनीक के दौर में भी चाक की दार्शनिक गरिमा और कार्यात्मक सार्थकता यथावत बनी हुई है। यह शिल्प-उपकरण जहाँ एक ओर कुम्हार को मानसिक और शारीरिक रूप से 'केंद्रित' (centered) रखता है, वहीं दूसरी ओर यह पारम्परिक जड़ों और आधुनिक नवाचारों के मध्य एक सेतु का कार्य करता है, जो कारीगरों को उनकी विरासत से जोड़ते हुए भविष्योन्मुख बनाता है।

भारतीय मृद्भांड विरासत के अंतर्गत कुम्हार का चाक केवल एक तकनीकी उपकरण नहीं, बल्कि सवाई माधोपुर के प्रजापति समुदाय की सांस्कृतिक अस्मिता, पीढ़ियों से संचित पारिवारिक विरासत और उनके अनुभवजन्य ज्ञान का केंद्र-बिंदु है। प्रस्तुत शोध पत्र सवाई माधोपुर की कृष्ण मृद्भांड परंपरा में चाक के इस बहुआयामी स्वरूप का एक नृवंशविज्ञानात्मक (ethnographic) विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन का मूल उद्देश्य चाक से संपृक्त स्थानीय मेधा, कौशल के हस्तांतरण की प्रक्रिया, धार्मिक विश्वासों और आधुनिक 'जुगाड़' तकनीक के बीच निरंतरता और परिवर्तन के विभिन्न आयामों को रेखांकित करना है। क्षेत्रीय अवलोकन और कारीगरों के गहन साक्षात्कारों पर आधारित यह अध्ययन चाक को अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के एक सशक्त और जीवंत संवाहक के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है।

2. अनुसंधान पद्धति

यह अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) एवं नृवंशविज्ञानात्मक (Ethnographic) अनुसंधान पद्धति पर आधारित है। कुम्हार समुदाय के दैनिक जीवन, कार्य-संस्कृति तथा चाक से जुड़े अनुभवों और मान्यताओं को उनकी अपनी दृष्टि से समझने के लिए सहभागी अवलोकन (Participant Observation), अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार (Semi-structured Interviews), अनौपचारिक संवाद तथा दृश्य दस्तावेज़ीकरण (फोटोग्राफी एवं वीडियो रिकॉर्डिंग) को अध्ययन की प्रमुख विधियों के रूप में अपनाया गया है। (Gupta & Ferguson, 1997)

क्षेत्रकार्य के दौरान सवाई माधोपुर जिले के श्यामोता, भगवतगढ़ तथा आसपास के कृष्ण मृद्भांड निर्माण से जुड़े गाँवों का भ्रमण किया गया। अध्ययन के दौरान कारीगर परिवारों के साथ समय व्यतीत करते हुए उनके दैनिक कार्यों का अवलोकन किया गया। इस दौरान मिट्टी लाने, मिट्टी तैयार करने, चाक पर निर्माण, बर्तनों को थपथपाकर अंतिम रूप देने, पॉलिश करने तथा पकाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को निकटता से देखा और प्रलेखित किया गया। इस सहभागी दृष्टिकोण ने केवल निर्माण तकनीक को समझने में ही नहीं, बल्कि श्रम-विभाजन, पारिवारिक सहयोग, कार्य की लय तथा कारीगरों के जीवन-दर्शन को समझने में भी सहायता प्रदान की।

अध्ययन का प्रमुख आधार स्थानीय कारीगरों के साथ किए गए विस्तृत साक्षात्कार हैं। इन साक्षात्कारों में रामजीलाल प्रजापति, गिरिराज प्रसाद प्रजापति तथा अन्य वरिष्ठ कारीगरों ने अपने अनुभव साझा किए। वार्तालाप के विषयों में चाक सीखने की प्रक्रिया, पारिवारिक परम्पराएँ, धार्मिक विश्वास, चाक-पूजा, गणेश आराधना, उत्पादन प्रणाली, आधुनिक तकनीक का प्रभाव तथा आने वाली पीढ़ियों की बदलती रुचियाँ शामिल थीं। साक्षात्कारों को खुली शैली में संचालित किया गया ताकि कारीगर अपने अनुभवों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकें।

इस अध्ययन में संकलित सामग्री का विश्लेषण विषयगत (Thematic Analysis) पद्धति के माध्यम से किया गया। साक्षात्कारों और क्षेत्रीय टिप्पणियों को बार-बार पढ़कर ऐसे प्रमुख विषयों की पहचान की गई जो विभिन्न कारीगरों के अनुभवों में समान रूप से उभरकर सामने आए। इनमें प्रमुख रूप से—चाक एवं आजीविका, ज्ञान का हस्तांतरण, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ, तकनीकी परिवर्तन, तथा कारीगर की पहचान—जैसे विषय सम्मिलित थे। इन विषयों के आधार पर शोधपत्र की आगे की चर्चा व्यवस्थित की गई है।

यह उल्लेखनीय है कि इस शोध में चाक को किसी यांत्रिक उपकरण के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक-सांस्कृतिक वस्तु (Social and Cultural Object) के रूप में देखा गया है। अतः विश्लेषण का केन्द्र तकनीकी विवरण नहीं, बल्कि कारीगरों द्वारा चाक को दिए गए अर्थ, उससे जुड़ी स्मृतियाँ, परम्पराएँ तथा अनुभव हैं। यही दृष्टिकोण इस अध्ययन को पूर्ववर्ती तकनीकी अध्ययनों से भिन्न बनाता है।

3. सवाई माधोपुर के कुम्हारों के जीवन में चाक का स्थान

सवाई माधोपुर की कृष्ण मृद्भांड परम्परा में चाक केवल मिट्टी को आकार देने का उपकरण नहीं, बल्कि कारीगरों के जीवन, श्रम, अनुभव, पारिवारिक विरासत और सांस्कृतिक पहचान का केन्द्र है। कारीगर अपने कार्यस्थल को पूर्वजों की परम्परा और आजीविका से जुड़े सांस्कृतिक परिवेश के रूप में देखते हैं, जहाँ चाक साधारण मिट्टी को उपयोगी एवं सांस्कृतिक अर्थों से सम्पन्न मृद्भांडों में रूपांतरित करने का माध्यम है। सम्पूर्ण निर्माण प्रक्रिया—मिट्टी तैयार करने से लेकर बर्तन को अंतिम आकार देने तक—चाक के इर्द-गिर्द संगठित होती है।

क्षेत्रीय अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि अनेक परिवार आज भी अपने पूर्वजों द्वारा उपयोग किए गए पारम्परिक चाकों को पारिवारिक धरोहर के रूप में सुरक्षित रखते हैं। यद्यपि उत्पादन में स्थानीय स्तर पर विकसित "जुगाड़" विद्युत चालित चाकों का उपयोग बढ़ा है, फिर भी बर्तन निर्माण का मूल कौशल और हाथों का नियंत्रण अपरिवर्तित बना हुआ है। कारीगर चाक को अपनी सामाजिक एवं पेशागत पहचान का आधार मानते हैं और मानते हैं कि चाक का रुक जाना केवल उत्पादन का अवरोध नहीं, बल्कि पीढ़ियों से चली आ रही



चित्र 2-7: चाक की दिनचर्या, श्यामोता एवं भगवतगढ़, सवाई माधोपुर (लेखिका, 2025, 2026)

सांस्कृतिक परम्परा के टूटने का संकेत होगा। इस प्रकार चाक सवाई माधोपुर के कुम्हार समुदाय के लिए उत्पादन का साधन, अनुभवजन्य ज्ञान का माध्यम, पारिवारिक स्मृति तथा सामुदायिक पहचान का जीवंत प्रतीक है।

4. चाक सीखने की परम्परा एवं ज्ञान का हस्तांतरण

सवाई माधोपुर की कृष्ण मृद्भांड परम्परा में चाक चलाने का कौशल किसी औपचारिक प्रशिक्षण के बजाय पारिवारिक विरासत के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता है। यह प्रक्रिया केवल तकनीकी शिक्षा नहीं, बल्कि जीवनशैली, अनुशासन और अनुभवजन्य ज्ञान का समावेश है। बच्चे बचपन से ही वरिष्ठ सदस्यों को कार्य करते देख अवलोकन और अनुकरण के माध्यम से सीखना प्रारम्भ करते हैं। वे मिट्टी तैयार करने और सहायक कार्यों से शुरुआत कर, अभ्यास के साथ चाक चलाने में दक्षता हासिल करते हैं।

यह कौशल मुख्य रूप से माइकल पोलानी (Michael Polanyi) की 'अव्यक्त ज्ञान' (Tacit Knowledge) की अवधारणा को चरितार्थ करता है। (Polanyi, 1966) कारीगर इसे "हाथ का हुनर" कहते हैं, जहाँ मिट्टी की नमी, चाक की गति और हाथों के दबाव का सटीक संतुलन वर्षों के शारीरिक अनुभव, स्पर्श और दृष्टि से विकसित होता है, न कि किसी माप-यंत्र या औपचारिक निर्देश से। इस "अव्यक्त ज्ञान" के साथ-साथ, भावी पीढ़ी को कार्यस्थल की स्वच्छता, मिट्टी और चाक के प्रति सम्मान तथा कार्य-संस्कृति से जुड़े सांस्कृतिक मूल्यों का भी शिक्षण दिया जाता है। यद्यपि बदलती आर्थिक परिस्थितियों और युवाओं के अन्य व्यवसायों की ओर रुझान से यह निरंतरता प्रभावित हो रही है, फिर भी अनेक परिवार इस शिल्प को जीवित रखने हेतु नई पीढ़ी को सक्रिय रूप से जोड़ रहे हैं।

लैंगिक दृष्टिकोण

इस ज्ञान-परम्परा में महिलाओं की भूमिका अपरिहार्य है। वे मिट्टी तैयार करने, पॉलिश, सज्जा, सुखाने तथा

भट्टी में पकाने की प्रक्रियाओं में सक्रिय योगदान देती हैं, जिससे बच्चे सम्पूर्ण शिल्प प्रक्रिया को सामूहिक पारिवारिक श्रम के रूप में आत्मसात करते हैं। हालाँकि, ऐतिहासिक रूप से चाक का संचालन पुरुषों का क्षेत्र रहा है। कारीगरों के अनुसार, यद्यपि महिलाओं को चाक छूने की स्पष्ट मनाही नहीं है, परंतु उस पर बैठकर कार्य करना सामाजिक रूप से "अनुचित" माना जाता है।

फिर भी, एक नृवंशविज्ञानात्मक विरोधाभास तब उभरता है जब ये महिलाएँ मेलों और बाहरी प्रदर्शनियों में भाग लेती हैं। वहाँ, घरेलू सांस्कृतिक वर्जनाओं से परे, वे जीवन भर पुरुषों को चाक चलाते देखने से अर्जित अपने सूक्ष्म अवलोकन और महारत का उपयोग कर स्वयं चाक का संचालन करती हैं। यह स्थानांतरण न केवल उनकी व्यावसायिक क्षमता और एजेंसी को सिद्ध करता है, बल्कि स्थान परिवर्तन के साथ पारंपरिक लैंगिक सीमाओं के शिथिल होने की प्रक्रिया को भी दर्शाता है।

5. चाक से जुड़े धार्मिक विश्वास, अनुष्ठान एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ

सवाई माधोपुर में चाक की पूजा और गणेश आराधना कार्य-संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। अनेक कारीगर किसी नए कार्य, बड़े ऑर्डर अथवा महत्त्वपूर्ण अवसर से पहले भगवान गणेश की पूजा करते हैं तथा रणथम्भौर स्थित त्रिनेत्र गणेश मंदिर के प्रति विशेष श्रद्धा व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार शिल्प केवल श्रम का परिणाम नहीं, बल्कि ईश्वर की कृपा और शुभाशीष से सम्पन्न होने वाली सृजनात्मक प्रक्रिया है। इसी प्रकार कारीगर चाक को सृजन की शक्ति मानते हैं और इसे ठोकर मारना या तिरस्कार करना अनुचित समझते हैं। यह धार्मिक जुड़ाव शिल्प को केवल एक व्यवसाय से ऊपर उठाकर एक नैतिक उत्तरदायित्व और आध्यात्मिक साधना के रूप में प्रतिष्ठित करता है, (The Ministry Collaborative, 2017; Thomas, n.d.) जो आधुनिक तकनीकी युग में भी अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में अक्षुण्ण है।

अध्ययन के दौरान यह भी ज्ञात हुआ कि चाक का उपयोग एक विशिष्ट धार्मिक एवं आनुष्ठानिक कैलेंडर के अनुसार संचालित होता है। कारीगर चाक को देवता स्वरूप मानते हैं और देवउठनी ग्यारस (एकादशी), होली (धुलेंडी), दीपावली के पश्चात गोवर्धन पूजा तथा शीतला माता जैसे शुभ अवसरों पर चाक का संचालन रोक कर उसका पूजन करते हैं। इस अवसर पर चाक को जल से स्वच्छ किया जाता है, मांडना से सजाया जाता है तथा पुष्प, धूप, रोली और मिठाई अर्पित कर पूजा की जाती है। यह अनुष्ठान चाक को महज़ उत्पादन के साधन से ऊपर उठाकर एक जीवंत सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

चाक का धार्मिक महत्त्व कुम्हार समुदाय तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यापक ग्रामीण समाज से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। इसका प्रमुख उदाहरण 'चाक बासन' की परम्परा है। विवाह के अवसर पर वधू पक्ष की महिलाएँ कुम्हार के घर जाकर चाक की पूजा करती हैं तथा वस्त्र, अनाज और दक्षिणा अर्पित करती हैं। इसके उपरान्त विवाह संस्कारों में प्रयुक्त पारम्परिक लाल मृद्भांड प्राप्त किए जाते हैं। उल्लेखनीय है कि



चित्र 8,9,10: चाक पूजा एवं लाल अनुष्ठानिक बर्तन - श्यामोता गाँव, सवाई माधोपुर (लेखिका, 2026)

यद्यपि वर्तमान समय में बाज़ार की प्रमुख माँग कृष्ण मृद्भांड (ब्लैक पॉटरी) की है, फिर भी कारीगर विशेष रूप से इन पारम्परिक लाल आनुष्ठानिक बर्तनों का नियमित निर्माण कर उनका भंडार सुरक्षित रखते हैं, ताकि विवाह एवं अन्य मांगलिक अवसरों पर होने वाली परम्परा निर्बाध रूप से जारी रह सके। कारीगरों के अनुसार इन लाल मृद्भांडों का निर्माण आर्थिक लाभ की अपेक्षा सांस्कृतिक उत्तरदायित्व और सामुदायिक परम्परा के निर्वहन से अधिक जुड़ा हुआ है। एक महिला कारीगर ने इस परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा— *"चाक पूजेगा, पूजन करके 1100 रुपये रख देगा... पाँच जोड़े मटके ले जाएंगे... किसी की भी शादी हो, ये ज़रूरी होता है।"* यह कथन स्पष्ट करता है कि चाक और उससे जुड़े आनुष्ठान आज भी विवाह संस्कारों का अनिवार्य हिस्सा हैं तथा कुम्हार समुदाय और अन्य ग्रामीण परिवारों के मध्य पीढ़ियों से चले आ रहे सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ बनाए रखते हैं। उल्लेखनीय है कि स्थानीय स्तर पर विकसित "जुगाड़" विद्युत चालित चाक के उपयोग के बाद भी ये धार्मिक मान्यताएँ और अनुष्ठान अपरिवर्तित बने हुए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कारीगरों के लिए चाक की पवित्रता उसके भौतिक स्वरूप में नहीं, बल्कि उससे जुड़े सांस्कृतिक अर्थों, श्रम और सामुदायिक स्मृति में निहित है।

6. परम्परा और परिवर्तन: पारम्परिक चाक से "जुगाड़" इलेक्ट्रिक चाक तक

सवाई माधोपुर की कृष्ण मृद्भांड परम्परा यह दर्शाती है कि पारम्परिक शिल्प की निरंतरता (Gingras & Snead, 2018; Perryman, 2000) केवल अतीत के संरक्षण पर नहीं, बल्कि बदलती सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालने की क्षमता पर भी निर्भर करती है। क्षेत्रीय अध्ययन से ज्ञात हुआ कि स्थानीय कारीगर अपनी पारम्परिक निर्माण प्रक्रिया और सांस्कृतिक मूल्यों को बनाए रखते हुए स्थानीय स्तर पर विकसित "जुगाड़" विद्युत चालित चाक का सफलतापूर्वक उपयोग कर रहे हैं।

वरिष्ठ कारीगरों के अनुसार पहले सम्पूर्ण उत्पादन हाथ अथवा डंडे से चलने वाले चाक पर होता था, जिसे निरंतर गति देने के लिए अधिक शारीरिक श्रम और समय की आवश्यकता पड़ती थी। बड़े आकार के बर्तनों तथा अधिक उत्पादन के दौरान यह प्रक्रिया विशेष रूप से कठिन होती थी। इन चुनौतियों के समाधान के लिए कारीगरों ने स्वयं पारम्परिक चाक





चित्र 11,12: डंडे से चलने वाला चाक, विद्युत चालित "जुगाड़" चाक, श्यामोता गाँव, सवाई माधोपुर (लेखिका, 2026)

में विद्युत मोटर जोड़कर "जुगाड़" इलेक्ट्रिक चाक विकसित किया। यह परिवर्तन किसी बाहरी औद्योगिक हस्तक्षेप का परिणाम नहीं, बल्कि स्थानीय ज्ञान, व्यावहारिक आवश्यकता और कारीगरों की नवाचार क्षमता का उदाहरण है।

कारीगरों का कहना है कि आधुनिक चाक का उद्देश्य पारम्परिक तकनीक को प्रतिस्थापित करना नहीं, बल्कि श्रम को सरल और उत्पादन को अधिक सुविधाजनक बनाना है। मिट्टी को केन्द्रित करना, दबाव नियंत्रित करना और अंतिम आकार देना आज भी पूर्णतः कारीगर के अनुभव, स्पर्श और कौशल पर निर्भर करता है। मोटर केवल चाक को गति प्रदान करती है; इसलिए मशीन कारीगर का विकल्प नहीं, बल्कि उसकी सहायक है। इससे उत्पादन क्षमता बढ़ी है, शारीरिक श्रम कम हुआ है और बदलती बाज़ार की मांग के अनुरूप कार्य करना आसान हुआ है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि आधुनिक तकनीक अपनाने के बावजूद कारीगरों का पारम्परिक चाक के प्रति भावनात्मक और सांस्कृतिक जुड़ाव बना हुआ है। अनेक परिवार आज भी पुराने चाकों को अपनी विरासत के रूप में सुरक्षित रखते हैं। इसी प्रकार गणेश आराधना, चाक के प्रति सम्मान तथा कार्यस्थल की पवित्रता जैसी धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराएँ पारम्परिक तथा विद्युत चालित दोनों प्रकार के चाकों के साथ समान रूप से निभाई जाती हैं।

इस प्रकार सवाई माधोपुर का अनुभव "परम्परा के भीतर नवाचार" की अवधारणा को सुदृढ़ करता है। "जुगाड़" इलेक्ट्रिक चाक यह सिद्ध करता है कि स्थानीय कारीगर आधुनिक तकनीकी समाधान अपनाते हुए भी अपनी पारिवारिक ज्ञान-परम्परा, सांस्कृतिक पहचान और शिल्प की मूल आत्मा को सुरक्षित रख सकते हैं। यही संतुलन इस कृष्ण मृद्भांड परम्परा की जीवंतता, अनुकूलनशीलता और दीर्घकालिक स्थिरता का आधार है।

7. निष्कर्ष

प्रस्तुत नृवंशविज्ञानात्मक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि सवाई माधोपुर की कृष्ण मृद्भांड परम्परा में कुम्हार का चाक मात्र एक तकनीकी उपकरण नहीं, अपितु एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक वस्तु (Social and Cultural Object) है। यह उपकरण अनुभवजन्य कौशल, धार्मिक आस्था और सामुदायिक अस्मिता के मध्य एक सुदृढ़ सेतु का कार्य करता है। यहाँ माइकल पोलानी की 'अव्यक्त ज्ञान' (Tacit Knowledge) की अवधारणा पूर्णतः चरितार्थ होती है, जहाँ शिल्प की सूक्ष्मताएँ किसी औपचारिक शिक्षण के स्थान पर पीढ़ियों से चले आ रहे निरंतर अभ्यास, स्पर्श और शारीरिक अनुभव से अर्जित की जाती हैं। यह "हाथ का हुनर" माप-यंत्रों के बजाय कारीगरों की स्मृति और चेतना में निहित है।

अध्ययन यह भी सिद्ध करता है कि यहाँ परम्परा और आधुनिकता परस्पर विरोध के बजाय संवाद की स्थिति में हैं। स्थानीय स्तर पर विकसित "जुगाड़" इलेक्ट्रिक चाक का सफल अंगीकरण इस तथ्य को पुष्ट करता है कि यहाँ के कारीगर अपनी सांस्कृतिक विरासत और शिल्प की मूल आत्मा को अक्षुण्ण रखते हुए तकनीकी नवाचार की अद्भुत क्षमता रखते हैं। मोटर केवल गति प्रदान करती है, जबकि सृजन का मूल नियंत्रण आज भी कारीगर के अनुभवी हाथों में ही सुरक्षित है। चाक से जुड़े अनुष्ठान और मांगलिक अवसरों पर 'चाक बासन' जैसी जीवंत परम्पराएँ दर्शाती हैं कि कारीगरों के लिए चाक की पवित्रता उसके भौतिक स्वरूप से कहीं अधिक उससे जुड़े सांस्कृतिक अर्थों और सामुदायिक स्मृतियों में रची-बसी है।

निष्कर्षतः, वर्तमान परिवेश में इस समुदाय के सम्मुख मुख्य चुनौती तकनीकी विस्थापन नहीं, वरन् ज्ञान हस्तांतरण की पीढ़ीगत निरंतरता का संकट है। अतः, इस अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के प्रयास केवल उत्पादों के विपणन तक सीमित न रहकर उन सामाजिक प्रक्रियाओं और ज्ञान-परम्पराओं के दस्तावेजीकरण पर केंद्रित होने चाहिए, जो इस शिल्प को संधारणीय बनाती हैं। भविष्य में सांस्कृतिक स्थिरता (Cultural Sustainability) सुनिश्चित करने हेतु तकनीक के साथ-साथ कारीगरों की जीवन-पद्धति और उनके अमूर्त अनुभवों को समान महत्त्व देना अनिवार्य है। कुम्हार का चाक इसी भौतिक और अमूर्त संस्कृति के समन्वय का जीवंत प्रतीक बना रहेगा।

संदर्भ

1. Berg, I. (2020). The potter's wheel. In *Encyclopedia of global archaeology*. Springer Nature.
2. Fisher, N. (1993). *Mud, mirror, and thread: Folk traditions of rural India*. Museum of New Mexico Press.
3. Foster, G. M. (1959). The potter's wheel: An analysis of idea and artifact in invention. *Southwestern Journal of Anthropology, 15*(2), 99–119.
4. Geertz, C. (1973). *The interpretation of cultures*. Basic Books.
5. Gingras, J., & Snead, D. (2018). *Potter's wheel*. University of Colorado Boulder. https://www.colorado.edu/classics/2018/06/15/potters-wheel
6. Gupta, A., & Ferguson, J. (1997). *Anthropological locations: Boundaries and grounds of a field science*. Duke University Press.
7. Perryman, J. (2000). *Traditional pottery of India*. A. & C. Black.
8. Polanyi, M. (1966). *The tacit dimension*. Doubleday.
9. Savage, G. (2025). Pottery. *Encyclopaedia Britannica*. https://www.britannica.com/art/pottery
10. The Ministry Collaborative, Macedonian Ministry Foundation. (2017). *A spiritual lesson at the potter's house*. https://mministry.org/a-spiritual-lesson-at-the-potters-house/
11. Thomas, B. (n.d.). *The still wheel*. https://www.sspgm.net/articles/the-still-wheel
12. Tripathii, S. (2026). *Author's field notes* [Unpublished manuscript].
13. Violatti, C. (2014). *Pottery in antiquity*. World History Encyclopedia. https://www.worldhistory.org/pottery/

गरिमा का शिल्प: कोयनगुड़ा के ढोकरा कारीगरों संग सह-सृजन से समावेशी और सशक्त आजीविका की पुनर्कल्पना

जय जगद

डिज़ाइन विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल:
dds246002@design.iitd.ac.in



सारांश

यह शोधपत्र महाराष्ट्र के कोयनगुड़ा गाँव के आदिवासी समुदाय में सहभागी डिज़ाइन की भूमिका का अध्ययन करता है। इसका उद्देश्य यह समझना है कि सहभागी डिज़ाइन सांस्कृतिक सहनशीलता, लैंगिक समानता और आर्थिक गरिमा को किस प्रकार बढ़ावा दे सकता है। यह अध्ययन ढोकरा धातु-शिल्प से जुड़े कारीगरों के साथ किए गए एक सह-सृजन उपक्रम पर आधारित है। इसमें महिला कारीगरों, पुरुष शिल्पकारों और विद्यालय जाने वाली किशोरियों ने भाग लिया। कागज़ पर आकृतियाँ बनाने, सामूहिक रेखांकन, मोम के नमूने तैयार करने और उपयोगकर्ता-परीक्षण जैसी गतिविधियों के माध्यम से प्रतिभागियों ने नए आभूषण और उपयोगी वस्तुएँ विकसित कीं। इन उत्पादों में ढोकरा शिल्प की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हुए उपयोग-सुविधा और समकालीन आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया गया। इस प्रक्रिया में कारीगरों को केवल निर्माता या लाभार्थी नहीं, बल्कि सह-डिज़ाइनर और सह-लेखक के रूप में शामिल किया गया। इससे पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक डिज़ाइन-पद्धतियों के बीच सम्मानपूर्ण संवाद स्थापित हुआ। यह उपक्रम दिखाता है कि देशज शिल्प-ज्ञान को नए डिज़ाइन-विचारों से जोड़कर अधिक उपयोगी, बाज़ार-अनुकूल और टिकाऊ आजीविका विकसित की जा सकती है। अध्ययन सहभागी डिज़ाइन को शांति-निर्माण और सामाजिक सहयोग की एक पद्धति के रूप में प्रस्तुत करता है। यह प्रक्रिया हाशिए के समुदायों में सामूहिक गर्व, सह-अस्तित्व, आत्मविश्वास और बदलती परिस्थितियों के अनुसार सृजनात्मक अनुकूलन को बढ़ावा दे सकती है। शोधपत्र बड़े स्तर पर उत्पादन, बाज़ार-विस्तार और ऐसी नीतियों के लिए भी सुझाव प्रस्तुत करता है, जो पारंपरिक ज्ञान का सम्मान करते हुए नवाचार, गरिमापूर्ण आय और सतत विकास को प्रोत्साहित करें।

मुख्य शब्द: सहभागी डिज़ाइन, सह-सृजन, जनजातीय शिल्प, ढोकरा, समावेशी डिज़ाइन, देशज ज्ञान, विस्तारणीय आजीविका, अर्गोनॉमिक आभूषण

1. प्रस्तावना

सहभागी डिज़ाइन की शुरुआत 1960 के दशक में स्कैंडिनेविया के श्रमिक आंदोलनों और लोकतांत्रिक विचारों से हुई। इसका उद्देश्य हाशिए पर रहने वाले समूहों को डिज़ाइन की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल करना और उन्हें निर्णय लेने की शक्ति देना था। समय के साथ यह एक वैश्विक और समावेशी पद्धति के रूप में विकसित हुआ। यह साझा निर्णय, आपसी समझ और ज्ञान तक समान पहुँच को बढ़ावा देता है। यह उन समुदायों के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है जो अपनी पहचान और अधिकारों को स्थापित करना चाहते हैं।

शांति-निर्माण में डिज़ाइन के सिद्धांतों का उपयोग संघर्ष के मूल कारणों को समझने और सामाजिक मेल-जोल बढ़ाने के लिए किया जाता है। इस संदर्भ में सहभागी डिज़ाइन संवाद, आपसी समझ और मिलकर समस्याओं का समाधान खोजने का माध्यम बनता है। इसमें स्थानीय समुदाय सीधे समाधान बनाने की प्रक्रिया में शामिल होते हैं। इससे समुदायों की निर्णय लेने की क्षमता बढ़ती है और स्थानीय अनुभवों पर आधारित ज्ञान विकसित होता है। यह तरीका उन क्षेत्रों में विशेष रूप से उपयोगी है जहाँ सामाजिक संबंध कमज़ोर हैं और ऊपर से थोपे गए समाधान स्थानीय लोगों की आवाज़ को अनदेखा कर सकते हैं। भारत के जनजातीय समुदाय देश की कुल जनसंख्या का लगभग 8.6 प्रतिशत हैं। उनकी परंपराएँ, जीवन-पद्धतियाँ और स्थानीय ज्ञान-प्रणालियाँ भारत की सांस्कृतिक विविधता को समृद्ध बनाती हैं। इसके बावजूद, ये समुदाय भूमि से विस्थापन, स्वास्थ्य और शिक्षा की सीमित सुविधाओं तथा सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा जैसी समस्याओं का सामना करते हैं। शिल्प पर आधारित उनकी आजीविकाएँ उनकी सांस्कृतिक पहचान का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। लेकिन वैश्वीकरण और बदलते बाज़ार के दबावों के कारण ये आजीविकाएँ संकट में भी पड़ सकती हैं। यह स्थिति ऐसे सहभागी दृष्टिकोण की आवश्यकता बताती है, जो उनकी संस्कृति और स्थानीय परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील हो।



चित्र 1: स्थानीय कारीगरों के साथ सह-निर्माण

1.1 कोयनगुड़ा और ढोकरा शिल्प

महाराष्ट्र के गडचिरोली ज़िले में स्थित कोयनगुड़ा एक छोटा आदिवासी गाँव है। यह गाँव परंपरा और नए प्रयोगों के बीच संतुलन बनाने का उदाहरण प्रस्तुत करता है। यहाँ के लोगों की आजीविका मुख्य रूप से पशुपालन, खेती और ढोकरा शिल्प पर आधारित है। ढोकरा अलौह धातु की ढलाई की एक प्राचीन कला है, जिसमें लुप्त-मोम विधि का उपयोग किया जाता है। सुरेश पुंगाटी जैसे राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित कारीगरों ने इस कला को पीढ़ियों से जीवित रखा है।

ढोकरा की प्रत्येक वस्तु हाथ से बनाई जाती है और अपने रूप में विशिष्ट होती है। यही विशेषता इसे कलात्मक रूप से मूल्यवान बनाती है, लेकिन बड़े स्तर पर उत्पादन और बाज़ार तक पहुँच को कठिन भी बनाती है। इन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए एक सहभागी डिज़ाइन परियोजना शुरू की गई। इसका उद्देश्य कारीगरों के साथ मिलकर ऐसे आरामदायक और समावेशी आभूषण तैयार करना था, जो पारंपरिक पहचान को बनाए रखते हुए आज के बाज़ार की आवश्यकताओं के अनुरूप भी हों।

2. पारंपरिक शिल्प-अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले कारक

2.1 वैश्वीकरण का प्रभाव

वैश्वीकरण ने पारंपरिक शिल्प-आधारित अर्थव्यवस्थाओं पर गहरा प्रभाव डाला है। सस्ते, एक

जैसे और बड़े स्तर पर बनाए गए उत्पादों ने हस्तनिर्मित वस्तुओं की बाज़ार में पहचान और महत्त्व को कम किया है। यह कारीगरों के कौशल में कमी के कारण नहीं, बल्कि उत्पादन, प्रतिकृति और बाज़ार-विस्तार से जुड़ी असमान व्यवस्थाओं का परिणाम है।

भारतीय हस्तशिल्प क्षेत्र कृषि के बाद रोज़गार देने वाला एक बड़ा क्षेत्र है। फिर भी यह बिखरी हुई आपूर्ति-शृंखलाओं, डिज़ाइन-शिक्षा की कमी और बाज़ार से कमज़ोर जुड़ाव जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। कई कारीगर अपनी वस्तुओं की बिक्री के लिए बिचौलियों पर निर्भर रहते हैं, जिसके कारण उनकी आय अनिश्चित बनी रहती है।

कोविड-19 महामारी ने इन समस्याओं को और बढ़ा दिया। पर्यटन रुक गया, मेले और प्रदर्शनियाँ रद्द हो गईं तथा कच्चे माल की आपूर्ति बाधित हुई। इससे कारीगरों की आय के साथ-साथ उनके मनोबल पर भी प्रभाव पड़ा। इन परिस्थितियों ने यह भी दिखाया कि पारंपरिक शिल्प को उसकी मूल पहचान बनाए रखते हुए नए रूप में विकसित किया जा सकता है।

कोयनगुड़ा में किया गया सहभागी डिज़ाइन उपक्रम इसी दिशा में एक प्रयास था। इसमें कारीगरों के अनुभव और निर्णयों का सम्मान करते हुए सह-सृजन की प्रक्रिया को आधुनिक डिज़ाइन-उपकरणों और उद्यमशील सोच से जोड़ा गया।

2.2 भौगोलिक व सांस्कृतिक संदर्भ

यह अध्ययन महाराष्ट्र के गडचिरोली ज़िले के भामरागढ़ क्षेत्र में स्थित कोयनगुड़ा गाँव में किया गया। यह एक दूरस्थ गाँव है, जहाँ मुख्य रूप से माड़िया गोंड समुदाय निवास करता है। इस समुदाय को विशेष रूप से सुभेद्य जनजातीय समूह के रूप में मान्यता प्राप्त है।

यहाँ के लोगों की पारंपरिक आजीविका खेती, वन-उपज के संग्रह और ढोकरा धातु-शिल्प पर आधारित है।

2.3 सहभागियों का परिचय

इस उपक्रम में पाँच प्रमुख समूहों ने भाग लिया।

- मुख्य कारीगर सुरेश पुंगाटी, जिनकी आयु 44 वर्ष थी, ने पारंपरिक कौशल, स्थानीय ज्ञान और डिज़ाइन-विचारों के सांस्कृतिक समन्वय में मार्गदर्शन दिया।

- 18 से 28 वर्ष की पाँच युवा महिला कारीगरों ने सह-डिज़ाइनर के रूप में भाग लिया। वे नमूने बनाने, उनका परीक्षण करने, प्रतिक्रिया देने और उत्पादों की कहानियाँ विकसित करने की प्रक्रिया में शामिल रहीं।

- 22 से 32 वर्ष के चार युवा पुरुष कारीगरों ने भी समान भूमिकाएँ निभाईं और डिज़ाइन-विकास की विभिन्न अवस्थाओं में योगदान दिया।

- 12 से 16 वर्ष की पाँच विद्यालय जाने वाली आदिवासी बालिकाओं ने भी सरल सह-सृजन गतिविधियों में भाग लिया। उन्हें शिल्प का कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं था। उनकी भागीदारी ने यह दिखाया कि शिल्प-कौशल का हस्तांतरण अधिक समावेशी और व्यापक रूप में किया जा सकता है।

- अंत में, 24 और 27 वर्ष के दो डिज़ाइनरों एवं सुविधादाताओं ने दस्तावेज़ीकरण, विचार-विकास, उपयोग-सुविधा से जुड़े सुधार और उत्पाद-कथावाचन में सहयोग दिया।



चित्र 2: 44 वर्ष: मुख्य कारीगर और मार्गदर्शक



चित्र 3: 18–28 वर्ष: युवा महिला सह-डिज़ाइनर



चित्र 4: 22–32 वर्ष: युवा पुरुष सह-डिज़ाइनर



चित्र 5: 12–16 वर्ष: स्कूली आदिवासी छात्राएँ (सह-सृजनकर्ता)



चित्र 6: 24 व 27 वर्ष: डिज़ाइनर एवं सुविधादाता

3. कार्यविधि: स्थितिजन्य संवाद के रूप में सहभागी डिज़ाइन

सरल और अधिक प्रवाहपूर्ण रूप:

3.1 क्षेत्र-भ्रमण और नृजातीय संवाद

कोयनगुड़ा में सहभागी डिज़ाइन और नृजातीय संवाद पर आधारित पद्धति अपनाई गई। कई क्षेत्र-भ्रमणों और लंबे संवादों के माध्यम से कारीगरों के अनुभव, रोज़मर्रा की समस्याएँ, आकांक्षाएँ और कौशल समझे गए।

क्षेत्रकार्य से कुछ प्रमुख चुनौतियाँ सामने आईं। कारीगरों का आधुनिक डिज़ाइन-उपकरणों से सीमित परिचय था। उन्हें स्थानीय सांस्कृतिक प्रतीकों को ऐसे उत्पादों में बदलने में कठिनाई होती थी, जिन्हें बड़े स्तर पर बनाया और बेचा जा सके। नए बाज़ारों तक पहुँचने की संभावना को लेकर भी उनमें संदेह था।

3.2 महिला कारीगरों के साथ सह-सृजन प्रक्रिया

इस प्रक्रिया में पाँच युवा महिला कारीगर, दो औद्योगिक डिज़ाइनर और सुरेश पुंगाटी शामिल थे। इसका उद्देश्य कारीगरों को केवल लाभार्थी न मानकर सह-डिज़ाइनर के रूप में शामिल करना था। उत्पादों में उपयोग-सुविधा, समावेशिता और बड़े स्तर पर उत्पादन की संभावना को प्राथमिकता दी गई।

यह प्रक्रिया छह चरणों में पूरी हुई। पहले कारीगरों के साथ विश्वास बनाया गया और उन्हें सह-सृजक की भूमिका दी गई। इसके बाद कागज़ के नमूने बनाए गए। सह-रेखांकन के दौरान पारंपरिक आकृतियों को आधुनिक और आरामदायक रूपों से जोड़ा गया। तार के नमूनों के माध्यम से भार-वितरण और संरचना पर चर्चा की गई। फिर इन रूपों को मोम में तैयार किया गया, जो ढोकरा निर्माण की पारंपरिक प्रक्रिया का हिस्सा है। अंत में आभूषणों को पहनकर परखा गया और प्रतिक्रिया के आधार पर उनमें सुधार किए गए।

इस प्रक्रिया से ऐसा साझा ढाँचा विकसित हुआ, जो अलग-अलग शारीरिक आकारों के अनुकूल था। कारीगरों ने सामग्री के साथ प्रयोग, रूपों को सरल बनाने, उपयोगकर्ता की आवश्यकताओं को समझने और आलोचनात्मक ढंग से सोचने जैसे कौशल भी विकसित किए।

3.3 युवा पुरुष कारीगरों के साथ सह-सृजन प्रक्रिया

यह प्रक्रिया चार युवा पुरुष कारीगरों, दो डिज़ाइनरों और सुरेश पुंगाटी के साथ की गई। इसका उद्देश्य एक रोज़मर्रा की वस्तु (चम्मच), को दोबारा डिज़ाइन करने में युवा कारीगरों को शामिल करना था।

यह कार्य छह चरणों में पूरा हुआ: प्रारंभिक प्रेरणा, आकारों की खोज, सामग्री के साथ प्रयोग, उपयोग का अनुभव, बार-बार सुधार और अंतिम रूप देना। आकारों की खोज के दौरान प्रत्येक कारीगर ने चम्मच की अलग व्याख्या प्रस्तुत की। इससे संतुलन और अनुपात पर सामूहिक चर्चा हुई।

सामग्री के प्रयोग में मोम तराशना, मोम की परतें जोड़ना और मोम की छड़ों को मोड़ना शामिल था। इन विधियों के कारण प्रत्येक चम्मच का रूप अलग और व्यक्तिगत बना। इस प्रक्रिया ने कारीगरों को केवल निर्देशों का पालन करने वाले कुशल निर्माताओं से आगे बढ़ाकर उपयोगकर्ता की आवश्यकताओं को समझने वाले डिज़ाइनरों के रूप में विकसित किया। इससे उनके आत्मविश्वास में भी वृद्धि हुई।

3.4 विद्यालय जाने वाली आदिवासी बालिकाओं के साथ सह-सृजन प्रक्रिया

इस समूह में पाँच विद्यालय जाने वाली बालिकाएँ, पहले समूह की दो युवा महिला कारीगर सह-मार्गदर्शक के रूप में और दो डिज़ाइनर शामिल थे। इसका उद्देश्य केवल उत्पाद तैयार करना नहीं, बल्कि उत्साहपूर्ण और सहयोगी वातावरण में बालिकाओं को डिज़ाइन-शिक्षा से परिचित कराना भी था।

यह प्रक्रिया पाँच चरणों में पूरी हुई। गतिविधियों को नए सीखने वालों के अनुसार सरल बनाया गया। बालिकाओं को स्वतंत्र रूप से विचार प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया। सहपाठी और महिला कारीगरों के माध्यम से सीखने को बढ़ावा दिया गया। उन्होंने हाथों से नमूने बनाए, उनका परीक्षण किया और उनमें सुधार किया। अंत में उन्होंने अपने विचारों को वास्तविक वस्तुओं में बदलते हुए निर्माण की पूरी प्रक्रिया का अनुभव किया।

इस गतिविधि का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम बालिकाओं का भावनात्मक और बौद्धिक सशक्तीकरण था। पहली बार उन्होंने किसी विचार को विकसित करने से लेकर उसे त्रि-आयामी वस्तु में बदलने तक की पूरी डिज़ाइन-यात्रा में भाग लिया।

4. सीख और परिणाम

तीनों समूहों के साथ हुई प्रक्रिया से कई महत्त्वपूर्ण सीखें सामने आईं। महिला कारीगरों की शुरुआती झिझक लगातार प्रोत्साहन से कम हुई। तार और मोम से नमूने बनाना तथा ढलाई से पहले उनका परीक्षण करना अब उनकी नियमित कार्यप्रक्रिया का हिस्सा बन गया है।

पुरुष कारीगरों में प्रयोग और खोज की प्रवृत्ति बढ़ी। उनकी सोच केवल वस्तु बनाने तक सीमित न रहकर उपयोगकर्ता की आवश्यकताओं को समझने की दिशा में विकसित हुई।

विद्यालय जाने वाली बालिकाओं में सहपाठियों और युवा महिला कारीगरों के मार्गदर्शन से असहजता कम हुई। बार-बार नमूने बनाने, उन्हें परखने और सुधारने की प्रक्रिया ने उनमें स्वामित्व और उपलब्धि की भावना विकसित की।



चित्र 7: उपयोगकर्ता-परीक्षण व उत्पादन कोयनगुड़ा में अपनाई गई डिज़ाइन-प्रक्रिया

5. पुनरावृत्त प्रक्रिया: प्रतिरूपण, उपयोगकर्ता-परीक्षण और उत्पादन

कोयनगुड़ा में अपनाई गई डिज़ाइन-प्रक्रिया को सरल नमूनों से विकसित और परिष्कृत नमूनों की ओर क्रमबद्ध किया गया।

कागज़ के नमूनों ने विचारों को शीघ्रता से व्यक्त करने में सहायता की। तार के नमूनों ने वस्तु का त्रि-आयामी ढाँचा समझने का अवसर दिया। मोम के नमूनों पर बारीक तराश और सुधार किए गए। अंत में पीतल की ढलाई के माध्यम से वस्तुओं को अंतिम रूप दिया गया।

इस प्रक्रिया ने ढोकरा शिल्प की पारंपरिक पहचान को बनाए रखते हुए उत्पादों की उपयोगिता और आकर्षण को बढ़ाया।

उपयोगकर्ता-परीक्षण को खुले संवाद के रूप में आयोजित किया गया। इससे उत्पादों के आरामदायक होने, आकार के अनुकूल होने, विभिन्न प्रकार के उपयोग और सौंदर्य संबंधी पसंद के बारे में उपयोगी जानकारी मिली। बड़े स्तर पर उत्पादन की संभावना बढ़ाने के लिए चार प्रमुख रणनीतियाँ अपनाई गईं: मॉड्यूलर संरचना, आयामों का मानकीकरण, जटिल आकृतियों को सरल बनाना और सामग्री का अधिक कुशल उपयोग।

6. लिंग, अभिकरण और शिल्प-पहचान

कोयनगुड़ा का यह उपक्रम केवल नए उत्पाद विकसित करने तक सीमित नहीं था। इसने लैंगिक सशक्तीकरण, व्यक्तिगत निर्णय-क्षमता और समुदाय में शिल्प की बदलती पहचान से जुड़े महत्त्वपूर्ण सामाजिक बदलावों को भी प्रोत्साहित किया।

इस प्रक्रिया की एक प्रमुख विशेषता "डिज़ाइनर" और "कारीगर" के बीच मौजूद पदानुक्रम को चुनौती देना थी। समुदाय के सदस्यों को केवल निर्माणकर्ता नहीं, बल्कि नए विचारों और नवाचार के सह-निर्माता के रूप में मान्यता दी गई।

7. सांस्कृतिक संवाद के रूप में सहभागी डिज़ाइन

सहभागी डिज़ाइन के लिए विनम्रता, आपसी विश्वास और मिलकर काम करने की भावना आवश्यक है। यह प्रक्रिया दिखाती है कि जब डिज़ाइन लोगों की आजीविका और सांस्कृतिक पहचान दोनों का सम्मान करता है, तब वह सामाजिक शांति और सहयोग का प्रभावी माध्यम बन सकता है। कोयनगुड़ा में इस उपक्रम की एक प्रमुख विशेषता वहाँ के दैनिक जीवन, परंपराओं और कार्य-पद्धतियों के प्रति सम्मान था। किसी बाहरी डिज़ाइन मॉडल को सीधे लागू करने के बजाय पूरी प्रक्रिया स्थानीय सांस्कृतिक संदर्भ के भीतर विकसित की गई। इसमें चम्मच के दैनिक उपयोग, मोम को आकार देने की पारंपरिक विधियों और कारीगरों के अनुभवों को आधार बनाया गया।

भविष्य में स्वदेशी शिल्प समुदायों के साथ सहभागी डिज़ाइन करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जा सकता है:

- **समुदाय-केंद्रित सहभागिता:** प्रक्रिया की शुरुआत विभिन्न आयु और लिंग समूहों की बात सुनने से होनी चाहिए। समुदाय की अलग-अलग आकांक्षाओं और ज्ञान-पद्धतियों को समझने के लिए सहपाठी संवाद और पीढ़ियों के बीच बातचीत को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।



चित्र 8: डिजाइन स्केच और वैक्स/मेटल फॉर्म



चित्र 9: पत्ती के आकार का आभूषण

- **विभिन्न स्तरों पर क्षमता निर्माण:** युवा और वरिष्ठ कारीगरों को सरल तथा व्यावहारिक डिज़ाइन-उपकरणों से परिचित कराया जाना चाहिए। उन्हें विचार विकसित करने, नमूने बनाने, परीक्षण करने और सुधार करने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। महिलाओं और बालिकाओं के बीच ज्ञान के हस्तांतरण को भी डिज़ाइन-शिक्षा के प्रभावी माध्यम के रूप में पहचाना जाना चाहिए।

- **समावेशी और पुनरावृत्त सह-डिज़ाइन:** उपयोगी और सजावटी, दोनों प्रकार की वस्तुओं में प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। चाहे चम्मच को अधिक सुविधाजनक बनाना हो या विभिन्न शारीरिक आकारों के लिए आभूषण तैयार करना हो, प्रत्येक चरण में चर्चा, उपयोगकर्ता-परीक्षण और सुधार को शामिल करना आवश्यक है।

- **सांस्कृतिक पहचान के साथ बाज़ार से जुड़ाव:** उत्पादों को समकालीन बाज़ार की उपयोगिता और सौंदर्य-संबंधी अपेक्षाओं के अनुरूप विकसित किया जा सकता है, लेकिन उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं से समझौता नहीं होना चाहिए। सह-निर्मित कहानियों और दस्तावेज़ीकरण के माध्यम से शिल्प-विरासत को समकालीन मूल्य से जोड़ा जा सकता है।

- **टिकाऊ और सांस्कृतिक रूप से जुड़ा विस्तार:** उत्पादन और पैकेजिंग में पर्यावरणीय ज़िम्मेदारी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। समुदाय द्वारा संचालित प्रबंधन-व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए तथा लाभ और मान्यता का वितरण कारीगरों के बीच न्यायपूर्ण रूप से होना चाहिए।

8. निष्कर्ष और विचार

इस उपक्रम ने दिखाया कि सहभागी डिज़ाइन केवल नए उत्पादों के विकास की प्रक्रिया नहीं है। यह समुदाय के सदस्यों की दृश्यता, आत्मविश्वास, निर्णय-क्षमता और सांस्कृतिक पहचान को भी मज़बूत कर सकता है। इसके साथ ही, भौगोलिक दूरी, सीमित आधारभूत सुविधाओं और बाज़ार तक कमज़ोर पहुँच जैसी चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं। इस शोध से निम्नलिखित भावी संभावनाएँ उभरकर सामने आती हैं:

- **उपेक्षित निर्माताओं की दृश्यता:** इस उपक्रम में उन लोगों को डिज़ाइन-प्रक्रिया में शामिल किया गया, जिनके योगदान को प्रायः अनदेखा किया जाता है। विशेष रूप से किशोर बालिकाएँ निष्क्रिय दर्शकों से सक्रिय सह-डिज़ाइनर के रूप में सामने आईं।

- **बालिकाओं का सशक्तीकरण:** स्थापित नियमों और धारणाओं से अपेक्षाकृत मुक्त होने के कारण बालिकाओं ने उपयोग-सुविधा और सौंदर्य से जुड़े नए विचार प्रस्तुत किए। युवा महिला कारीगरों द्वारा दिए गए मार्गदर्शन से एक अनौपचारिक और टिकाऊ शिक्षण-व्यवस्था भी विकसित हुई।

- **कारीगरों की विस्तृत पहचान:** पुरुष कारीगरों को केवल कुशल निर्माता के रूप में नहीं, बल्कि उपयोगकर्ता की आवश्यकताओं को समझने वाले विचारशील डिज़ाइन-अभ्यासकर्ताओं के रूप में पहचान मिली।

- **भौगोलिक सीमाएँ:** कोयनगुड़ा की दूरस्थ स्थिति और विपणन संबंधी आधारभूत सुविधाओं की कमी के कारण कारीगर बड़े बाज़ारों से नहीं जुड़ पाए। उत्पादों में सुधार के बावजूद वे बिचौलियों, स्थानीय मेलों और गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा आयोजित सीमित प्रदर्शनियों पर निर्भर रहे।

- **डिजिटल पहुँच की बाधाएँ:** सीमित साक्षरता, इंटरनेट की कमज़ोर उपलब्धता और आधारभूत सुविधाओं की कमी के कारण डिजिटल मंचों का उपयोग अपेक्षा के अनुसार नहीं हो सका।

- **व्यावसायिक प्रशिक्षण:** ऐसे कार्यक्रम विकसित किए जाने चाहिए जो स्थानीय शिल्प-तकनीकों को आधुनिक डिज़ाइन-उपकरणों से जोड़ें। इससे काम की गुणवत्ता, गति और उत्पादन क्षमता में सुधार हो सकता है तथा नए आर्थिक अवसर विकसित किए जा सकते हैं।

- **संस्थागत साझेदारियाँ:** डिज़ाइन संस्थानों और ग्रामीण शिल्प समुदायों के बीच फील्ड लैब, कार्यशालाएँ और सह-शिक्षण कार्यक्रम स्थापित किए जा सकते हैं। इससे दोनों पक्ष एक-दूसरे के अनुभव और ज्ञान से सीख सकेंगे।

- **दीर्घकालिक बाज़ार संबंध:** कारीगरों को खुदरा विक्रेताओं, संग्रहालयों, डिज़ाइन ब्रांडों और नैतिक फैशन संस्थानों से दीर्घकालिक रूप से जोड़ने की आवश्यकता है।

- **स्थानीय नवाचार प्रयोगशालाएँ:** ऐसी प्रयोगशालाएँ स्थापित की जा सकती हैं जहाँ कारीगर रूप, उपयोगिता और परंपरा को जोड़ते हुए नए उत्पाद विकसित करके उनका परीक्षण कर सकें।

आभार

कोयनगुड़ा गाँव के निवासियों और मुख्य कारीगर श्री सुरेश पुंगाटी के सहयोग और आत्मीयता के बिना यह शोध संभव नहीं था। हम उनके प्रयासों तथा उन तीनों सहभागी समूहों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने इस प्रक्रिया में सक्रिय रूप से योगदान दिया।

संदर्भ

1. Krasovskaya, D. (2024, August 9). *Participatory design: The complete guide*. UXtweak. https://blog.uxtweak.com/participatory-design/
2. Majeed, I. (2018). Indian handicraft industry and globalization: An analysis of issues and challenges. *American International Journal of Research in Humanities, Arts and Social Sciences*, 129–135.
3. Marques, B., McIntosh, J., & Campays, P. (2018). Participatory design for under-represented communities: A collaborative design-led research approach for place-making. In *Handbook of research on civic engagement and social change in contemporary society* (pp. 1–15).
4. Ministry of Home Affairs, Government of India. (2021). *District census handbook data collection 2021*. Government of India.
5. Ministry of Tribal Affairs, Government of India. (n.d.). *State-wise list of Particularly Vulnerable Tribal Groups*

(PVTGs). https://tribal.nic.in/DivisionsFiles/SwLPVTGs.pdf

6. Mukherjee, J., Shaw, A., Kumar, K., Lahiri-Dutt, K., & Ghosh, A. (2024). Towards transformative social resilience: Charting a path with climate-vulnerable communities in the Indian Sundarbans. In *Planetary justice: Stories and studies of action, resistance and solidarity*. Bristol University Press.
7. Tanwar, I. (2024, May 28). *Devrai Art Village, Panchgani: Home to craft of Rock Dhokra*. Craftique Hub. https://www.craftiquehub.org/post/devrai-artvillage-panchgani-home-to-craft-of-rockdhokra
8. Utami, L. A., Mardiansjah, F. H., Lestari, E. P., Puspitasari, P., Pradoto, W., Dewi, S. P., & others. (2022). Participatory learning and co-design for sustainable rural living: Supporting the revival of indigenous values and community resiliency in Sabrang Village, Indonesia. *Land, 11*(9).
9. Values and Community Resiliency in Sabrang Village, Indonesia," Land, vol. 11, no. 9, 2022.

मैसूरु की जीवित होयसला शिल्प परंपरा

तनीमा चंदा

डिज़ाइन विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
ई-मेल:
Tanima.Chanda@design.iitd.ac.in

सारांश

कर्नाटक के बेलूर, हलेबीडु और सोमनाथपुर के होयसला मंदिर पत्थर पर विकसित एक विशिष्ट दृश्य भाषा के लिए प्रसिद्ध हैं। ताराकार योजना, क्षैतिज शिल्प-पट्टियाँ, सघन अलंकरण, नर्तक-वादक आकृतियाँ, पशु रूप, सूक्ष्म आभूषण और शिल्पकारों के हस्ताक्षर इस परंपरा को स्थापत्य से आगे बढ़ाकर कलाकार-केंद्रित विरासत बनाते हैं। इन ऐतिहासिक स्थलों की शिल्प-स्मृति आज मैसूरु क्षेत्र की कार्यशालाओं में नए रूपों में दिखाई देती है। बालाजी कला केंद्र में वरिष्ठ शिल्पकार जगदीश आचार्य और युवा शिल्पकार संदेश आचार्य पत्थर के चयन, रेखांकन, मूल आकार निकालने, अनुपात संभालने, अलंकरण और अंतिम घिसाई की प्रक्रिया को हाथ के औज़ारों से आगे बढ़ाते हैं। यह लेख होयसला शिल्प के ऐतिहासिक प्रभाव, मंदिरों में दिखाई देने वाली मूर्तिकला की विशेषताओं और पारिवारिक सीख के माध्यम से जीवित बनी समकालीन पाषाण शिल्प परंपरा का सरल परिचय प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: होयसला शिल्प, पाषाण मूर्तिकला, मैसूरु, सोमनाथपुर, बेलूर, पीढ़ीगत सीख



चित्र 1: सोमनाथपुर स्थित केशव मंदिर का ताराकार बाह्य विन्यास और सघन शिल्प-सतह (लेखिका का दृश्य प्रलेखन, 2025)

1. प्रस्तावना

कर्नाटक की पाषाण मूर्तिकला को केवल मंदिरों के धार्मिक संदर्भ से पढ़ना पर्याप्त नहीं है। इन स्थलों की दीवारें, स्तंभ, छतें और स्वतंत्र आकृतियाँ पत्थर की प्रकृति, अनुपात, सतह, उपकरण और शिल्पकार की कल्पना के बीच बने दीर्घ संबंध को सामने लाती हैं। इस लेख में मंदिरों को शिल्प और दृश्य संस्कृति के ऐतिहासिक अभिलेख के रूप में देखा गया है। चर्चा का केंद्र मूर्तियों की बनावट, हस्तकौशल, कलाकारों की भूमिका और मैसूरु में जारी समकालीन अभ्यास है।

बेलूर का चेन्नकेशव मंदिर, हलेबीडु का होयसलेश्वर मंदिर और सोमनाथपुर का केशव मंदिर बारहवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच विकसित होयसला शैली के प्रमुख उदाहरण हैं। इन तीनों को वर्ष 2023 में यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में "होयसला के पवित्र स्थापत्य समूह" के रूप में सम्मिलित किया गया (UNESCO World Heritage Centre, 2023)। यूनेस्को ने इन परिसरों की ताराकार योजना, बहुस्तरीय शिल्प-पट्टियों, संपूर्ण स्थापत्य सतह पर फैली नक्काशी और कलाकारों के हस्ताक्षरों को उनकी विशिष्ट पहचान माना है (UNESCO World Heritage Centre, 2023)।

2. होयसला शिल्प की दृश्य भाषा

होयसला स्थापत्य ने पहले से प्रचलित दक्षिण भारतीय रूपों और अन्य क्षेत्रों से आए स्थापत्य संकेतों को चुनकर एक अलग शैली विकसित की। मंदिरों की दीवारें सीधी सतह न रहकर बार-बार भीतर और बाहर मुड़ती हैं। इस कारण प्रकाश दिन भर बदलते कोणों से मूर्तियों पर पड़ता है और एक ही आकृति अलग समय पर अलग गहराई ग्रहण करती है। सोमनाथपुर में यह ताराकार विन्यास बाहरी दीवारों, ऊँचे आधार और तीन गर्भगृहों की संयुक्त रचना में स्पष्ट दिखाई देता है (Settar, 1992)।

इस शैली के निर्माण में क्लोराइटिक शिस्ट, जिसे सामान्यतः सोपस्टोन या मुलायम पत्थर कहा जाता है, की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। खदान से निकला शिस्ट अपेक्षाकृत मुलायम और काटने योग्य होता है, इसलिए उसमें पतली रेखाएँ, गहरे छिद्र, गोल आभूषण और बहुस्तरीय किनारे बनाए जा सकते हैं। समय के साथ इसकी सतह अधिक कठोर हो जाती है (UNESCO World Heritage Centre, 2023)। यही गुण होयसला मूर्तियों में दिखने वाली सूक्ष्मता और घनी सज्जा को संभव बनाता है।

मंदिरों की निचली पट्टियों में पशु, पुष्प, लता के क्रमिक दृश्यांकन दिखाई देते हैं। ऊपरी भागों में मानव आकृतियाँ, नर्तक, वादक, वस्त्र, केश-सज्जा और आभूषणों का अत्यंत सूक्ष्म अंकन मिलता है। बेलूर के मंडपों में स्तंभों के बीच स्थित मदनिका या ब्रैकेट आकृतियाँ शरीर की मुद्रा, भार-संतुलन और अलंकरण को एक साथ दिखाती हैं (Settar, 1992)। इन आकृतियों को शरीर की मुद्रा, भार-संतुलन और अलंकरण की दृष्टि से देखने पर शिल्पकार की रेखा, सतह और त्रि-आयामी समझ स्पष्ट होती है।



चित्र 2: होयसला शिल्प की विविध दृश्य विशेषताएँ। ऊपर बाएँ: बेलूर की सघन मूर्ति-दीर्घा; ऊपर दाएँ: ब्रैकेट आकृति; नीचे बाएँ: अलंकृत आंतरिक स्तंभ; नीचे दाएँ: सोमनाथपुर की पशु आकृति और क्षैतिज शिल्प-पट्टियाँ (लेखिका का दृश्य प्रलेखन, 2025)

3. कलाकारों की उपस्थिति और स्थानीय शिल्प-स्मृति

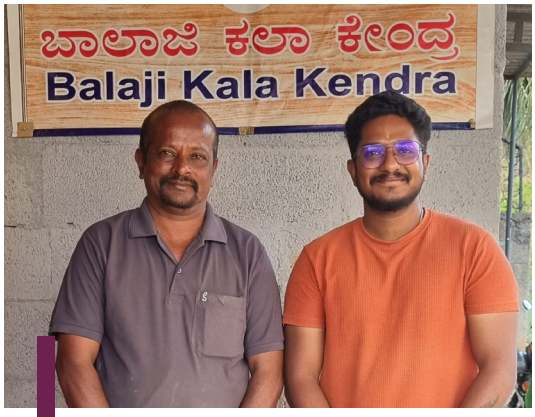
होयसला मंदिरों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि अनेक शिल्पकारों ने अपने नाम पत्थर पर अंकित किए। यूनेस्को के अनुसार यह भारतीय उपमहाद्वीप के मंदिरों में अपेक्षाकृत असामान्य परंपरा थी और कलाकारों की प्रतिष्ठित सामाजिक स्थिति की ओर संकेत करती है (UNESCO World Heritage Centre, 2023)। बेलूर में दासोजा और चवण जैसे पिता-पुत्र शिल्पकारों का उल्लेख मिलता है (Hassan District Administration, Government of Karnataka, n.d.)। सोमनाथपुर में भी अनेक आकृतियों के नीचे कलाकारों के नाम दोहराए गए हैं (ICOMOS, 2023)।

स्थानीय व्याख्याओं में इन नामों को केवल ऐतिहासिक जानकारी नहीं माना जाता। वे यह स्मरण कराते हैं कि विशाल स्थापत्य और सूक्ष्म मूर्तिकला अनेक हाथों, लंबे समय और पीढ़ियों के सहयोग से बनी। कलाकार का नाम, उसका गृह-क्षेत्र और कभी-कभी उसकी कार्यशाला का संकेत पत्थर को मानवीय श्रम के अभिलेख में बदल देता है। इस दृष्टि से होयसला विरासत का महत्त्व केवल बने हुए मंदिर में नहीं, बल्कि उस शिल्प समुदाय की स्मृति में भी है जिसने उसे आकार दिया।

4. ऐतिहासिक शिल्प से समकालीन कार्यशाला तक

मैसूरु स्थित बालाजी कला केंद्र में इस क्षेत्र की ऐतिहासिक शिल्पभाषा का प्रत्यक्ष अनुकरण नहीं किया जाता, फिर भी उसकी छाप स्पष्ट है। सूक्ष्म आभूषण, शरीर और वस्त्र की स्तरित रेखाएँ, पत्थर की सतह को क्रमशः गहराई देना और हाथ के औज़ारों से अंतिम रूप तैयार करना क्षेत्रीय निरंतरता को प्रकट करते हैं। यह प्रभाव किसी सीधी ऐतिहासिक वंशावली का प्रमाण नहीं, बल्कि क्षेत्र में लंबे समय से उपस्थित दृश्य और तकनीकी वातावरण की निरंतरता है। शिल्पकार इसे मंदिरों, पुरानी मूर्तियों, पारिवारिक अभ्यास और अपने अनुभव से ग्रहण करते हैं।

बालाजी कला केंद्र में वरिष्ठ शिल्पकार जगदीश आचार्य और संदेश आचार्य पत्थर, लकड़ी तथा अन्य माध्यमों में काम करते हैं। पाषाण मूर्तिकला के संदर्भ में जगदीश आचार्य का लंबा अनुभव और संदेश आचार्य की सक्रिय भागीदारी कार्यशाला को दो पीढ़ियों के साझा अभ्यास का स्थान बनाते हैं। तैयार मूर्तियों के साथ कच्चे पत्थर, अधूरे रूप और अलग-अलग आकार के औज़ारों की उपस्थिति यह दिखाती है कि शिल्प का वास्तविक जीवन अंतिम वस्तु से अधिक उसकी बनने की प्रक्रिया में है। परिवार द्वारा साझा विवरण के अनुसार, जगदीश आचार्य को वर्ष 1995 में सरसों के दाने के आकार की ‘पंच गणेश’ सूक्ष्म शिल्पकृति के लिए ‘शिल्पस पुरस्कार’ से सम्मानित किया गया था। इस अत्यंत लघु कृति को देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता पड़ती थी।



चित्र 3: बालाजी कला केंद्र में वरिष्ठ शिल्पकार जगदीश आचार्य (बाएँ) और संदेश आचार्य (दाएँ) (लेखिका का दृश्य प्रलेखन, 2025)

5. पत्थर से मूर्ति बनाने की प्रक्रिया

मूर्ति बनाने की शुरुआत उपयुक्त पत्थर चुनने से होती है। शिल्पकार उसकी कठोरता, दाने, सतह और संभावित दरारों को देखते हैं। इसके बाद कच्चे टुकड़े की एक सतह समतल की जाती है, ताकि उस पर स्पष्ट रेखांकन बन सके। प्रारंभिक रेखा आकृति की ऊँचाई, चौड़ाई, मुद्रा और मुख्य अंगों का संकेत देती है। अनुपात की गलती बाद के चरणों में कठिनाई पैदा कर सकती है, इसलिए रेखांकन को बार-बार सुधारा जाता है।

रेखांकन के बाद चौड़ी छेनी और हथौड़े से अतिरिक्त पत्थर हटाकर सिर, धड़, हाथ, पैर और आधार का मोटा रूप निकाला जाता है। इस अवस्था में उद्देश्य विवरण बनाना नहीं, बल्कि आकृति का संतुलित आयतन प्राप्त करना होता है। बड़ी सतहों के स्पष्ट होने के बाद शरीर के भागों को सुधारा जाता है और फिर वस्त्र, आभूषण, किनारे तथा छोटी रेखाएँ जोड़ी जाती हैं।

कार्य एक बार खींची गई रेखा का सीधा अनुसरण नहीं करता। शिल्पकार कुछ पत्थर हटाता है, नई सतह को देखता है, फिर रेखा दोबारा बनाता है। यही क्रम सपाट चित्र को धीरे-धीरे त्रि-आयामी रूप देता है। चौड़ी छेनी बड़े हिस्सों के लिए, पतली और नुकीली छेनी सूक्ष्म विवरण के लिए तथा घिसाई के औज़ार सतह को साफ करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। हथौड़े की शक्ति कटाव की गहराई तय करती है, जबकि

छेनी का कोण यह निर्धारित करता है कि प्रहार सतह के साथ चलेगा या पत्थर के भीतर प्रवेश करेगा।

अंतिम चरण में चेहरे, उँगलियों, वस्त्र-रेखाओं और सजावटी भागों को साफ किया जाता है। घिसाई और पॉलिश के बाद पत्थर की सतह पर प्रकाश समान रूप से पड़ता है और आकृति के छोटे अंतर स्पष्ट होते हैं। आधुनिक कटिंग या ग्राइंडिंग उपकरण प्रारंभिक तैयारी में सहायता कर सकते हैं, परंतु मुख्य आकार और सूक्ष्म विवरण अब भी हाथ के औज़ारों से ही पूरे किए जाते हैं।

6. पीढ़ियों के बीच जीवित सीख

परंपरागत कार्यशाला में सीखना कक्षा में नहीं होता। नया सीखने वाला वरिष्ठ शिल्पकार के पास बैठता है,



चित्र 4: पत्थर पर रेखांकन, अतिरिक्त भाग हटाने और सूक्ष्म विवरण विकसित करने के क्रमिक चरण (जगदीश आचार्य एवं संदेश आचार्य के कार्य-प्रदर्शन; लेखिका का दृश्य प्रलेखन, 2025)

औज़ारों का चयन देखता है, प्रहार की ध्वनि सुनता है और छोटे अभ्यासों से हाथ का संतुलन विकसित करता है। जगदीश आचार्य ने अपने पिता से देखकर सीखा और संदेश आचार्य ने इसी कार्यस्थल में पिता के मार्गदर्शन से अभ्यास आगे बढ़ाया। इस पारिवारिक क्रम ने कार्यशाला की शिल्प-स्मृति को निरंतर बनाए रखा है।

लेखिका द्वारा पत्थर पर प्रारंभिक अभ्यास करते समय जगदीश आचार्य का निकट मार्गदर्शन इस सीख की सहज प्रकृति को दिखाता है। वरिष्ठ शिल्पकार हाथ की स्थिति, औज़ार के कोण और प्रहार की मात्रा पर तुरंत ध्यान दिलाते हैं। गलती को लंबे व्याख्यान से नहीं, बल्कि उसी क्षण छोटे सुधार से ठीक किया जाता है। इस प्रकार ज्ञान शब्द, प्रदर्शन और अभ्यास के बीच चलता है।

पीढ़ीगत सीख का अर्थ पुराने रूपों की यांत्रिक पुनरावृत्ति नहीं है। प्रत्येक नई पीढ़ी बदलते आदेशों, नए दृश्य संदर्भों और उपलब्ध उपकरणों के साथ काम करती है। फिर भी पत्थर को पढ़ना, अनुपात संभालना, धीरे-धीरे गहराई बनाना और अंतिम विवरण हाथ से पूरा करना शिल्प की मूल पहचान बनाए रखते हैं।



चित्र 5: वरिष्ठ शिल्पकार जगदीश आचार्य के मार्गदर्शन में पत्थर पर प्रारंभिक औजार-अभ्यास करती लेखिका (क्षेत्रीय दृश्य प्रलेखन, 2025)

7. जीवित परंपरा का अर्थ

होयसला मंदिरों का संरक्षण आवश्यक है, परंतु केवल ऐतिहासिक इमारतों को सुरक्षित रखना पर्याप्त नहीं होगा। उन दृश्य सिद्धांतों और हस्तकौशलों को भी समझना होगा जो आज की कार्यशालाओं में अलग पैमाने पर जीवित हैं। मंदिरों में कलाकारों के हस्ताक्षर हमें मध्यकालीन शिल्पकारों की उपस्थिति का प्रमाण देते हैं। बालाजी कला केंद्र जैसे स्थान वर्तमान शिल्पकारों के नाम, श्रम और सीख को दृश्यमान बनाते हैं।

जगदीश आचार्य और संदेश आचार्य का कार्य इस निरंतरता का समकालीन उदाहरण है। यहाँ होयसला प्रभाव किसी स्थिर ऐतिहासिक नमूने के रूप में नहीं, बल्कि सूक्ष्म रेखांकन, घने अलंकरण, सामग्री की समझ और और पीढ़ीगत अभ्यास के रूप में सामने आता है। जब पत्थर, औजार और सीखने वाला हाथ एक ही कार्यस्थल में मिलते हैं, तब परंपरा संग्रहालय की वस्तु न रहकर जीवित प्रक्रिया बनती है।



चित्र 6: बालाजी कला केंद्र में पूर्ण और निर्माणाधीन पाषाण मूर्तियाँ (जगदीश आचार्य एवं संदेश आचार्य; लेखिका का दृश्य प्रलेखन, 2025)

8. उपसंहार

बेलूर और सोमनाथपुर की मूर्तिकला यह दिखाती है कि पत्थर में गहराई, गति और विवरण उत्पन्न करने के लिए सामग्री की सूक्ष्म समझ आवश्यक है। ताराकार स्थापत्य, क्षैतिज शिल्प-पट्टियाँ, ब्रैकेट आकृतियाँ, घुमावदार स्तंभ, पशु रूप और कलाकारों के हस्ताक्षर होयसला शिल्प को विशिष्ट ऐतिहासिक पहचान देते हैं।

मैसूरु की समकालीन कार्यशाला में यही विरासत प्रत्यक्ष प्रतिकृति के रूप में नहीं, बल्कि शिल्प की आदतों में दिखाई देती है। पत्थर चुनना, सतह तैयार करना, बार-बार रेखांकन करना, क्रमशः आकार निकालना और सूक्ष्म विवरण हाथ से पूरा करना आज भी प्रक्रिया के आधार हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज्ञान, कौशल और अनुभव का सतत आदान प्रदान इस परंपरा को जीवंत बनाए रखता है। अतः होयसला शिल्प को समझना अतीत के मंदिरों और वर्तमान के शिल्पकारों, दोनों को एक साथ देखने से ही संभव है।

आभार

लेखिका बालाजी कला केंद्र के शिल्पकार जगदीश आचार्य और संदेश आचार्य के प्रति आभार व्यक्त करती हैं, जिन्होंने कार्यशाला, औज़ारों और मूर्ति-निर्माण की प्रक्रिया को समझने में उदार सहयोग दिया।

संदर्भ

1. UNESCO World Heritage Centre. (2023). *Sacred Ensembles of the Hoysalas*. World Heritage List, No. 1670.
2. Hassan District, Government of Karnataka. *Chennakeshava Temple, Belur: Temple Architecture and Sculptural Extravaganza*.
3. ICOMOS. (2023). *Sacred Ensembles of the Hoysalas (India), Evaluation Report No. 1670*.
4. Settar, S. (1992). *The Hoysala Temples*. Dharwad: Institute of Indian Art History, Karnatak University

भारत के परिप्रेक्ष्य में समाज और शाश्वतता (सस्टेनेबिलिटी)

डॉ. अक्षया आप्टे

योजक सेंटर फॉर रिसर्च एंड स्ट्रैटेजिक प्लानिंग फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट)

ई-मेल: akshaya@yojak.org.in



सारांश

आज वर्ष 2026 में, औद्योगिक क्रांति के लगभग 266 साल बाद, शाश्वतता का परिप्रेक्ष्य बिल्कुल बदल चुका है। अब यह शाश्वत सत्य का नहीं, मनुष्य और पृथ्वी के शाश्वत अस्तित्व का प्रश्न है। भारत की विश्व-उत्पत्ति कथा में एकतत्व (ब्रह्म) से संपूर्ण सृष्टि का उद्भव माना गया है, और यही एकत्व-दृष्टि भारतीय समाज को आज भी एक सूत्र में जोड़ती है। विश्व स्तर पर एजेंडा 2030 और एस.डी.जी. जैसे प्रयासों ने जागरूकता तो बढ़ाई है, किंतु ये लक्ष्य इसलिए अप्राप्य रह जाते हैं क्योंकि सतत विकास की एक अंतर्निहित दृष्टि का अभाव है। केवल लक्ष्य तय करने से यह साध्य नहीं होता। आधुनिक व्यवस्था अर्थ-प्रधान है, जबकि पारंपरिक भारतीय व्यवस्था सात्विक गुणों पर आधारित रही है और भारत का ग्रामीण तथा जनजातीय समाज आज भी शाश्वतता के इन मूल्यों के बीज संजोए हुए है। "प्रेरणावृत्ति" जैसे कार्यक्रमों के अनुभव से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक सौहार्द, स्मृति जागरण और स्थानीयता-पूर्ण चिंतन ही सस्टेनेबल विकास का आधार बन सकते हैं। इसलिए सतत विकास के लिए एक "पैराडाइम शिफ्ट" आवश्यक है, जो व्यक्ति की अभिलाषा को वस्तु-संग्रह से सद्गुण की ओर मोड़े और भारत में मौजूद पारंपरिक दार्शनिक वाङ्मय तथा जनजातीय अनुभव इस मौलिक प्रयोग की नींव बन सकते हैं।

मुख्य शब्द: सस्टेनेबिलिटी (शाश्वतता), सतत विकास, भारतीय विश्वदृष्टि, एकतत्व/ब्रह्म, एजेंडा 2030, एस.डी.जी. (सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स), पैराडाइम शिफ्ट, कर्म-फल सिद्धांत, सात्विक गुण, प्रेरणावृत्ति कार्यक्रम, स्मृति जागरण, ग्रामीण-जनजातीय समाज, सामाजिक सौहार्द, अर्थ-प्रधान व्यवस्था, धर्मपाल, श्री अरविंद, योजक सेंटर फॉर रिसर्च एंड स्ट्रैटेजिक प्लानिंग, adaptive management (अनुकूलन प्रबंधन)

1. भूमिका

आज से कुछ सौ–दो सौ साल पहले इस शीर्षक के संदर्भ संभवतः अलग होते। सस्टेनेबिलिटी (शाश्वतता) को भारत के परिप्रेक्ष्य में कैसे देखा जाता? क्या "शाश्वतता" शब्द विश्वव्यापी ब्रह्मचैतन्य की ओर निर्देश करता? और इस शीर्षक से लिखा गया साहित्य उस परमसत्य का विवेचन करता? किंतु आज 2026 में, औद्योगिक क्रांति के कुछ 266 साल बाद, शाश्वतता का परिप्रेक्ष्य बिल्कुल भिन्न हो चुका है। अब बात, शाश्वत सत्य की नही, मनुष्य तथा पृथ्वी के शाश्वत अस्तित्व के प्रश्न की हो रही है। क्या-क्या बदला है इन 300 वर्षों में, यह बदलाव जितने बाहर हैं, उससे अधिक

भीतर हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से देखें, तो भारत के लोग कर्म-फल सिद्धांत (पुनर्जन्म की अवधारणा) से 'एक ही जीवन' की अवधारणा (जिसे आजकल YOLO यानि You Only Live Once) तक आ पहुचे हैं। बाहरी दिखने वाले बदलाव भले ही बड़े लगे, किंतु भीतर के न दिखने वाले बदलाव कहीं ज्यादा गहरे और अपरिवर्तनशील प्रतीत होते हैं।

"समाज और शाश्वतता" विषय की व्याप्ति इतनी विशाल है कि एक लेख में इसे प्रस्तुत करना असंभव सा लगता है। किंतु यह केवल एक प्रयास है कि विषय के कुछ पहलुओं को स्पर्श किया जाए, जिससे हम सभी, जो इस विषय के अध्ययन में जुटे हैं, को आगे जुड़ने, प्रयास और गहन चिंतन के लिये एक धरातल उपलब्ध हो। इस लेख का हर शब्द, विचार, उदाहरण कई अभ्यासक, ज्येष्ठ विचारक तथा धरातल पर कार्यरत कार्यकर्ताओं के सघन चिंतन और प्रयासों का नवनीत है। गत 20-25 वर्षों से योजक सेंटर फॉर रिसर्च एंड प्लानिंग फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट, इस अधिगम प्रक्रिया में लिप्त है।

2. भारतीय समाज की मूल विश्वदृष्टि

हर समाज की, राष्ट्र की और हर सभ्यता की विश्व उत्पत्ति की एक कथा होती है। इस कथा से उस समाज के मूल्यों, धारणाओं, विश्वास का एक ढांचा बनता है। यह विश्वदृष्टि का ढांचा समाज के धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा दार्शनिक पहलुओं को प्रभावित / नियंत्रित करता है। भारत की विश्वउत्पत्ति की कथा में, एकतत्व से संपूर्ण सृष्टि का उद्भव हुआ है और यही एक तत्व यत्र तत्र सर्वत्र विद्यमान है। दृष्टिगोचर विविधता से भरा विश्व इसी एकतत्व का विस्तार है। भाव में या अभाव में शाश्वत केवल यही एकतत्व है जिसे ब्रह्म की संज्ञा से निर्देशित किया जाता है। सृष्टि में, एक प्रकार के आविष्कार का दूसरे प्रकार के अविष्कार से कोई मूलभूत अलगाव नहीं। इसी दार्शनिक धारणा से भारत का संपूर्ण प्राचीनतम सांस्कृतिक चिंतन, शास्त्र, लोक परंपराएं आदि आलोकित है। इसी जीवनदृष्टि और उस आधार पर निर्मित जीवन शैली में भारतीय समाज अपने आप को व्यवस्थित करता रहा है। सतही तौर पर भारतीय समाज की विविधता भले ही किसी बाहरी व्यक्ति या समाज को भ्रमित कर दे, किंतु भारतीय समाज को यही दार्शनिक चिंतन समान सूत्र से जोड़ता है। इस चिंतन का प्रत्यय भारत की परंपराएं, देवता, त्योहार, आदि सभी सांस्कृतिक, धार्मिक क्षेत्र में आता है।

3. विश्व भर में सस्टेनेबिलिटी या शाश्वतता के प्रयास

जैसे कि हम जानते हैं, वर्ष 2012 के संयुक्त राष्ट्र के "सतत विकास सम्मेलन" में एक व्यापक, सार्वभौमिक लक्ष्य प्रणाली बनाने की प्रक्रिया शुरु हुई। वर्ष 2015 में संयुक्त महासभा के ऐतिहासिक सत्र में 193 देशों ने "एजेंडा 2030" को अपनाया। आधिकारिक तौर पर 1 जनवरी 2016 से 17 लक्ष्य और 169 उद्देश्य लागू हो गये। भारत ने राज्यों की एस.डी.जी. (सस्टेनेबल डिवेलपमेंट गोल्स) प्रयासों के मूल्यांकन हेतु एस. डी.जी. इंडिया इंडेक्स जारी किया है। सामान्य स्थिति में, कोई देश "एजेंडा 2030" के लक्ष्यों को पूरा करता नहीं दिखता। अब चर्चा ये भी है, कि एस.डी.जी. के बाद विश्व सतत विकास विषय में आगे कैसे बढ़ेगा? एस.डी.जी. के प्रयासों से विश्व में इस विषय को लेकर जागरूकता अवश्य बढ़ी है | संयुक्त राष्ट्र में होते यह प्रयास, और सी.ओ.पी. (कॉन्फ्रेन्स ऑफ़ पार्टीज़) जैसे उच्चस्तरीय शिखर सम्मेलन सामान्य जन-जीवन को कितने प्रभावित करते हैं, यह भी एक विचारणीय विषय है। सतत विकास से जुड़ा वैश्विक उत्तर-दक्षिण का परिप्रेक्ष्य तथा जलवायु परिवर्तन की राजनीति भी जटिल विषय है।

यह सब जान-समझ कर यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक लगता है कि सतत विकास के केवल "लक्ष्य" तय करके उनका साध्य होना संभव नहीं होगा। सतत विकास की एक अंतर्निहित दृष्टि, जो विश्व भर के समाजों में होनी चाहिए, उसका अभाव ही इन लक्ष्यों की अप्राप्यता का मुख्य कारण समझ आता है।

4. भारत की सतत विकास की दृष्टि

आधुनिक भारत में धर्मपाल एक मौलिक चिंतक माने गए हैं। धर्मपाल जी हमारे समक्ष एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न रखते हैं - 'किसी और के संसार में' रहते रहते क्या ऐसी कोई विश्वदृष्टि हमने जनित की है जिसे भारतीय

विश्वदृष्टि कहा जा सके? दूसरे शब्दों में, क्या कोई भारतीय विकास की अवधारणा है, या सस्टेनेबिलिटी या शाश्वतता की अवधारणा है? इस सम्भावना को हमें ख़ारिज नहीं करना चाहिए बल्कि ऐसा मान कर चलना चाहिए कि भारतीय जीवन दृष्टि और भारतीय विश्वदृष्टि पुनर्जागृत होने की प्रतीक्षा में हैं, जिसके द्वारा एक "पैराडाइम शिफ़्ट" की सम्भावना खुली हुई है। श्री अरविंद जैसे महान मनीषी की मानें तो, भारत विश्व के विचारार्थ एक ऐसी जीवन दृष्टि प्रस्तुत कर सकता है जो सतत विकास के लिए आवश्यक समग्र विचार, चिंतन और मार्ग का सैद्धांतिक ढाँचा निर्माण कर पाए। भारत के कई विद्वतजन, अभ्यासक तथा धरातलीय कार्यकर्ताओं की विकास विषयक समझ और अनुभवों का मर्म लेकर गत 25 साल से भारतीय विकास का चिंतन विकसित होता गया है। इस चिंतन से उपजे कई कार्यक्रम-उपक्रमों के धरातल पर प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगों के अनुभव से भारतीय विकास चिंतन का ढांचा बन सकता है।

5. सस्टेनेबिलिटी की 'सामाजिक' अवधारणा और प्रयास

आधुनिक व्यवस्था 'अर्थ' प्रधान है। यह विनिमय के साधन को सर्वोच्च बनाती है और फिर व्यवस्था के सारे आयाम इसी 'अर्थ' को केंद्रीभूत रखकर बुने जाते है। इस कारण समाज के परस्पर नाते-संबंध, शिक्षा, लेन-देन, सुख की कल्पनाएं और इस सुख की अभिलाषा से उत्पन्न प्रयास, सभी अर्थ-केंद्रित हो जाते हैं। ऐसा कह सकते हैं कि आधुनिक व्यवस्था में सामाजिकता कमज़ोर पड़ती है। इसके विकल्प में, पारम्परिक व्यवस्था 'समाज-जीवन' गुणों पर आधारित पदानुक्रमित प्रणाली रही है। इस व्यवस्था में आकांक्षा की वस्तु वे गुण रहे जो सर्वोच्च (सात्विक) गुण माने गए हैं। इस कारण यह व्यवस्था अपने आप में ही अंतर्गामी है और इसमें किसी बाहरी वस्तु संग्रह की प्रतिस्पर्धा नहीं रही। (सस्टेनेबिलिटी के संदर्भ में मौजूदा बड़ी चुनौती बाहरी वस्तु के संग्रह का पागलपन है)।

भारत का ग्रामीण तथा जनजातीय समाज आज भी शाश्वतता के मूल्यों के बीज संजोए हुए है। आज भी इन लोगों में वस्तु संग्रह का पागलपन नहीं दिखता। भारत के विकास चिंतन में जीवन के सात्विक गुणों को नित्य व्यवहार में प्रवाहित रखना ही इस चिंतन का सार और आधार है। शाश्वत गुणों के प्रवाह के लिए आवश्यक है कि सामाजिक जीवन (परस्पर संबंध, नित्य आवश्यकताएं, आजीविका, सभी चराचर से मानव के संबंध) का इन गुणों के आधार पर चलता हो। बिना सात्विक गुणों के शाश्वतता के लक्ष्यों का कोई आधार नहीं दिखता।

अब प्रश्न है, क्या आज ऐसे व्यक्तियों का निर्माण संभव है जो सात्विक गुण सम्पन्न होने की अभिलाषा रखते हों? विकास का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों में इन गुणों का समुच्चय होना आवश्यक है। यह प्रयत्नसाध्य है किंतु सुगम नहीं। "प्रेरणावृत्ति" कार्यक्रम के अंतर्गत समाज में शाश्वत विकास का नेतृत्व खड़ा करने का प्रयत्न पिछले कई वर्षों से किया जा रहा है - अभ्यास, जागरण, संघटन, दृष्टि विकास और परिसर विकास को साकार करने का प्रयास है। इस नेतृत्व के विकास के कार्यक्रम के निष्कर्ष निम्नलिखित बिंदुओं के रूप में प्रमुखता से दिखते हैं:

i. सस्टेनेबिलिटी के प्रयास में हर व्यक्ति का जुड़ना आवश्यक है और इसलिए सामाजिक सौहार्द आवश्यक बन जाता है। इसके लिए 'एकत्व' के भारतीय तत्वज्ञान को व्यावहारिकता में उतरना आवश्यक हो जाता है।

ii. समाज के "स्मृति जागरण" प्रयास से, जिसमें उस समाज की सस्टेनेबिलिटी के संदर्भ में अपनी स्मृतियाँ शामिल हैं, विकास का स्थानीयतापूर्ण (rooted) चिंतन सम्भव हो पाता है। इसके अभाव में समाज बाहरी अवधारणाओं की नक़ल करने लगता है जिस कारण स्थायित्व सम्भव नहीं हो पाता।

iii. स्थानीय समाज की सीखने की प्रवृत्ति अनुभूति प्रधान होती है। यह अनुभूति उसे अपने परिसर से उपलब्ध होती है और स्मृति जागरण द्वारा अपने पूर्वजों की अनुभूति से उसका मेल आवश्यक होता है। सस्टेनेबिलिटी की अवधारणा में स्थायित्व आए, इसके लिए यह आवश्यक है।

iv. उपरोक्त पद्धति का प्रतिफलन हमें उत्सवों व अन्य सांस्कृतिक परम्पराओं में मिलता है जिसमें समाज अपने सस्टेनेबिलिटी विज्ञान

को ढालता आया है। साथ ही इस विज्ञान को सरलता से अगली पीढ़ी को संचारित इन्हीं उत्सवों और सांस्कृतिक परंपराओं द्वारा करता आया है।

v. भारतीय शाश्वतता की ओर बढ़ने के लिए स्थानीय समाज को स्वयं की नीति सुनिश्चित करनी आवश्यक है। दूसरे शब्दों में सस्टेनेबिलिटी की मुख्य ज़िम्मेदारी समाज की है, जिसमें सरकारें सहयोग का वातावरण दे सकती हैं। समाज में संवेदनशीलता, विवेक, कर्तव्यनिष्ठ और कृतिशील गुणों का होना आवश्यक है।

vi. परिसर के सभी चराचर के साथ संबंध का निरंतर अभ्यास करना, अपने अनुभवों के आधार पर परिसर के नैसर्गिक संसाधनों का सबलीकरण करना और विवेकपूर्ण उपयोग करना, जिसके लिए अनुकूलन तथा सुयोग्य आधुनिक तकनीकों का उपयोग करने का अभ्यास आवश्यक है। इस अभ्यास का आधार विवेकी समाज ही है।

vii. अन्यान्य क्षेत्रों जैसे, गांव, ग्राम-समूह, तहसील, जिला इत्यादि में भारतीय परिप्रेक्ष्य आधारित नीतिगत कार्यक्रम-उपक्रम का संचालन स्थानीय सामाजिकता के अधीन होना आवश्यक है। इसके लिए सस्टेनेबिलिटी की पारम्परिक दृष्टि के सामाजिक विचार-मंथन का निरंतर प्रयास आवश्यक है। इसमें सरकारों की अहम भूमिका है।

6. उपसंहार

अब यह स्वीकार्य होता जा रहा है कि सस्टेनेबल विकास के लिए "पैराडाइम शिफ़्ट" की आवश्यकता है। आधुनिक पैराडाइम में छेड़-छाड़ से अब काम नहीं चलने वाला। ऐसे में पारम्परिक भारतीय दृष्टि और उसके आधार पर पारम्परिक व्यवस्थाओं का अध्ययन महत्त्वपूर्ण सीख दे सकता है। इस अध्ययन हेतु भारत के ग्रामीण एवं जनजातीय समाजों में महत्त्वपूर्ण संकेत आज भी मौजूद हैं। आधुनिक प्रवाह को अगर स्थानीय सामाजिकता के अधीन लाया जा सके, तो सस्टेनेबल विकास के क्षेत्र में भारत में मौलिक प्रयोग सम्भव हैं जो कि "पैराडाइम शिफ़्ट" के लिए विश्व को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

इस प्रयास का आधार स्वयं में अभिलाषा के स्तर पर बदलाव पर टिका है जहाँ व्यक्ति की आकांक्षाएँ वस्तु संग्रह से ऊपर उठ सद्गुणी होने की बने। इसके लिए दृष्टि परिवर्तन का प्रयास महत्त्वपूर्ण है। भारत में आज भी आवश्यक दार्शनिक वाङ्मय और उनके आधार पर चल रही मानव-मूल्य परम्पराएँ मौजूद हैं।

संदर्भ

1. Dange, Gajanan. Shashwat Vikas ki Bharatiya Sankalpana. 2023. https://youtu.be/ryYNfdmfpVc?si=XrXEEWP5_srG9FmG
2. United Nations India. "How the UN is Supporting Sustainable Development Goals in India." 2026. https://india.un.org/en/sdgs
3. United Nations India. SDG Declaration. https://sdgs.un.org/goals
4. Dharampal. Bharatiya Chitta Manas aur Kaal. 1993. https://library.bjp.org/jspui/bitstream/123456789/967/1/Bharatiya%20Chitta%20Manas%20and%20Kala.pdf
5. YOJAK. Raghatvihir Journey. 2023. https://yojak.org.in/wp-content/uploads/2023/06/Raghatvihir_Journey_Hindi_Email.pdf

हिंदी कक्ष की विभिन्न गतिविधियां

भाषा में एक घर

शब्दों का भी अपना भूगोल होता है; कुछ शब्द हमें बहुत दूर ले जाते हैं और कुछ सबसे निकट ले आते हैं। किसी परिचित भाषा में कही गई बात इसलिए, केवल समझ में नहीं आती, वह मन के कहीं भीतर उतर जाती है। भाषा की यही आत्मीयता उसे संवाद से आगे ले जाती है; वह **स्मृतियों, अनुभवों और संवेदनाओं को संभालने वाली जगह** बन जाती है।

यह तो हम सब जानते ही हैं कि हिंदी संवैधानिक दर्जे से हमारी **राजभाषा** है; पर इसके साथ ही, यह भाषा हममे से बहुतों के लिए हमारे **सपनों की भाषा** भी है, वह भाषा- जो हमें जोड़ती है, जो हमारी कल्पनाओं को पंख देती है। कार्यालय के औपचारिक परिवेश में भी हिंदी अपने सहज शब्दों के साथ संवाद में आत्मीयता, कामकाज में सरलता और वातावरण में कुछ **घर-सा** भाव भर देती है। हिंदी कक्ष इसी भावना को बनाए रखने और इसे निरंतर विस्तार देने के लिए प्रयासरत है।

भारत सरकार द्वारा निर्धारित दायित्वों के निर्वहन के साथ-साथ हिंदी कक्ष वर्ष भर विभिन्न गतिविधियों, कार्यक्रमों का आयोजन करता है जिसके ज़रिए संस्थान के तौर पर हम हिंदी में अधिक सहज और व्यापक रूप से काम कर सकें। इन कार्यक्रमों में नियमित आधार पर होने वाली राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों, कार्यशालाओं के अलावा विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है ताकि हम सब प्रशासनिक व रचनात्मक दोनों स्तरों पर हिंदी से जुड़ सकें। यह गतिविधियां, इस प्रकार, हिंदी को कार्यलायीन दिनचर्या से जोड़ने के साथ-साथ उसे **उत्सव का रूप** भी देती हैं।

पिछले हिंदी पखवाड़े (वर्ष 2025) के दौरान संस्थान के सभी संवर्गों ('ए', 'बी', 'सी') के नियमित स्टाफ सदस्यों, अनुबंध व आउटसोर्स आधार पर कार्यरत स्टाफ सदस्यों के साथ-साथ विद्यार्थियों के लिए भी ज्ञान व प्रशासनिक कामकाज से भाषा को जोड़ते हुए अन्यान्य प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं। इन प्रतियोगिताओं ने प्रतिभागियों को हिंदी के साथ सीखने, सोचने, अभिव्यक्त होने और रचनात्मक रूप से जुड़ने के अवसर प्रदान किए।

प्रशासनिक कामकाज में हिंदी के प्रयोग को सहज और प्रभावी बनाने की दिशा में प्रत्येक तिमाही में राजभाषा कार्यशालाओं का आयोजन किया गया, जिनमें राजभाषा के क्षेत्र से जुड़े विशेषज्ञ वक्ताओं को आमंत्रित कर प्रतिभागियों को भाषा के व्यावहारिक, प्रशासनिक एवं समकालीन पक्षों से परिचित कराया गया। इन कार्यशालाओं के माध्यम से हिंदी के प्रयोग को अधिक सहज, प्रभावी और व्यावहारिक बनाने की दिशा में निरंतर प्रयास किए गए।

ज्ञान-विनिमय एवं क्षमता-विकास की इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो के सहयोग से हिंदी कक्ष द्वारा **पाँच दिवसीय अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम** का आयोजन किया गया। इस प्रशिक्षण के माध्यम से प्रतिभागियों को अनुवाद की विविध तकनीकों, व्यावहारिक पक्षों तथा प्रभावी अनुवाद के लिए आवश्यक भाषायी कौशल से परिचित होने का अवसर मिला।

भाषायी विविधता और बहुभाषिकता के महत्त्व को रेखांकित करने के उद्देश्य से अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के अवसर पर विद्यार्थियों के लिए 'बहुभाषी शिक्षा संवाद' के अंतर्गत **'बहुभाषिकता व युवा स्वर'** कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस अवसर पर युवा विद्यार्थियों ने बहुभाषिकता से जुड़े विविध आयामों, अनुभवों और विचारों को साझा किया तथा भाषा, संस्कृति और शिक्षा के परस्पर संबंधों पर सार्थक संवाद स्थापित किया। इस संवाद ने इस विश्वास को रेखांकित किया कि **अनेक भाषाओं का साथ किसी सीमा का नहीं, बल्कि संभावनाओं का विस्तार है।**

इसी क्रम में एक अभिनव एवं वैचारिक पहल के रूप में संस्थान के शोधार्थियों के लिए **'हिंदी में शोध-सार लेखन'** कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस पहल के माध्यम से संस्थान में हिंदी को शोध एवं अकादमिक अभिव्यक्ति की सशक्त भाषा के रूप में बढ़ावा देने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया। शोध की जटिल और गंभीर दुनिया को हिंदी की सहज अभिव्यक्ति से जोड़ने का यह प्रयास अकादमिक संवाद के नए अवसरों की ओर भी संकेत करता है।

इन प्रयासों की यात्रा में अब हम एक नई कड़ी जोड़ने जा रहे हैं। **हिंदी कक्ष द्वारा संस्थान के अंतरराष्ट्रीय व हिंदीतर भाषी विद्यार्थियों के लिए आधारभूत हिंदी शिक्षण कार्यक्रम** आरंभ किया जा रहा है। यह पहल केवल हिंदी सिखाने का प्रयास नहीं, बल्कि भाषा के माध्यम से एक नए संवाद का द्वार खोलने की कोशिश है। हमारा उद्देश्य है कि संस्थान में विभिन्न भाषाई और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आए विद्यार्थी हिंदी से परिचित हों, उससे सहजता महसूस करें और इस शहर के जीवन, परिवेश तथा लोगों से थोड़ा और आत्मीय रूप से जुड़ सकें।

हमें विश्वास है कि भाषा की कुछ बुनियादी समझ भी कई अनजान रास्तों को आसान बना देती है। इसी विश्वास के साथ हमारी कोशिश रहेगी कि यह पहल विद्यार्थियों को हिंदी से जोड़े ताकि वे संस्थान व शहर में हिंदी से जुड़े सामान्य भाषिक संवाद और व्यवहार को सहजता से समझ सकें तथा दैनिक जीवन में आने वाली भाषिक चुनौतियों का आत्मविश्वास के साथ सामना कर सकें। क्योंकि अंतत: **भाषा केवल सीखने की चीज़ नहीं, जुड़ने का एक रास्ता** भी है।

भाषा तब और समृद्ध होती है, जब उसमें अलग-अलग आवाज़ें शामिल होती हैं। हिंदी कक्ष की पहलों को आगे बढ़ाने में संस्थान के संकाय सदस्यों का अकादमिक और रचनात्मक साथ भी महत्त्वपूर्ण रहा है। हिंदी कक्ष के विभिन्न कार्यक्रमों और प्रकाशनों में उनकी सक्रिय सहभागिता **हिंदी को कामकाज की भाषा से आगे ज्ञान, विचार, संवाद और सृजन की साझा भाषा** के रूप में समृद्ध करती है। उनके इस साथ से भाषा का संसार भी कुछ और विस्तृत होता है—वह अलग-अलग भाषाई और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आए लोगों को जोड़ने तथा उनके बीच संवाद और अपनत्व की एक सहज और आत्मीय जगह रचने लगती है।

हिंदी कक्ष का प्रयास है कि भाषा किसी सदस्य या विद्यार्थी के लिए संकोच, असहजता अथवा बाधा का कारण न बने। प्रशासनिक कार्यों से लेकर अकादमिक अभिव्यक्ति तक, जहाँ कहीं भाषा से जुड़ी कोई चुनौती सामने आती है, वहाँ सहयोग, मार्गदर्शन और समाधान का एक आत्मीय माध्यम उपलब्ध हो—यही हमारी मूल भावना है।

अंत में, बस यही कि **हम हिंदी का नहीं, हिंदी में काम करें** और साथ ही, हिंदी हमारी रचनात्मकता और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति भी बनी रहे।

डॉ. स्वाती
हिंदी अधिकारी



हिंदी समारोह-2025 में संस्थान के निदेशक, उप निदेशक (प्रचालन) एवं कुलसचिव का स्वागत करते हुए अध्यक्ष, हिंदी कक्ष।







हिंदी समारोह-2025 में उपस्थित प्रतिभागीगण।



हिंदी समारोह-2025 के अवसर पर संस्थान के निदेशक प्रो. रंगन बनर्जी का संबोधन।



हिंदी समारोह-2025 के अवसर पर उप निदेशक (प्रचालन) प्रो. अरविन्द कुमार नेमा का संबोधन।



हिंदी समारोह-2025 के अवसर पर उप निदेशक (नीति एवं योजना) प्रो. विवेक वी. बुवा का संबोधन।



हिंदी समारोह-2025 के अवसर पर अध्यक्ष, हिंदी कक्ष डॉ. नीरज चौरसिया का संबोधन।



'जिज्ञासा' – विज्ञान जर्नल के 39वें अंक का विमोचन।



संस्थान की रिसर्च इम्पैक्ट रिपोर्ट के हिंदी संस्करण का विमोचन।









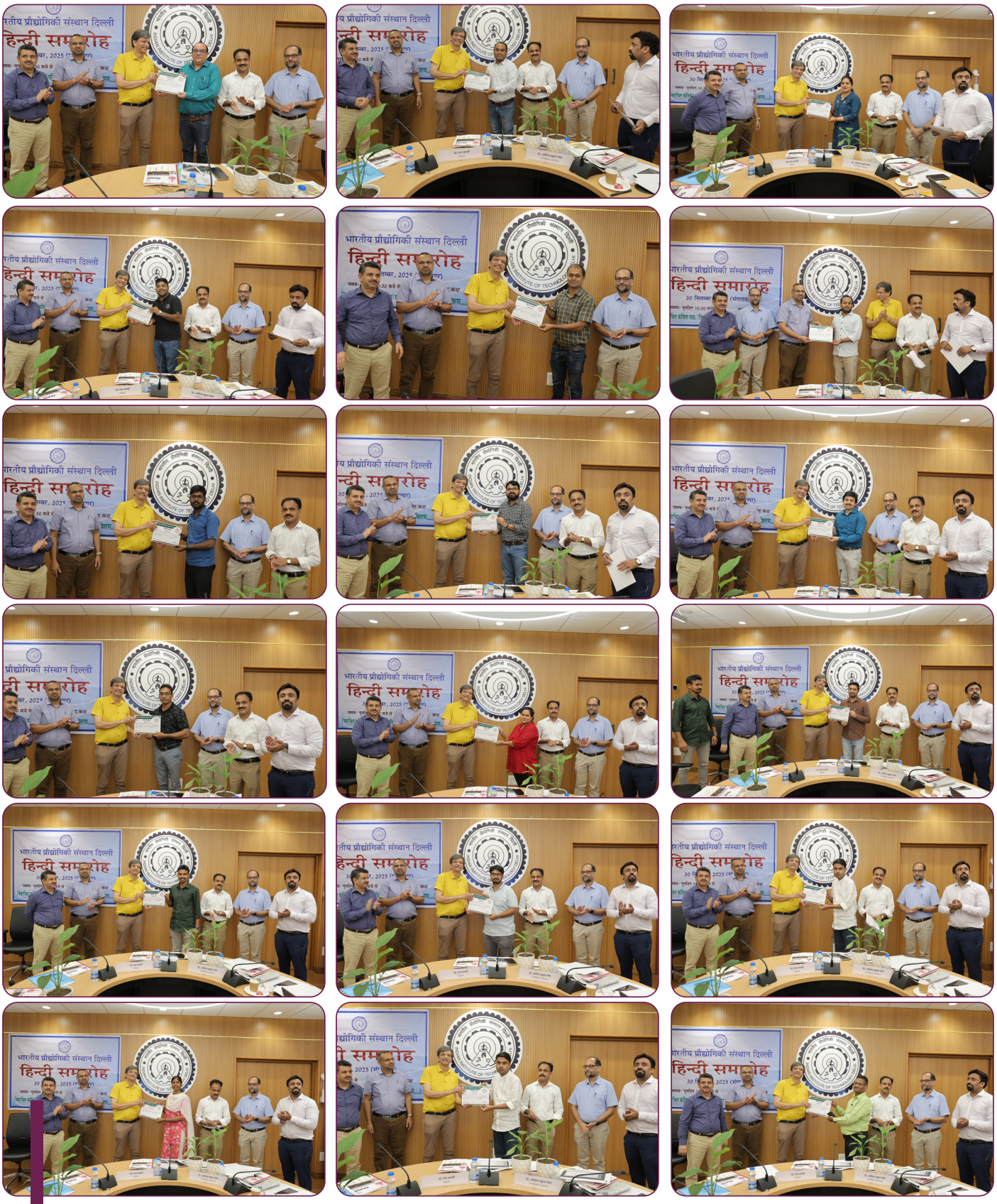




हिंदी समारोह-2025 के दौरान संकाय सदस्यों का स्वागत करते हुए निदेशक महोदय।



हिंदी समारोह–2025 के दौरान कविता पाठ करते स्टाफ सदस्य एवं विद्यार्थीगण।



हिंदी समारोह-2025 के अवसर पर पुरस्कार प्राप्त करते हुए अधिकारीगण, स्टाफ सदस्य एवं विद्यार्थीगण।



हिंदी समारोह-2025 के अवसर पर पुरस्कार प्राप्त करते हुए अधिकारीगण, स्टाफ सदस्य एवं विद्यार्थीगण।













'हिंदी पखवाड़ा' के शुभारंभ कार्यक्रम में दिनांक 16 सितंबर 2025 को 'हिंदी भाषा का अतीत, वर्तमान एवं संभावनाएं' विषय पर कार्यशाला और प्रेरक व्याख्यान का आयोजन।

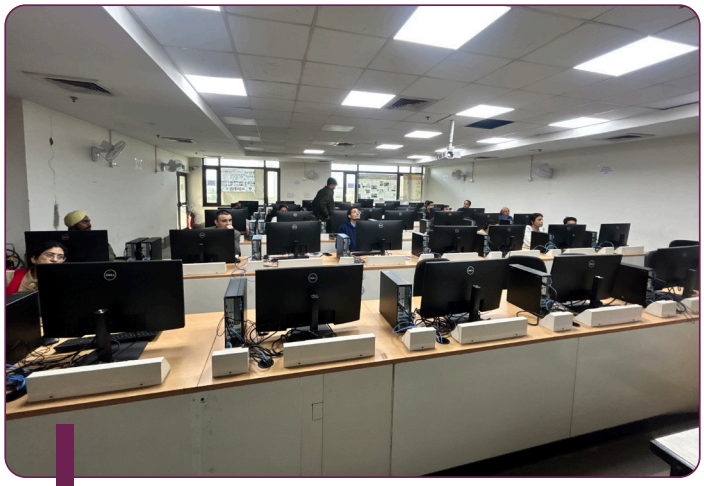
[मुख्य वक्ता: प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय, निदेशक, भाषा पत्रकारिता विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान (IIMC), नई दिल्ली]



हिंदी कक्ष परिवार।









संस्थान के स्टाफ सदस्यों के लिए 'राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन में अनुवाद की भूमिका' विषय पर दिनांक 08 दिसंबर 2025 को तकनीकी प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन।

[मुख्य वक्ता: श्री केवल कृष्ण, वरिष्ठ तकनीकी निदेशक (सेवानिवृत्त), राष्ट्रीय सूचना केंद्र (NIC), नई दिल्ली]





संस्थान-निदेशक प्रो. रंगन बनर्जी की अध्यक्षता में दिनांक 11 फ़रवरी 2026 को राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 149वीं बैठक का आयोजन।






संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से पाँच दिवसीय अनुवाद प्रशिक्षण कार्यशाला (16 मार्च से 20 मार्च 2026) का आयोजन- शुभारंभ सत्र।





संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से आयोजित पाँच दिवसीय अनुवाद प्रशिक्षण कार्यशाला के विभिन्न सत्रों की झलकियाँ।




संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से आयोजित पाँच दिवसीय अनुवाद प्रशिक्षण कार्यशाला के विभिन्न सत्रों की झलकियाँ।








संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से पाँच दिवसीय अनुवाद प्रशिक्षण कार्यशाला (16 मार्च से 20 मार्च 2026) का आयोजन- समापन सत्र।



संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से पाँच दिवसीय अनुवाद प्रशिक्षण कार्यशाला के समापन सत्र (20 मार्च 2026) में प्रतिभागी सदस्यों को गणमान्य अधिकारियों द्वारा प्रमाण पत्र का वितरण।



संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से पाँच दिवसीय अनुवाद प्रशिक्षण कार्यशाला के समापन सत्र (20 मार्च 2026) में प्रतिभागी सदस्यों को गणमान्य अधिकारियों द्वारा प्रमाण पत्र का वितरण।



संस्थान के विद्यार्थियों के लिए 'उच्च तकनीकी शिक्षा में बहुभाषिकता एवं युवा स्वर' विषय पर दिनांक 27 मार्च 2026 को 'बहुभाषी शिक्षा संवाद' कार्यक्रम का आयोजन।
(मुख्य वक्ता: प्रो. आर.एस.सर्राजू, वरिष्ठ भाषा विशेषज्ञ, भारतीय भाषा समिति, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)

















संस्थान के विद्यार्थियों के लिए 'उच्च तकनीकी शिक्षा में बहुभाषिकता एवं युवा स्वर' विषय पर दिनांक 27 मार्च 2026 को 'बहुभाषी शिक्षा संवाद' कार्यक्रम का आयोजन।

(मुख्य वक्ता: प्रो. आर.एस.सर्राजू, वरिष्ठ भाषा विशेषज्ञ, भारतीय भाषा समिति, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार- इस संवाद कार्यक्रम में विद्यार्थी भी पैनल-वक्ता के रूप में शामिल।)






'उच्च तकनीकी शिक्षा में बहुभाषिकता एवं युवा स्वर' विषय पर दिनांक 27 मार्च 2026 को आयोजित 'बहुभाषी शिक्षा संवाद कार्यक्रम' में प्रतिभागी वक्ता विद्यार्थियों को प्रशस्ति पत्र प्रदान करते हुए संस्थान-निदेशक प्रो. रंगन बनर्जी।






संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए दिनांक 19 जून 2026 को 'राजभाषा कार्यान्वयन: जागरूकता, उत्तरदायित्व और नवाचार' विषयक कार्यशाला का आयोजन।
[मुख्य वक्ता: श्री कुमार पाल शर्मा, संयुक्त निदेशक - कार्यान्वयन (सेवानिवृत्त), राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार]



संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए 19 जून 2026 को 'राजभाषा कार्यान्वयन: जागरूकता, उत्तरदायित्व और नवाचार' विषयक कार्यशाला का आयोजन।



भारत सरकार की 'नकद प्रोत्साहन योजना' के कार्यान्वयन की दिशा में 20 अगस्त 2026 को आयोजित बैठक में विशेषज्ञ सदस्य श्री अजय झा, उप निदेशक (राजभाषा), शिक्षा मंत्रालय का स्वागत।









संस्थान के शोधार्थियों के लिए दिनांक 12 अगस्त 2026 को 'हिंदी में शोध-सार लेखन' विषयक कार्यशाला का आयोजन। (मुख्य वक्ता: गिरीश नाथ झा, प्रोफ़ेसर, कम्प्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स, स्कूल ऑफ़ संस्कृत एंड इंडिक स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)





संस्थान के शोधार्थियों के लिए दिनांक 12 अगस्त 2026 को 'हिंदी में शोध-सार लेखन' विषयक कार्यशाला का आयोजन। (मुख्य वक्ता: गिरीश नाथ झा, प्रोफ़ेसर, कम्प्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स, स्कूल ऑफ़ संस्कृत एंड इंडिक स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)

चाँद की वर्तनी

चाँद लिखने के लिए चा पर चंद्र बिंदु लगाता हूँ
चाँद के ऊपर चाँद धर कर इस तरह

चाँद को दो बार लिखता हूँ
चाँद की एवज़ सिर्फ़ चंद्र बिंदु रख दूँ

तो काम नहीं चलता भाषा का
आधा शब्द में और आधा चित्र में

लिखना पड़ता है उसे हर बार
शब्द में लिखकर जिसे अमूर्त करता हूँ

चंद्र बिंदु बनाकर उसी का चित्र बनाता हूँ
आसमान के सफ़े पर लिखा चाँद

प्रतिपदा से पूर्णिमा तक
हर दिन अपनी वर्तनी बदल लेता है

चंद्र बिंदु बनाकर पूरे पखवाड़े के यात्रा वृत्तांत का
सार संक्षेप बनाता हूँ

जहाँ लिखा होता है चाँद
उसे हमेशा दो बार पढ़ना चाहता हूँ

चाँद
चाँद!

— राजेश जोशी

डिज़ाइन एवं मुद्रण: एक्सेल प्रिंटिंग यूनिवर्स, नई दिल्ली- 110067, ई-मेल: printing@groupexcelindia.com | सम्पर्क: 9899127755



प्रकाशक

हिंदी कक्ष, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

भारत सरकार की राजभाषा नीति के प्रावधानों के अनुपालन में दिसम्बर 1981 में संस्थान में हिंदी कक्ष की स्थापना हुई थी। संस्थान के वरिष्ठ संकाय/ शैक्षणिक सदस्य जिनकी हिंदी के प्रति गहन रुचि होती है, हिंदी कक्ष के अध्यक्ष होते हैं। वे हिंदी कक्ष की गतिविधियों का निर्देशन और नीतिगत मामलों के समन्वयन के लिए उत्तरदायी होते हैं। संस्थान में निरन्तर राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन को प्रोत्साहित किया जा रहा है। राजभाषा अधिनियम 1963 तथा केन्द्र सरकार द्वारा राजभाषा नियम, 1976 बनाए गए। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय हिंदी के प्रगामी प्रयोग हेतु वार्षिक कार्यक्रम जारी करता है। इन सभी के अन्तर्गत द्विभाषिकता की व्यवस्था है। इन संवैधानिक उपबंधों का पालन करना संघ सरकार के प्रत्येक मंत्रालय/ विभाग/ स्वायत्त संगठन के लिए अनिवार्य है। अतः भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली भी उपयुक्त उपबंधों का पालन करने के लिए प्रतिबद्ध है।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

www.iitd.ac.in